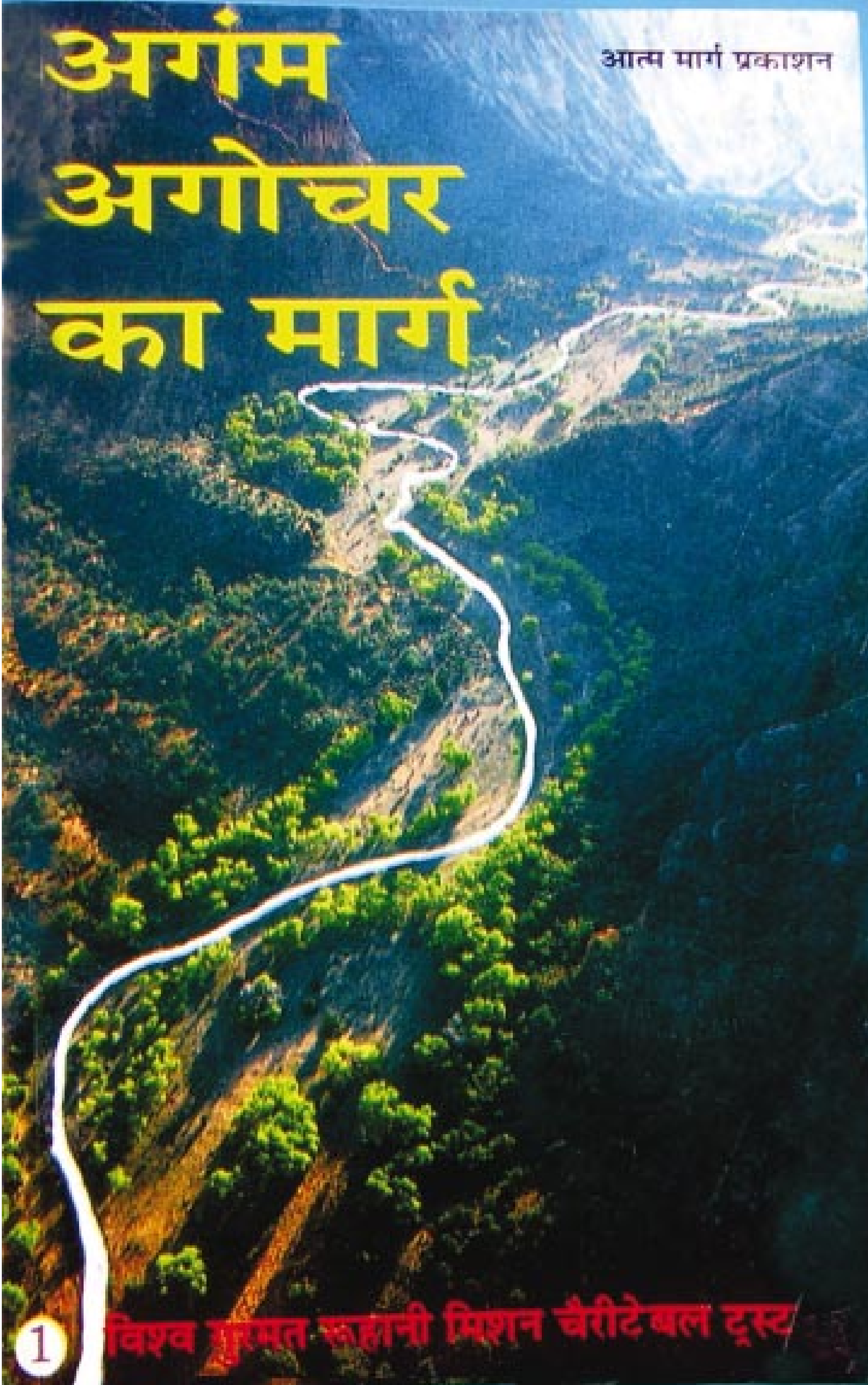

अगम अगोचर का मार्ग

आत्म मार्ग प्रकाशन

1 विश्व गुरमत रूहानी मिशन चैरीटेबल ट्रस्ट

अगंम अगोचर का मार्ग

इस संसार की रचना के बारे में अनेक प्रकार के विचार प्रचलित हैं। प्रकृति की खोज करने वाले वैज्ञानिक कोई ठीक विश्लेषण नहीं कर सके कि संसार किस प्रकार अस्तित्व में आया। वे जड़ तत्वों के Chemical action (रसायनिक क्रियाएं) Atomic powers (अणु शक्तियाँ) Electronics (इल्कैट्रानिकस) के हेर फेर उनका संयोजन और विघटन, इस संसार में अनेक प्रकार के जीवों की उत्पत्ति का कारण बताते हैं। पर जब विचार करते हैं जड़ तो जड़ ही है, जड़ में कोई जुगलबन्दी नहीं और न ही कोई चेतनता है, उनमें कोई सूझबूझ पैदा नहीं हो सकती। प्रकृति (जड़) में सुख का नामोंनिशां भी नहीं होता। अलग-अलग प्राकृतिक तत्व सूक्ष्म और स्थूल, अनेक विषय-वासनाएं, ये चेतन के बिना अस्तित्व में नहीं आ सकती। यही कारण है कि पदार्थवादी वैज्ञानिक संसार की उत्पत्ति का न कोई समय बता सकते हैं और न ही कोई कारण बता सकते हैं। भौतिक वैज्ञानिकों के समक्ष बहुत ही कठिन समस्या है कि वह सर्व कला समरथ सत्त-चित्त-आनन्द समूह शक्तियों के मालिक, पूर्ण ज्ञान, महा शान्त चेतन तत्व पर विश्वास नहीं बनाते। चेतन तत्व जिसका कोई नाम नहीं पर प्रेमियों ने उसे अनेक नामों से पुकारा है, कोई उसे राम कहता है, कोई रहीम कहता है, कोई विश्म्भर कहता है, कोई करीम कहता है, कोई अल्लाह कहता है, कोई प्रभु, नारायण, गोबिंद सहस्त्र नामों से पुकारते हैं, पवित्र कुरान शरीफ जी में अल्लाह ताला के लगभग सौ नाम लिखे हैं। ऋषियों मुनियों ने उसके हज़ारों नाम रखे हैं। जैसा जिसने अनुभव किया उसी गुण और भाव को अनुभव करके उसका नया नाम अस्तित्व में आ गया, पर उसका एक ही नाम 'सत्य' (सत्त) है, being है, कोई God कहो कोई अल्लाह कहो, कोई राम कहो या कोई किसी और नाम से सम्बोधन करो, वह एक ही परम तत्व सत्त-चित्त-आनन्द है। गुरू महाराज जी ने इस परम तत्व के अस्तित्व की साकारता अनुभव करके एक ओंकार कहा जिसे सम्बोधन करके सतनाम का उच्चारण किया। उसका स्वभाव अकर्ता नहीं है, वह कर्ता है। सृष्टि का अस्तित्व उसकी परम रज़ा में साकार होता है। वह पुरूष है, वह अपनी सृष्टि से अलग किसी तीसरे, सातवें, चौदहवें आसामान में आसन लगाकर नहीं बैठा। वह घट-घट में व्याप्त है। हर जड़, चेतन अस्तित्व में वह सम्मिलित है, मौजूद है। उसे पुरूष (पुरूख) कहा है, वह हर घट में रमण करता हुआ पूरी तरह निर्लेप है जैसे आकाश सभी स्थानों पर परिपूर्ण है। आग उसे गर्म नहीं कर सकती। आग के स्पर्श से यदि गर्म होती है तो वह हवा होती है,

पानी तथा मिट्टी हो सकती है। पर आकाश पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसी प्रकार दुनियाँ का ''आदि सच'' निर्लेप है पर हर घट में व्याप्त है।

समय बहुत बड़ी प्रबल शक्ति है, यह जब से अस्तित्व में आया है अपनी अगाध चाल से चलता ही रहता है। प्रकृति में से उत्पन्न जितने भी प्राकृतिक रूप हैं चाहे वह मनुष्य का शरीर है, या कोई जड़ मकान है या कोई स्टील से बना हुआ स्तम्भ है, चाहे हमारी धरती है, समुद्र ही है; ये सभी वस्तुएं गतिशील हैं। एक क्षण के करोड़वें-करोड़वें भाग में इसका परिवर्तन होता रहता है। विचारवान लोगों ने समय की सूक्ष्मता बताने के लिए निमिख से पल सैकिन्ड, मिनट, घड़ी, पहर, दिन सप्ताह, महीने, साल, सदियां, कल्प स्थापित किए हैं। जो भी चीज़ पैदा हुई है उस पर समय की परिवर्तन शक्ति उसी समय से ही हावी हो जाती है तथा यह पल-पल परिवर्तनशील क्रिया करता रहता है। दुनियाँ में अनेक बड़ी-बड़ी हस्तियाँ पैदा हुईं, बहुत मज़बूत किले बनाये गये पर समय ने अपनी लपेट में लेकर इनके नामोनिशां तक मिटा दिये और मिटाता चला जा रहा है। इसलिए ये प्राकृतिक वस्तुएं सदीवी नहीं हुआ करती ये क्षण-भंगुर हैं प्रतिक्षण इनमें परिवर्तन होता रहता है। इसलिये इसे सत्य के विपरीत असत्य कहा जाता है। सत्य वस्तु यहाँ केवल हस्ती है जिसे वाहिगुरू, अल्लाह, राम कहा जाता है। इस परम तत्व सत्य को किसी प्रकार का भी डर नहीं है क्योंकि वह अविनाशी चेतन तत्व है, न तो इसे किसी के साथ वैर है, यह काल को पैदा करने वाली अकाल शक्ति है। अस्तित्व है, इसका कभी भी अस्तित्व नहीं मिटता। प्रकृति का कोई वजूद ही नहीं रहता।

प्राकृतिक विज्ञानी बड़ी दुविधा में हैं। वे जब अनुमान लगाते हैं कि जब matter compress हो जाता है तो कितना सूक्ष्म हो जाता है। जब इसके बारे में अपनी लेखनी उठाकर लिखने लगते हैं तो यह Infinity में पहुँच कर असमर्थ हो जाते हैं कि क्या लिखा जाये? वे यह नहीं जानते कि प्रकृति का आदि क्या है? इसकी उत्पत्ति कहाँ से होती है? और इसे अनादि मानते हैं पर यह नहीं बता सकते कि Matter की प्रारम्भिक अवस्था क्या थी? Infinity (अनन्त) में से कोई भेद (रहस्य) प्राप्त करना मनुष्य की सोच शक्ति से बाहर है। इसलिये प्राकृतिक वैज्ञानिक आखिरी सीमा तक पहुँच कर helpless (असहाय) हो जाते हैं। पर अन्तर्आत्मा की खोज करने वालों को यह सारा प्रसार परम चेतन के शब्द का साकार रूप दिखाई देता है। वाहिगुरू जी को जाना नहीं जा सकता क्योंकि वह किसी जन्त्र, मन्त्र या तन्त्र का विषय नहीं है। कोई instrument (यंत्र)

उसके बारे में कुछ भी नहीं बता सकता। मनुष्य की बुद्धि सीमित है, वह सीमित सीमाओं को पार करके असीम में नहीं पहुँच सकती। वह अगम, अगोचर है, पारब्रह्म है इसलिये यह दिमाग में रसायनिक तत्वों के संयोग से तथा चुम्बक तथा बिजली धारा से उत्पन्न बुद्धि आत्मा को नहीं जान सकती। पर मनुष्य के अन्दर परमेश्वर ने बहुत कुछ गुप्त रखा हुआ है।

जब प्रभु प्यारे अपने प्रीतम के दर्शन करने के लिए विलाप करते हैं, साधुओं की सेवा करते हैं तथा आन्तरिक खोज के गुप्त भेद हासिल करके चढ़ाई करते हैं तो इनकी मायावी बुद्धि बदलकर सिद्ध हो जाती है क्योंकि अभ्यास करने वालों की बुद्धि जो दृष्टिमान को देखती है जब अति सूक्ष्म खोज में, इस शरीर में गहरी चली जाती है, अति गहराई में जाकर पहले इसे देवताओं की बुद्धि प्राप्त होती है, फिर आत्म विषैणी बुद्धि प्राप्त हो जाती है, वह आत्म विषैणी बुद्धि जिसे दिव्य दृष्टि भी कहा जा सकता है वह परम तत्व की सूक्ष्मता का प्रत्यक्ष अनुभव करती है, उन्हें आत्म साक्षात्कार हो जाता है। अनात्म का पूर्णतया ज्ञान हो जाता है और वह अनात्म, जड़ के कण-कण में जब गहरा उतरता है तो वह परम चेतन तत्व ही पूरी तरह से रमा हुआ पाता है तथा वह इस निष्कर्ष पर पहुँच जाता है कि दृष्टिमान तथा अदृश्य एक दूसरे के साथ घुलमिल गये हैं। यह एक भ्रम ही है; न तो यहाँ कोई वस्तु अनात्म है, यदि है तो केवल एक और एक ही सत्य तत्व, सत्त-चित्त-आनन्द, वाहिगुरू जी है। वह स्वंय ही एक से अनेक रूप होकर अपनी मौज के साथ आत्म अनात्म होकर खेल रहा है। जिस प्रकार सागर की लहरें उठती हैं और उसी में ही समा जाती हैं इसी प्रकार सारा दृष्टिमान प्रभु में से ही उसकी मौज मस्ती के साथ साकार रूप धारण करता है। समय (काल) अपना काम करता है बाकी सारी शक्तियाँ अपने-अपने हुक्म में बन्धी हुई अपना फर्ज निभाती हैं। प्रकृति के नियम अटल हैं। आग ने जलाना ही है, पानी ने गीला करना और डुबाना ही है। हवा ने स्पर्श करना ही है। यह स्वभाव बिल्कुल अटल नहीं हैं इसके ऊपर एक बहुत बड़ी शक्ति है जो प्राकृतिक तत्वों के स्वभाव को veto कर देती है। प्रहलाद को आग में बिठाया गया पर आग जला न सकी; पानी में डुबोया गया, डूब न सका; हजारों बाण इकट्ठे चला कर मारे गये, उसे कोई भी बीन्ध न सका। पहाड़ों से उसे गिराया गया, वह एक रूई के फोये के समान धीरे-धीरे धरती पर उतर आया। गर्म-गर्म तपते हुये खम्बे को उसने अपनी बाहों में भर लिया थम्ब ने उसे जलाने की बजाय ठण्ड प्रतीत करवाई और उस थम्ब में से एक महान शक्ति प्रकट हुई जिसने हरिणाक्ष का नाश किया। ये सभी बातें विचारणीय

हैं तथा यह निश्चयपूर्वक मानना पड़ेगा कि इस दृष्टिमान में कोई ऐसी छुपी हुई शक्ति है जो नेत्रों से देखी नहीं जा सकती, हाथों से स्पर्श नहीं की जा सकती, कानों से उसकी कोई आवाज़ नहीं सुनी जा सकती। जिभ्या द्वारा कोई रस अनुभव नहीं किया जा सकता पर इसके विपरीत जब आत्मवादी प्रभु प्यारा अपनी आन्तरिक खोज में बहुत गहरा उतर जाता है तब उसे अस्तित्व का रस महसूस होता है उसके दिव्य दर्शन का प्रकाश अनुभव होता है, उसके अनहद शब्द को सुनकर महा आनन्दित होता है और उसके स्पर्श को अनुभव करके रूहानी झन्कारें, कंपकपी, रस पूर्ण स्पर्श प्राप्त करता है तथा नेत्रों में उसके प्रकाश की झलक चमकती है, आत्म ने उस अस्तित्व को पूरी तरह से अनुभव कर लिया होता है और उसे अपना अस्तित्व पूरी तरह भूलकर अपने अस्तित्व से अलग भासने लगता है; यही परम तत्व है जिससे सारा खेल हो रहा है जिसके बारे में गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं –

ब्रहमु दीसै ब्रहमु सुणिऐ एकु एकु बखाणिऐ।
आतम पसारा करणहारा प्रभ बिना नहीं जाणीऐ। *पृष्ठ – 846*

इस परम तत्व को अनुभव करना महान सुखों का स्रोत है, महान आनन्द का अनुभव है। इसके विपरीत रसों–कशों सुन्दरताओं, विषय भोग, महादुखों का कारण है। महापुरुषों ने जब ये अवस्थाएं प्रत्यक्ष रूप में देखीं तो यह बात डंके की चोट बजाकर कही कि संसार दु:खों का घर है। क्यों कहा? क्योंकि संसार का कोई अस्तित्व नहीं। यह एक बहुत भारी भ्रम अविद्या का पर्दा पड़ने से इसका अधिआस परिपक्व हो गया तथा इसमें यह जीव पूरी तरह से बन्ध गया। कृष्ण महाराज जी फ़रमान करते हैं –

हे अर्जुन! मैं पारब्रह्म परमेश्वर अपनी त्रिगुणी माया के पर्दे के पीछे छिप कर ब्रह्माडों को जीवन प्रदान कर रहा हूँ, यह सारी क्रिया मैं ही कर रहा हूँ पर यह मूर्ख जीव तीन गुणों की नशई हालत के अधीन हुआ मुझे, पारब्रह्म परमेश्वर को बिल्कुल ही विस्मृत रखता है। गुरू महाराज जी इस संसार को यह तो कहते हैं कि –

नानक दुखिआ सभु संसारु। *पृष्ठ – 954*

पर इसके साथ हल भी बता दिया है –

मंने नाउ सोई जिणि जाइ। अउरी करम न लेखै लाइ॥ पृष्ठ –954

नाम शक्ति का मनन करने वाला, परम सुखों की प्राप्ति का भागीदार होता है। जब गोरख नाथ ने गुरू महाराज जी से पूछा कि आप कहते हो कि जो कुछ भी संसार में दिखाई देता है, वह सारा प्रभु का रूप है, प्रभु

में से ही उत्पन्न हुआ है, प्रभु में ही समा जायेगा, दूसरी तरफ यह भी फ़रमान है कि वह प्रभु सत्त-चित्त-आनन्द है फिर यह दु:ख कहाँ से उत्पन्न हो गया और वह अखण्ड हस्ती संसार कैसे बन गया? गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं कि गोरखनाथ! जिस प्रभु ने एक से अनेक रूप होकर यह सारा खेल रचाया है उसने ही माया की रचना भी की, जो जड़ तथा अन्धकारपूर्ण है। इसमें माया की उपज 'अहंम' तत्व से हुई जिसे हम 'हउमै' कहते हैं। 'हउमै' ने अखंड ज्योति को अलग अलग करके दिखा दिया। यह एक स्वरूप अनेक ही रंग रूपों में दिखने लग गया। अखण्डता को खण्डित करके अनेक चित्त छोटे छोटे स्वंय परम-सत्त की चेतन सत्ता से प्रतिबिम्बत होकर अलग-अलग अस्तित्व अनुभव करने लगे और छोटी-छोटी चार दीवारी में घिर गये। इस हउमै तत्व के कारण अज्ञानमयी अन्धकार की अवस्था में दृष्टिमान को अदृश्य से अलग अनुभव करना शुरू कर दिया और परिपूर्णता की महा आनन्दित अवस्था जिसे हम नाम कहते हैं, से टूट कर, निर्बलता अल्पज्ञता, भ्रम और 'मैं' के कठोर जाल में फंस कर दु:ख को जन्म दिया। यह सांसारिक भावना और दु:ख तब तक दूर नहीं होते जब तक इसकी हउमै का नाश पूर्ण रूप से नहीं होता और नाम के निवास की स्थिति में यह नहीं पहुँच जाता -

कितु कितु बिधि जगु उपजै पुरखा कितु कितु दुखि बिनसि जाई।
हउमै विचि जगु उपजै पुरखा नामि विसरिऐ दुखु पाई।

पृष्ठ - 946

अब प्रश्न यह उठता है कि किस प्रकार हउमै का नाश हो और किस प्रकार से हम नाम मण्डल में प्रवेश करके, परम अनुभव प्राप्त करके अपने निज अस्तित्व की भावना से मुक्त हों। यह एक बहुत बड़ा प्रश्न है। सभी धाृमक विश्वास, व्याख्यान, साधन इस प्रश्न को हल करने के लिए सहायक हैं, जिन्हें समझे बिना असली अनुभव प्राप्त नहीं हो सकता। सबसे पहले हमें यह जानने की आवश्यकता है कि हम बन्ध कैसे गये? वे कौन-कौन से बड़े-बड़े बन्धन हैं जो हमें इस रास्ते पर चलने नहीं देते तथा परम अनुभव के मार्ग में भारी रूकावट है? उन बन्धनों को कौन तोड़ सकता है क्योंकि हम तो बहुत ही बलहीन तथा कमज़ोर हो चुके हैं, इससे भी नीचे पहुँच कर हम अपने आप को केवल पाँच तत्वों का शरीर समझने की भूल करते हैं तथा अन्धकार की गहरी खाई में गिर गये हैं जिसमें से निकलना बहुत ही कठिन है। फिर वह कौन है जो इस गहरी खाई (गर्त) में से निकाल कर ज्ञान के मण्डल में पहुँचा दे? इसमें हमारा क्या कर्तव्य है, क्या कीमत देनी पड़ती है, कौन सा रास्ता अपनाना पड़ता है, इस मार्ग पर चलने के लिये कौन-कौन सी खूबियाँ या गुण हमारे

अन्दर होने जरूरी हैं? यह सारा विचार विमर्श आध्यात्मवाद का है। हम 'आत्म मार्ग' मैगज़ीन द्वारा उच्च कोटि के पहुँचे हुये महापुरुषों के वचनों के प्रकाशपूर्ण झलकियों के दर्शन लिखित रूप में पाठकों को करवा रहे हैं और उपर्युक्त सभी प्रश्नों की व्याख्या गुरू महाराज जी की कृपा द्वारा, गुरू ग्रन्थ साहिब जी महाराज जी के महान प्रकाश में, अन्धकार से बचकर वह भेद खोलने का यत्न कर रहे हैं जिससे अति उत्तम मार्ग पर चलकर हम आत्म मण्डल में प्रवेश कर सकें। सो समय-समय पर इस भेद को लिखित रूप में 'आत्म मार्ग' में प्रकाशित किया जाता रहेगा। पाठक जन, श्रद्धा, भावना में आकर, आस्तिक बुद्धि ग्रहण करके, प्रभु पर पूर्ण विश्वास करके गुरू सिद्धान्त को जब पढ़ेगें तो उन्हें आत्म मार्ग पर चलने के लिए बहुत सुविधा हो जायेगी। यह लेख श्रृंखला 1997 के मैगज़ीनों में आप समय-समय पर पढ़ कर अपने जीवन में गुरमत सिद्धातों को अपनाने का यत्न करो। यह प्रकाश किसी एक मज़हब के लिए सीमित नहीं है, यह सारी मानवता को प्रकाश प्रदान करती है क्योंकि अंधेरे अन्धकारपूर्ण कूएं में गिरे हुये चाहे किसी जाति, विश्वास, मज़हब के साथ सम्बंध रखते हों, वह प्रकाश के बिना किसी प्रकार भी अलग नहीं रह सकते। सभी को यह अधिकार है कि वे आत्म देश में पहुँच कर परम सुखी हो सकें क्योंकि परमेश्वर के द्वार पर कोई ism नहीं है, वहाँ केवल जीवात्माओं से प्रगति करके पहुँची हुई उच्च कोटि की आत्माएं ही हैं।

उपर्युक्त की गई सारी विचार का निष्कर्ष संक्षेप में यह है कि संसार जिसमें दृष्टिमान हस्तियां तथा प्राकृतिक सूक्ष्म शक्तियों का जो भी वजूद है चाहे वह स्थूल है चाहे सूक्ष्म है वह परिवर्तनशील है। जड़ प्रकृति सुख की जगह महान दुख रूप है -पहला जन्म तथा मरण का दुःख। बहुत से विचारवान लोगों का कहना है कि मरते समय भयंकर दुःख होता है जैसे चार सौ बिच्छु एक ही स्थान पर डंक मारें और ऐसा भी कहते हैं कि एक हज़ार बार कोई तेज़धार शस्त्र एक जगह पर चोट मारे। गुरमत अनुसार जो सिद्धान्त है उसमें ऐसी विस्तारपूर्वक तो कोई बात नहीं बताई गई पर यह जरूर कहा गया है कि जन्म मरण में दुःख है। माता के पेट में यह जीव नाम धुन के सहारे उल्टा लटक कर गर्भ वास में दुःख भोग रहा था। बालपन में इसे कोई सूझबूझ नहीं होती, कोई भी दुःख बोल कर बता नहीं सकता पवित्र, अपवित्र स्थान का इसे कोई ज्ञान नहीं होता। इस प्रकार यह बालपन का दुःख भोगता है। जवानी में आ जाता है तो अनेक प्रकार के वैर, विरोध गलत विश्वास, काम जैसी शरीर नाश करने वाली घातक भावनाओं में फंस जाता है। अनेक नशों का प्रयोग करने लग जाता है, अपने शरीर को दुःखी कर लेता है। परमेश्वर से दूर भटकता रहता है

जिसका परिणाम रोगों का उत्पन्न होना होता है। बुढ़ापे में पहुँच कर तो यह शरीर रोगों का घर ही बन जाता है। बच्चे कहना नहीं मानते, जवानी में किये गये गलत कार्य पश्चाताप के रूप में उभर कर आते हैं, अब कुछ कर नहीं सकता। शरीर आलसी हो जाता है। जो कुछ सोचता है उसे कर पाने की सामर्थ्य नहीं रहती। डाक्टरों के पल्ले जा पड़ता है और यह विटामिन, दवाईयों पर आश्रित होकर जीवन व्यतीत करता है। जब बच्चे कहना नहीं मानते, तो इसे बहुत क्रोध आता है। इसका जितना बोलबाला जवानी में था सारा बादलों की छाया की तरह उड़ जाता है। जवानी में बने मित्र भी अनेक प्रकार की कठिनाईयों तथा बीमारियों में फंस जाते हैं। उनकी अपनी ही problems खत्म नहीं होती। इस प्रकार बच्चों पर गुस्सा निकालता है। पुरानी भूली बिसरी बातों को याद करके क्रोध को अन्दर बसा लेता है। महाराज जी का फ़रमान है –

कामु क्रोधु काइआ कउ गालै। जिउ कंचन सोहागा ढालै। पृष्ठ - 932

इन जजबातों के वश होकर ठण्डी आहें भरता है और बार बार परमात्मा को ताने मारता है कि, "हे भगवान! मेरे कागज़ कहाँ चले गये, मुझे कब बुलायेगा।" चाहे इस मूर्ख जीव को यह पता न हो कि मैंने कहाँ जाना है। भगवान ने बुलाकर मुझे कौन सी कुर्सी दे देनी है, कौन सा मान दे देना है? वहाँ तो किये गये सारे कर्मों का हिसाब-किताब होना है। कोई पता नहीं कब इसे एक दम अकेले ही दु:ख नरकों की लपटों की तरह बन कर आ जायेंगे और यह भी नहीं पता कि संसार में किए गये कर्मों के फलस्वरूप मुझे कौन से नरकों में फैंकना है और कौन सी यौनि में इस जीव को इसका सन्ताप भुगतना है। पाप कर्मों द्वारा कमाया हुआ अपार धन इसकी स्मृति में से नहीं निकलता। यदि इसी धन की याद में मर जाये तो साँप की यौनि में पड़ता है। यदि जायदाद में ध्यान रह जाये तो भूत प्रेतों के पिंजर जो अति दुखदायी हैं, वे इसे प्राप्त होते हैं। जहाँ बेबस और लाचार होकर अपने कर्मो के फलस्वरूप दु:ख भोगता है। ऐसे दु:खों के कारण ही ज्ञानियों ने कहा है कि संसार दु:खों का घर है। इसके जीवन के समय में उपजी वासनाएं इसके मानसिक सन्तुलन, शान्ति को विलोड़ित करती रहती हैं। सो ऐसे बेअन्त दु:ख हैं जिनके कारण वह ठण्डी आहें भरता हुआ इस लोक में दु:खी होता है और परलोक (पलत) में भी उसकी स्मृति उसे दु:खी करती है। भाव इस दुनियाँ में भी ओर उस दुनियाँ में भी जिसे नरक कहा जाता है –

पापी करम कमावदे करदे हाए हाइ।
नानक जिउ मथनि माधाणीआ। तिउ मथे ध्रमराइ॥ पृष्ठ - 1425

एक धाूमक इतिहास में कथा आती है कि वेद व्यास जी जिन्हें

कारक की पदवी प्राप्त है तथा रूहानी सिद्धान्तों की सही व्याख्या करने के लिए संसार में आना पड़ता है। जिस प्रकार भाई गुरदास जी को कहा जाता है कि वे तो वेद व्यास जी का ही अवतार थे उन्होंने गुरमत सिद्धान्तों को निखार कर मानवता को प्रकाश दिया। वेद व्यास जी के पुत्र का नाम शुकदेव था जो एक बहुत बड़े महात्मा हुये हैं और राजा जनक जी से ज्ञान प्राप्त किया था। उनके बारे में महापुरुष बताया करते थे कि वह बाल अवस्था में ही अपने पिता से कहने लगा कि मुझे आज्ञा दो, मैं एकान्त जंगलों में निवास करने वाले महापुरुषों के पास जाना चाहता हूँ ताकि मैं कर्म उपासना द्वारा मल तथा विक्षेपता का दोष दूर करके आवरण का नाश कर सकूँ और आत्म सिद्ध अवस्था में पहुँच जाऊँ।'' उसने कहा, ''पिता जी! मेरे जन्म से पहले मेरा और तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं था। मुझे माता ने गर्भ में पाला और जन्म दिया। यह चक्र संसार के आदि से चला आ रहा है जैसा कि –

जुड़ि जुड़ि विछुड़े विछुड़ि जुड़े। जीवि जीवि मुए मुए जीवे।
केतिआ के बाप केतिआ के बेटे केते गुर चेले हूए।
आगै पाछै गणत न आवै किआ जाती किआ हुणि हूए।

पृष्ठ - 1238

पिता जी! इस जन्म से पहले की स्मृति का मुझे पूर्ण प्रकाश है कि मैं अनेक प्रकार की यौनियों में भटकता फिरता रहा हूँ और मुझे यह भी याद है कि शिव जी महाराज ने जब पार्वती को अमर कथा सुनाई, तो उस समय मैंने अमर कथा श्रवण की जो मुझे सारी पूरी तरह अनुभव में रमी हुई है। इस अमर कथा के सुनने के महातम से मैं तोते रूप से शरीर छोड़ कर मनुष्य यौनि में आया हूँ। फ़रमान है –

असथावर जंगम कीट पतंगा। अनिक जनम कीए बहु रंगा॥
ऐसे घर हम बहुतु बसाए। जब हम राम गरभ होइ आए॥
जोगी जती तपी ब्रहमचारी। कबहू राजा छत्रपति कबहू भेखारी॥

पृष्ठ - 326

एऊ जीअ बहुतु ग्रभ वासे। मोह मगन मीठ जोनि फासे॥

पृष्ठ - 251

जब मुझे पिछले जन्मों की याद आती है तो मैं बहुत दुःखी होता हूँ। आप समय निकालकर कुछ यौनियों का हाल मेरे से सुनो और निर्णय लेकर मुझे आज्ञा दें ताकि मैं जीवन मनोरथ प्राप्त कर सकूँ, गोबिंद मिलन की अपनी बारी को संभाल लूँ।

कहने लगा, ''पिता जी! एक जन्म में मैंने गधे का शरीर धारण किया हुआ था। मेरा मालिक ईंटे मिट्टी ढोने का काम किया करता था।

उस यौनि के मेरे माता पिता दिन रात काम करते थे और वे अपनी गरीबी में फंसे हुये दलिद्री में निर्वाह करते थे। उनका मालिक कुछ भी खाने के लिए चारा आदि नहीं लाकर देता था और वह इधर-उधर घूम फिर कर रूड़ियों (गन्दगी के ढेर) पर पहुँच जाते तथा पशुओं के खाये हुये चारे आदि में से निकाल-निकाल कर खाते थे, जो गोबर आदि के साथ सने हुये होते थे। वे भोजन की कमी के कारण बहुत कमज़ोर थे। जब चलते थे तो टाँगे आपस में टकराती थीं नसों पर ज़ख्म हो गये थे। कोई दवा दारू भी नहीं करता था। मैंने जब जन्म लिया तो मेरी माँ भूखी रहने के कारण, मेरी पालना के लिए पूरी तरह दूध भी नहीं पिला सकती थी। जब मेरे दाँत निकल आए, मैं भी उसी तरह से गन्दगी के ढेर में से चारा खाकर गुजारा करता था। मैं भी बहुत ही मरियल सा था। हमारे मालिक ने मेरी छोटी उम्र में ही मुझे अपने काम में लगा लिया और मेरी पीठ पर ईंटे रखने वाली बोरी रख दी। मेरी कमर बोझ सहन न करती हुई कमान की तरह झुक गई और मेरी पीठ को लागा लग गया। मैं बोझा उठाकर जल्दी-जल्दी नहीं चल सकता था। मेरा मालिक ठेके का काम करता था और अधिक से अधिक चक्कर लगाकर खूब पैसे कमाना चाहता था। जब मैं पूरी तरह ठीक ठाक न चल सकता तो वह मेरी टांगों में पूरे जोर के साथ, यहाँ तक कि मेरे सिर पर भी डंडे मारता था। कई बार तो ऐसा होता था कि एक तो मेरी पीठ पर बोझ होता और वह अपने बच्चों को भी मेरी पीठ पर बिठा देता मैं अन्दर ही अन्दर बहुत रोता था। पर प्रभु ने मुझे जुबान तो दी नहीं थी कि मैं बोल कर अपना दुःख बता सकता, न ही मैं आज़ाद था कि वहाँ से भाग सकता। बहुत ही बन्दिश का जीवन था। दम घुटता था। मेरी कमज़ोरी को उसने जल्दी ही भाँप लिया और मुझे एक रूपया लेकर धोबी के पास बेच दिया। वह धोबी, धोने वाले कपड़ों को भट्ठी (खार) में से निकालने के बाद उन गीले कपड़ों की गठड़ी मेरे ऊपर लाद देता जो भार मैं सहन नहीं कर सकता था। वह दूर रोही वाले तालाब पर कपड़े लाद कर धोने ले जाया करता था। मेरी पीठ पर से कपड़े उतार कर वह मेरे पैरों में रस्सा डाल देता था ताकि मैं कहीं दूर न चला जाऊँ और डंडा मार कर दूर भगा देता था। मैं खेतों में चला जाता था जिसकी रखवाली के लिए किसान ने कांटेदार टहनियों की बाड़ लगाई होती थी, उसमें खेतों के आस पास नमी होने से घास उग आई थी। घास की कोपलें बाहर निकल आई थीं, मैं उस घास के तिनकों को निकालने के लिये धीरे-धीरे मज़बूत जगह से पकड़ कर खींचना चाहता था पर मेरे नाक पर कांटे लग जाते और बीच में ही टूट जाते थे। पर पिता जी! मैं क्या करता। भूख का दुःख जिसे हो वही जान सकता है।

जिन्हें नाह, नाह करते हुये खाने के लिए पदार्थ मिलते हों, वह तो मेरे दु:ख का अनुमान ही नहीं लगा सकते। लगातार कांटों में उलझने से मेरा यह हाल हो गया कि मुँह सारा पक गया, अब घास भी नहीं खाई जा सकती थी, मेरे पेट की आग बुझाने के लिये मेरा मालिक भी कोई साधन न जुटाता। मैं इतना कमज़ोर हो गया कि मेरा चलना फिरना भी दूभर हो गया। एक दिन वह मुझे ऐसे रास्ते पर ले गया जहाँ से कीचड़ में से गुजरना पड़ता था। मैं उस कीचड़ में फंस गया, वहाँ काफी दल-दल थी। मैं जितना जोर लगाता बाहर निकलने का, उतना ही अन्दर धस जाता। मैं भी जानता था कि यदि मैं यहाँ फंसा रहा तो मेरे भूखे प्यासे का बहुत बुरा हाल होगा। मेरा मालिक बहुत ही कठोर दिल वाला था। वह हमेशा अपना भला देखता था, परमेश्वर नाम की चीज़, उसके अन्दर थी ही नहीं। उसने यह अच्छी तरह समझ लिया कि मैं अब उसके काम का नहीं रह गया, वह मुझे उसी प्रकार फंसे हुये को वैसे का वैसा ही उसी हालत में छोड़ कर चला गया। इस प्रकार उसने मुझे जिन्दा को ही तड़फ-तड़फ कर मरने के लिए छोड़ दिया। वहाँ पास ही एक पगडण्डी जाती थी जहाँ से राहगीर चक्कर लगाकर दूसरी ओर जाते थे। जब मुझे दलदल में फंसा हुआ देखा तो कुछ जवान आदमी मेरे पास आये। उन्होंने मुझे दलदल में से निकालना तो क्या था उलटा मेरी पीठ पर पैर रख कर दूसरी तरफ छलांगे लगाते थे। पिता जी! मेरी पीठ पर घाव (लागा) लगे हुये थे, कौए उड़-उड़ कर चोंच मार कर मांस निकाल निकाल कर खाते थे। मैं हिलने जुलने के सिवाय और क्या कर सकता था। जितना मैं हिलता जुलता उतना ही गारे में और फंसता चला जाता। अन्त उस दलदल में इतना फंस गया कि सांस लेने के लिए मैंने अपना मुँह बाहर की ओर निकाल कर रखा था। कौओं को भी पता चल गया कि यह हमें उड़ा नहीं सकता और उन्होंने मेरी जीवित की ही आँखें निकाल लीं। अन्त मेरे मुँह में गारा फंस गया, मेरा दम घुट गया और मैं मर गया। इतना कहकर यह ऋषि कुमार रोने लग पड़ा। उसका पिता भी यह सुनकर गम्भीर हो गया। उस ऋषि कुमार शुकदेव ने अपने पिता को कहा कि आपने अनुभव किया होगा कि मैंने कितना दु:ख भोगा होगा। मुझे अब मनुष्य जन्म की प्राप्ति हुई है मेरा यह दृढ़ इरादा है कि मैंने अब प्रभु का ज्ञान तथा मिलाप इसी जन्म में प्राप्त करना है। मैंने अपना जन्म व्यर्थ नहीं गंवाना, मैंने किसी और कार्य में नहीं फंसना। मुझे मानस जन्म मिला है, मुझे बड़ी खुशी है कि आप जैसे महान विद्वान मेरे पिता हैं। मैं अच्छी तरह समझता हूँ कि -

भई परापति मानुख देहुरीआ।

गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ।
अवरि काज तेरै कितै न काम।
मिलु साध संगति भजु केवल नाम॥
सरंजामि लागु भवजल तरन कै।
जनमु ब्रिथा जात रंगि माइआ कै॥ पृष्ठ - 12

सो पिता जी! आप मुझे आज्ञा दें कि मैं ध्रुव की तरह बाल अवस्था में ही महापुरुषों की संगत करके प्राप्ति का उद्यम करूँ। उसके पिता वेद व्यास जी ने आज्ञा दे दी और उन्होंने बन्दगी करके परम पद की प्राप्ति की -

बारह वरहे गरभासि वसि जमदे ही सुकि लई उदासी।
माइआ विचि अतीत होइ मन हठ बुधि न बंदि खलासी।
पिउ बिआस परबोधिआ गुर करि जनक सहज अभिआसी।
तजि दुरमति गुरमति लई सिर धरि जूठि मिली साबासी।
गुर उपदेसु अवेसु करि गरबि निवारि जगति गुरदासी।
पैरी पै पा खाक होइ गुरमति भाउ भगति परगासी।
गुरमुखि सुख फलु सहज निवासी॥ भाई गुरदास जी, वार 25/10

जन्म मरण का दुःख हो चाहे कोई और दुःख हो, रोग हो, हानि हो, विघ्नों से घिरा हुआ हो, पाँच कलेश - अविद्या, अभिनिवेश, अस्मिता, राग, द्वैष आदि लगे हुये हों, आशा तथा तृष्णा डायनें नोंच नोंच कर खाती हों, चाहे जितने मर्ज़ी मानसिक या सामाजिक कष्ट हों; सभी का केवल एक और एक ही इलाज है - परमेश्वर का नाम। गुरबाणी में फ़रमान आता है कि दुःख वाहिगुरू जी को भूलने से आता है -

दुखु तदे जा विसरि जावै। पृष्ठ - 98

दुःख के बारे में फ़रमान है -

दुखु विचि जंमणु दुखि मरणु दुखि वरतणु संसारि।
दुखु दुखु अगै आखीऐ पढ़ि पढ़ि करहि पुकार।
दुख कीआ पंडा खुल्हीआ सुखु न निकलिओ कोइ।
दुख विचि जीउ जलाइआ दुखीआ चलिआ रोइ। पृष्ठ - 1240

एक और जगह पर फ़रमान है -

खसमु विसारि कीए रस भोग।
तां तनि उठि खलोए रोग। पृष्ठ - 1256

जिस प्रकार महाराज जी फ़रमान करते हैं कि संसार में यदि कोई सुखी है तो केवल नाम जपने वाला है। सो महाराज जी इसका इलाज वाहिगुरू जी के भजन में, नाम में बताते हैं। आप फ़रमान करते हैं कि -

हरि अउखधु सभ घट है भाई। गुर पूरे बिनु बिधि न बनाई।

गुरि पूरै संजमु करि दीआ। नानक तउ फिरि दूख न थीआ॥
पृष्ठ - 259

वाहिगुरू जी की भक्ति में जो रंगा हुआ है उसके दु:खों का खातमा हो जाता है -

नानक सिफती रतिआ मनु तनु हरिआ होइ।
दुख कीआ अगी मारीअहि भी दुख दारू होइ॥ *पृष्ठ - 1240*

कंचन काइआ निरमल हंसु। जिसु महि नामु निरंजन अंसु।
दूख रोग सभि गइआ गवाइ। नानक छूटसि साचै नाइ॥
पृष्ठ - 1246

अन्यथा जो नाम को भूल जाते हैं उनके दु:खों का कहीं भी खातमा नहीं होता। सारी दुनियाँ दुखी है -

दुखी दुनी सहेड़ीऐ जाइ त लगहि दुख।
नानक सचे नाम बिनु किसै न लथी भुख।
रूपी भुख न उतरै जां देखां तां भुख।
जेते रस सरीर के तेते लगहि दुख॥ *पृष्ठ - 1287*

और फिर फ़रमान करते हैं कि जब तक इस जीव को परमेश्वर का ज्ञान नहीं होता, जब तक परमेश्वर के चल रहे हुक्म को पहचानता नहीं और अपना जीवन 'मैं' से ऊपर उठकर नहीं व्यतीत करता, तब तक इस जीव के दु:ख खत्म नहीं होंगे -

जब लगु हुकमु न बूझता तब ही लउ दुखीआ।
गुर मिलि हुकमु पछाणिआ तब ही ते सुखीआ॥ *पृष्ठ - 400*

जितना भी संसार में पसार करता है, सारे ही दुखों का कारण बनते हैं -

काम करोधु सबल संसारा।
बहु करम कमावहि सभ दुख का पसारा।
सतिगुर सेवहि से सुखु पावहि सचै सबदि मिलाइदा॥
पृष्ठ - 1060

गुरू महाराज जी का यह सिद्धान्त नहीं कि सारे कारोबार छोड़कर, न ही खेती करो, न ही कोई व्यापार, काम धन्धा करो, न ही बड़े-बड़े कारखाने लगाओ; गुरू महाराज जी तो फ़रमान करते हैं कि किरत करो नेकी की, हक की, पूरी मेहनत के साथ, पूरी ईमानदारी के साथ। जब वाहिगुरू जी ने दात बख्शी, लाभ दिया तो बाँट कर खाओ और फिर प्रभु का ध्यान हृदय में रखकर सब कुछ गुरू को समर्पित करके आप उसके प्रबन्धक बन कर, जो परम आज्ञा है - नाम जपने की, उससे कोताही न करो। गुरू महाराज जी ने दुनियाँ छोड़ने का सिद्धान्त नहीं दिया अपने

''वरतण बैराग'' ''मुख्य भक्ति'' तथा निश्चय ज्ञान का मार्ग बताया है। प्रभु प्राप्ति करने के बाद सारे दु:खों का खातमा अपने आप हो जाया करता है, क्योंकि प्रभु को भूलने से ही दु:ख उत्पन्न होते हैं। प्रभु को मिलने से सारे सुखों की अमृत वर्षा जीवन में होती है तथा दु:ख नाम की परिभाषा ही समाप्त हो जाती है –

दुखु नाही सभु सुखु ही है रे एकै एकी नेतै।
बुरा नाही सभु भला ही है रे हार नही सभ जेतै॥
सोगु नाही सदा हरखी है रे छोडि नाही किछु लेतै।
कहु नानक जनु हरि हरि हरि है कत आवै कत रमतै॥

पृष्ठ - 1302

सो इन सभी उपलब्धियों को प्राप्त करने के लिए एक मार्ग है जिसे हम 'आत्म मार्ग' कहते हैं। आप से प्रार्थना है कि ध्यान से पढ़ो, विचार करो और उस पर अमल करो। अपनी तरफ से हमने कोई भी बात नहीं लिखनी और न ही कोई माँगे हुये सिद्धान्त आपके साथ सांझे कर रहे हैं। गुरू ग्रन्थ साहिब जी महाराज जी की बाणी सर्वश्रेष्ठ है यह Universal message (विश्व सन्देश) है जो सारी मानवता से सम्बन्ध रखता है और इस सिद्धान्त को अपनाने से जीव जन्तुओं, पशु पंछियों सर्व धर्म के मनुष्यों के साथ परम सांझ पैदा होती है और यह यहाँ तक बढ़ जाती है कि सभी में अपना आपा ही प्रत्यक्ष दिखाई देता है।

आत्म मार्ग पर चलने के लिए यह बहुत जरूरी है कि उन महापुरुषों की संगत की जाये जो आत्म मण्डल में प्रवेश कर चुके हों तथा जिन्होंने परमेश्वर को साक्षात अपने अन्दर प्रकट कर लिया हो उन्हें चाहे सन्त कह लो, गुरमुख कहो, साधु कहो, पीर कहो चाहे गुरू कहो; उनकी संगत के बिना इस गुप्त मार्ग की कोई सूझ नहीं होती। मनुष्य अपने बल पर विश्वास करके चलता है और अनेक व्यापारिक पुस्तकें बाज़ार में मिल जाती हैं जिनके अन्दर केवल आॢथक लाभ को समक्ष रखते हुये भ्रामक बातें लिखी जाती हैं। यह जीव इसी भूल भुलैया में पड़कर अपना समय व्यर्थ गवां देता है। यदि शरां से प्यार करने वालों से रास्ता पूछा जाये तो उन्हें तो स्वंय ही नहीं पता वे शरां की बातें करके गहरे संशय हृदय में बिठा देते हैं तथा सत्य की खोज करने के लिए वे महापुरुषों की संगत में जाने से मना करते हैं। यह उनका दोष नहीं केवल अनजानपना अज्ञानता है कि उन्हें स्वंय ही इस मार्ग का पता नहीं होता। इसी प्रकार जो दिन रात इस रास्ते पर चलकर आगे बढ़ रहे हैं पर अभी तक उन्हें मंज़िल प्राप्त नहीं हुई, उनकी संगत भी खतरनाक हुआ करती है जैसा कि कहावत है –

'नीम हकीम खतरा-ए-जान नीम मुला खतरा-ए-इमान'

जो इस मार्ग को तय करके प्रभु मण्डल में प्रवेश रखते हैं उनसे इस मार्ग का भेद मिल सकता है पर वे पूरी तरह से निरिच्छत बेपरवाह होते हैं। वे जब तक यह महसूस नहीं करते कि जिज्ञासु सचमुच ही इस रास्ते पर चलना चाहता है तो उसे बता देते हैं कि प्यारे! यह सौदा बहुत महंगा है। इसमें जो तू अब है, जिसे 'हउमै' से भरा जीवन कहते हैं, उसे तुझे छोड़ना पड़ेगा और आज्ञाकारी मनुष्य बन कर तू इस मार्ग पर चल सकता है। तुझे अपना तन, मन तथा धन जो कुछ भी तेरे पास है सब कुछ फीस के रूप में सन्तों के चरणों में समॣपत करना पड़ेगा। वह निरच्छित जिज्ञासु की पूर्ण निष्ठा परख कर फिर इस मार्ग पर चलाते हैं। उसकी दृढ़ता और लगन जितनी अधिक होगी उतना ही मार्ग जल्दी तय करेगा। इस मार्ग पर चलने के लिए बहुत ही जरूरी नियम पूरी तरह पालन करने की जरूरत है। सबसे पहली आवश्यकता विश्वास की है, श्रद्धा की है। वाहिगुरू जी के बारे में पूरा विश्वास होना चाहिए कि वह प्यार स्वरूप होकर सारे संसार में अदृश्य स्वरूप, हर जगह पर परिपूर्ण है। वह मुझे हर समय देख रहे हैं चाहे मैं उन्हें नहीं जानता तो भी मुझे सारे सुख दे रहे हैं; खाने के लिये अन्न, पहनने के लिए कपड़ा, काम करने के लिये सुन्दर शरीर दिया है। वे सदा ही दयालु हैं, वे कभी भी नाराज़ नहीं होते क्योंकि वे तो केवल निरे प्यार का ही स्वरूप हैं –

सदा सदा सदा दइआल।
सिमरि सिमरि नानक भए निहाल॥ पृष्ठ - 275

मेरे एक एक रोम में उनका अस्तित्व प्रत्यक्ष है पर मैं उनकी तरफ कोई भी ध्यान नहीं देता तथा इसके विपरीत माया नागिन के छल तथा कपट में फंस कर उस प्रभु को सदा ही भूला रहता हूँ। यह मेरी भूल है क्योंकि गुरू महाराज जी यह कहते हैं कि वह परमेश्वर –

सो अंतरि सो बाहरि अनंत।
घटि घटि बिआपि रहिआ भगवंत।
धरनि माहि आकास पइआल।
सरब लोक पूरन प्रतिपाल।
बनि तिनि परबति है पारब्रहमु।
जैसी आगिआ तैसा करमु।
पउण पाणी बैसंतर माहि।
चारि कुंट दहदिसे समाहि।
तिस ते भिंन नही को ठाउ।
गुर प्रसादि नानक सुखु पाउ॥ पृष्ठ - 294

गुरू दशमेश पिता जी फ़रमान करते हैं कि वाहिगुरू जी हर जगह रमे हुये हैं वे सब कुछ जानते हैं, परम चेतन हैं और प्यार का स्वरूप हैं –

जत्र तत्र दिसा विसा हुइ फैलिओ अनुराग। *जापु साहिब*

तथा आप अकाल उस्तति में फ़रमान करते हैं –

जले हरी। थले हरी। उरे हरी। बने हरी।
गिरे हरी। गुफा हरी। छिते हरी। नभे हरी॥
ईहां हरी। ऊहां हरी। जिमी हरी। जमा हरी॥
अलेख हरी। अभेख हरी। अदोख हरी। अद्वैख हरी॥

अकाल उस्तति

वाहिगुरू जी परम तथा सदीवी अस्तित्व है जो संसार की उत्पत्ति से पहले भी सत्य था और संसार के अस्तित्व में आने के बाद भी सत्य स्वरूप ही रहे। अब भी सत्य स्वरूप हैं, जब संसार अपने कार्य शबद में लीन हो जायेगा उस समय भी वे केवल सत्य स्वरूप में ही रहेंगे। उन्होंने अपनी मौज में स्वंय ही अपने आपको सजाया है और स्वंय ही नाम उत्पत्ति की है और स्वंय ही ब्रह्म शब्द होकर अनेक प्रकार की रंग बिरंगी सृष्टियाँ रची हैं। भाई गुरदास जी इसे स्पष्ट करते हुये अंकित करते हैं –

निरंकारु आकारु होइ एकंकारु अपारु सदाइआ।
एकंकारहु सबद धुनि ओअंकारि अकारु बणाइआ।

भाई गुरदास जी, वार 26/2

आसा जी की वार में सृष्टि रचना का ज़िक्र करते हुये पहले श्लोक की पंक्ति में फ़रमान है –

आपीन्है आपु साजिओ आपीन्है रचिओ नाउ।
दुयी कुदरति साजीऐ करि आसणु डिठो चाउ।
दाता करता आपि तूं तुसि देवहि करहि पसाउ।
तूं जाणोई सभसै दे लैसहि जिंदु कवाउ।
करि आसणु डिठो चाउ॥ *पृष्ठ - 463*

इन गुरमत सिद्धान्तों के अनुसार वाहिगुरू जी ने अनेक रूप धारण करके अपने आप को प्रकट किया है। उनके करारे हुक्म के अधीन खण्डों, ब्रह्माडों की उत्पत्ति हुई, जीवों की उत्पति हुई, ऊँच नीच, सुख दुःख की उत्पत्ति हुई, तथा सबसे अधिक भ्रम में डालने वाले 'हउमै' तत्व की उत्पत्ति हुई। वाहिगुरू जी दूर होकर अलग-थलग होकर, बेपरवाह होकर नहीं रहते। वे सभी जीवों के दुखों को पहचानते हैं, उनके द्वारा की गई गलतियों को माफ करते हैं। माता तथा पिता से कहीं अधिक प्यार करते हैं। सो ऐसे प्रभु को सदा ही अपने हृदय में प्यार करना और पूर्ण विश्वास में रहना इस मार्ग पर चलने के लिये अत्यन्त आवश्यक है। यदि यह विश्वास पहले उत्पन्न न हुआ तो यह ऐसे रहता है जैसे धरती को हल चलाकर खूब संवारा जाये परन्तु उसमें बीज न डाला जाये, कोई भी फल हाथ नहीं लगता। सो इसलिये वाहिगुरू जी पर विश्वास, उसकी कलात्मक शक्तियों पर विश्वास, उसके परम दयालु, कृपालु स्वभाव पर विश्वास,

उसकी परम निकटता पर विश्वास बहुत ही जरूरी है। गुरू महाराज जी उनके बारे में फ़रमान करते हैं कि वाहिगुरू जी सच्चे दिल से की गई पुकार को सुन लेते हैं –

हाथी की पुकार पल पाछै पहुचत ताहि
चीटी की चिघार पहिले ही सुनीअत है॥ *अकाल उस्तति*

इस विश्वास को पक्का करने के लिए सत्य शास्त्रों की पवित्र बाणी का अध्ययन पूरी श्रद्धा के साथ करना जरूरी है। यह विश्वास ही था कि नामदेव जी ने प्रभु की परिपूर्णता अनुभव करते हुये दूध कटोरी में रखा पिला दिया –

दूधु कटोरै गडवै पानी। कपल गाइ नामै दुहि आनी।
दूधु पीउ गोबिंदे राइ। दूधु पीउ मेरो मनु पतीआइ।
नाही त घर को बापु रिसाइ।
सुोइन कटोरी अंम्रित भरी। लै नामै हरि आगै धरी।
एकु भगतु मेरे हिरदे बसै। नामे देखि नराइनु हसै।
दूधु पीआइ भगतु घरि गइआ। नामे हरि का दरसनु भइआ॥
पृष्ठ - 1163

इसी प्रकार प्रेम वश होकर धन्ने भगत का प्रेम देखकर भोजन भी कर लिया और लस्सी भी पी ली। जैसा कि फ़रमान है –

इह बिधि सुनि कै जाटरो उठि भगती लागा।
मिले प्रतखि गुसाईआ धंना वडभागा॥ *पृष्ठ - 488*

भाई गुरदास जी ने बहुत विस्तार से उसकी कथा लिखी है–

बाम्हणु पूजै देवते धंना गऊ चरावणि आवै।
धंनै डिठा चलितु एहु पुछै बाम्हणु आखि सुणावै।
ठाकुर दी सेवा करै जो इछै सोई फलु पावै।
धंना करदा जोदड़ी मै भि देह इक जे तुधु भावै।
पथरु इकु लपेटि करि दे धंनै नो गैल छुडावै।
ठाकुर नो न्हावालि कै छाहि रोटी लै भोगु चढ़ावै।
हथि जोड़ि मिनति करै पैरी पै पै बहुतु मनावै।
हउ भी मुहु न जुठालसाँ तू रुठा मै किहु न सुखावै।
गोसाई परतखि होइ रोटी खाहि छाहि मुहि लावै।
भोला भाउ गोबिंद मिलावै॥ *भाई गुरदास जी, वार 10/13*

सैण सन्तों के कीर्तन में मस्त होकर सारी रात कीर्तन सुनता रहा और अमृत बेला में सन्तों को जल पान तथा भोजन कराया और फिर सन्तों को प्रेम सहित विदा किया। वह प्रतिदिन रीवा वाले राजा की सेवा करने जाया करता था और शरीर की मालिश करने की सेवा किया करता था। राजा के शरीर में एक फोड़ा था, सैण के मालिश करने से उसे काफी

आराम मिल जाता था। पर आज सैण जी साधुओं की सेवा में लीन रहे और राज दरबार जाना भूल गये। जब दिन चढ़ आया, साधुओं को विदा किया तो उन्हें ध्यान आया कि मैंने तो राजा की सेवा करने जाना था। मन में अनेक प्रकार के विचार उठे कि अब राजा मुझे क्या कहेगा, पता नहीं कैसा दण्ड देगा क्योंकि मैं डयूटी न दे सका, पर अपने भक्तों को प्यार करने वाला प्रभु, सैण का रूप धारण करके, राजा की सेवा करता रहा। वाहिगुरू जी के स्पर्श करने की देरी थी कि राजा का शारीरिक रोग, मानसिक तनाव दूर हो गया और वह परम प्रसन्न हो गया। जब सैण जी समय निकाल कर डयूटी पर जाते हैं तो राजा ने दूर से आवाज़ लगाई कि भगत जी! मेरे पास आओ और अपने गले का कीमती चोगा उतार कर सैण के गले में हाथों से डाल दिया और चरणों में नमस्कार करके कहा कि मैं आप जैसे भगत से सेवा करवाता रहा, आपके स्पर्श से मेरे सारे रोग दूर हो गये। मेरी गलती माफ करो, मुझे अपना शिष्य बना लो। यह थी वाहिगुरू जी की निकटता और उनके भक्त वत्सल होने की अवस्था। कोई भी भक्त हो वे उसकी रक्षा स्वंय करते हैं।

प्रहलाद के साथ उसके पिता का विरोध हो गया। वह नहीं चाहता था कि उसका पुत्र प्रभु का भक्त हो, उसने उसे मारने के लिये, उस पर बाणों की बौछार करवाई, पर एक भी बाण उसे न लगा; ऊँचे पहाड़ की चोटी पर से फैंका गया, धरती पर धीरे-धीरे ऐसे आकर टिक गया जैसे कोई रूई का फोया होता है। पत्थर के साथ बान्ध कर पानी में फैंक दिया गया, पर पानी डुबा न सका। उसके सारे बन्धन कट गये, पानी के ऊपर ऐसे बैठे थे जैसे धरती पर बैठे हों। प्रहलाद जी को अग्नि में जलाने का प्रयत्न किया गया पर आग ने अपना जलाने का स्वभाव बदल लिया तथा आग जला न सकी। अन्त में हरिणाक्ष ने गर्म-गर्म थम्ब के साथ प्रहलाद को लिपट जाने को कहा। प्रहलाद को प्रभु प्रत्यक्ष रूप में नज़र आता था उसने उस तपते हुये थम्ब को ब्रह्म रूप समझकर प्यार के साथ बाजुओं में भर लिया। उसका शरीर जलने की बजाय ठण्डा हो गया। यह कौतुक देखकर हरिणाक्ष ने क्रोध में भर कर पूछा, "मुझे बता कि तेरी रक्षा करने वाला कहाँ है? तब प्रहलाद ने कहा पिता जी! आप मुझे प्रश्न करो कि मेरी रक्षा करने वाला कहाँ नहीं है, वह तो हर समय मेरे साथ है, मैं उसके बिना जीवित नहीं रह सकता, जैसे मछली पानी के बिना जीवित नहीं रह सकती -

जिउ मछुली बिनु पाणीऐ किउ जीवणु पावै।
बूंद विहूणा चात्रिको किउकरि त्रिपतावै।
नाद कुरंकहि बेधिआ सनमुख उठि धावै।

भवरु लोभी कुसम बासु का मिलि आपु बंधावै।
तिउ संत जना हरि प्रीति है देखि दरसु अघावै।   *पृष्ठ - 708*

उसने कहा कि वह इस थम्ब में भी है जिसे तूने अभी अपनी बाजुओं में डाला हुआ था। प्रहलाद ने कहा, ''पिता जी! वह परमेश्वर कण-कण में, एक-एक अणु परमाणु में समाया हुआ है। सारे ब्रह्मंाड में कोई ऐसी जगह नहीं है जहाँ मेरा प्रभु न हो। हरिणाक्ष ने गुस्से में आकर थम्ब में गुर्ज मारी, ''हुआ क्या?'' थम्ब में से निकल कर नरसिंह रूप प्रकट हो गया जिसे भाई गुरदास जी ने प्रकट करते हुये लिखा है -

घरि हरणाखस दैत दे कलरि कवलु भगतु प्रहिलादु।
पढ़न पठाइआ चाटसाल पाँधे चिति होआ अहिलादु।
सिमरै मन विचि राम नाम गावै सबदु अनाहद नादु।
भगति करनि सभ चाटड़ै पांधे होइ रहे विसमादु।
राजे पासि रूआइआ दोखी दैति वधाइआ वादु।
जल अगनी विचि घतिआ जलै न डुबै गुर परसादि।
कढि खड़गु सदि पुछिआ कउणु सु तेरा है उसतादु।
थंम्हु पाड़ि परगटिआ नरसिंघ रूप अनूप अनादि।
बेमुख पकड़ि पछाड़िअनु संत सहाई आदि जुगादि।
जै जै कार करनि ब्रहमादि॥   *भाई गुरदास जी, वार 10/2*

वाहिगुरू जी की प्राप्ति का बहुत विस्तार के साथ ऊपर वर्णन किया जा चुका है कि जब तक जिज्ञासु के मन में वाहिगुरू जी के बारे में सूझ पैदा नहीं होती तथा उसके अस्तित्व (हौंद) पर पूरा विश्वास नहीं होता तब तक जिज्ञासु के अन्दर कोई भी रुचि पैदा नहीं हुआ करती, उसकी सारी वृत्तियों का झुकाव दृष्टिमान में उलझा होता है। उसके पास कोई समय ही नहीं होता कि वह अपने अन्दर निर्णयपूर्वक फैसला कर सके और प्रभु मिलाप के लिये तत्पर हो। वाहिगुरू जी ने माया बहुत प्रबल बनाई है जिसका मुकाबला करना जीव की शक्ति से बाहर है क्योंकि जीव को जो संसार का काम काज चलाने के लिए पांच ज्ञानेन्द्रियाँ मिली हुई हैं उनके साथ यह सदा ही संसार की ऊपरी पर्त में खोया रहता है। ऐसा तत्व वेता महापुरुषों का अनुभव है कि जब यह जीव माता के पेट में उल्टा लटक रहा होता है तो इसकी सुखमना नाड़ी जो रीढ़ की हड्डी के बीचों बीच में से होती हुई दिमाग के उस भाग से जुड़ती है जिस स्थान पर इस जीव को कई झलकारे प्रत्यक्ष रूप में दिखाई देते हैं, उसी भाग में यह अपने पिछले जन्म देखता है, प्रभावित होता है, उस समय वाहिगुरू जी के नाम की धुन जिसके बारे में गुरू दशमेश पिता जी ने फ़रमान किया है -

प्रथम ओंकार तिन कहा। सो धुन पूर जगत मोह रहा।

वह शब्द जो अक्षरों का मोहताज (गुलाम) नहीं है, वह प्राकृतिक शब्दों जैसा नहीं है। वह एक ऐसी अनवरत धुन है जिसकी शक्ति, ऊर्जा की कीमत कोई भी नहीं पा सकता, उसे नाम धुन कहकर भी जाना जाता है और महाराज जी ने फ़रमान किया है –

साई नामु अमोलु कीम न कोई जाणदो।
जिना भाग मथाहि से नानक हरिरंगु माणदो॥ पृष्ठ - 81

यह धुन सदा ही अखण्ड गूंजती है। यह कोई प्राकृतिक आवाज़ नहीं, अज्ञात ऊर्जा नहीं यह परम चेतन सत-चित्त रूप वाहिगुरू जी का साकार रूप जिसे शबद ब्रह्म कहते हैं तथा जिसे बहुत से विचारवान लोगों ने ओंकार कह कर दृष्टाया है। यह वह चेतन धुन है जिसमें स्वत: सिद्ध ही अनन्त-अनन्त शक्तियाँ हैं, योजनाएं हैं। अनेक शक्तियों का प्रकाश उसमें से होकर विराट के प्रबन्ध को अपनी-अपनी समर्थ के अनुसार उनकी संभाल कर रहा है, चला रहा है। इस चेतन धुन को महाराज जी ने शबद कहकर पुकारा और यह शबद ब्रह्म है, शबद गुरू है चाहे अक्षरों के रूप में हो, चाहे धुन के रूप में अखण्ड धुन हो, चाहे सर्व आकारों के रूप में प्रत्यक्ष प्रकट हुई हो, इन सब को ब्रह्म शब्द कहा जाता है और नाम का अनुभव भी कहा जाता है। इसकी ठीक ढंग से जान पहचान करवाना अक्षरों की शक्ति से बाहर है। मनुष्य को प्राप्त ज्ञानेन्द्रियों की पहुँच से बहुत दूर है। इसे वही जान सकते हैं जिन्होंने कठोर परिश्रम करके इस नाम मण्डल में प्रवेश किया है। अन्तर केवल नामों का हुआ करता है। इसे यदि आत्म मण्डल कहें तो भी कोई गलती नहीं है, नाम मण्डल कहें यह भी यथार्थ है। जो कुछ यह है, वही वैसा ही है, व्याख्या का गुलाम नहीं। इसके बारे में कहा नहीं जाता केवल तत्व वेत्ता समर्थ महापुरुष शबद गुरू से प्रेरित जिज्ञासु की मदद कर देते हैं और ऐसे साधन बताते हैं, करवाते हैं कि जीव के अन्दर इस शब्द ब्रह्म को अनुभव करने की या आत्म स्थिति को साक्षात्कार करने की परम शक्ति द्वारा प्रेरणा और कृपा हो जाये। वह गूंगे की मिठाई के अक्षरों की मोहताज नहीं केवल उच्च अनुभव ही इसकी गहराई बता सकता है।

सो मैं जिक्र कर रहा था कि यह जीव जब माता के पेट में होता है, श्वास-श्वास इस धुन की याद में समाधिष्ट रहता है – फ़रमान है –

गरभ कुंट महि उरध तप करते।
सासि सासि सिमरत प्रभु रहते।
उरझि परे जो छोडि छडाना।
देवनहारु मनहि बिसराना। पृष्ठ - 251

सो इतने उच्च कोटि के अनुभव की प्राप्ति करके इस जीव का पतन

क्यों हुआ? गुरू महाराज जी इसकी व्याख्या करते हुये बहुत ही सुन्दर ढंग से हमारी सीमित बुद्धि को गहराईयों में ले जाते हुये फरमाते हैं –

जैसी अगनि उदर महि तैसी बाहरि माइआ।
माइआ अगनि सभ इको जेही करतै खेलु रचाइआ।
जा तिसु भाणा ता जंमिआ परवारि भला भाइआ।
लिव छुड़की लगी त्रिसना माइआ अमरु वरताइआ। पृष्ठ - 921

और माया के बारे में व्याख्या करते हुये फ़रमान करते हैं कि माया उस वस्तु को कहते हैं जो इस जीव की लगी हुई धुन को खंडित कर देती है। इस जीव को अपने अन्दर उलझा देती है –

एह माइआ जितु हरि विसरै मोहु उपजै भाउ दूजा लाइआ।
पृष्ठ - 921

का फ़रमान बहुत ही विचारणीय है और महाराज जी इस निराश हुये जीव को धीरज बंधाते हैं तथा फ़रमान करते हैं कि यदि इस जीव की लिव पुनः लग जाये वह शबद धुन अखण्ड रूप में हिलोरे लेने लग जाये; चाहे उसका रूप 'रस' का हो, 'ज्योति' का हो या अखण्ड शबद का हो, उच्च अनुभव का हो या विवेक अवस्था की प्राप्ति हो; उसमें लीन होकर जीव अखण्ड वृत्ति धारण कर ले तो महाराज जी फ़रमान करते हैं कि यह बिछुड़ा हुआ जीव पुनः इसी जीवन में उस अखण्डाकार शबद के साथ जिसे ब्रह्म या आत्मा या वाहिगुरू कहा जाता है, मिल सकता है फ़रमान है –

कहै नानकु गुर परसादी जिना लिव लागी
तिनी विचे माइआ पाइआ॥ पृष्ठ - 921

संसार में जीव का पहला श्वास माया के प्रभाव में आ गया। संसार से विदा होने से पहले यदि यह पुनः उसी मण्डल की लिव में पहुँच जाये तभी यह अपना जीवन मनोरथ प्राप्त कर लेगा। पहला श्वास ही जीव का तुरन्त माया के अधीन हो जाता है, वह उसे मात गर्भ में हुये सारे अनुभव एक दम उसी वक्त भुला देता है। श्वास आते ही भूख लगती है, इसे पीने के लिये माता अपने वक्षस्थल से दूध पिलाती है, दूध का अन्दर जाना माया का प्रभाव हो जाया करता है।

एक साखी आती है जब रविदास जी ने जन्म लिया तो उनकी लिव उसी तरह लगी हुई थी, उन्होंने माता का दूध न पीया, माता-पिता को बड़ी चिन्ता हुई, वे पूर्ण गुरू रामानन्द जी के पास गये, उस दीन दयाल ने इस माता-पिता का दुःख अनुभव किया और स्वंय चलकर रविदास जी के बालक शरीर के पास पहुँचते हैं। आप समर्थ थे, त्रिकालदर्शी थे, अन्दर ही अन्दर परा बाणी द्वारा रविदास जी के साथ सारी बातें की और फ़रमान

किया कि जिस माया से तू डरता है उस माया से बचाने के लिए हमारा शरीर पूरी तरह से तुम्हारी मदद करेगा। संसार की मर्यादा के अनुसार तुम्हें शरीर की रक्षा के लिये दूध पीना अति जरूरी है। जो माया का असर तेरे ऊपर पड़ना है सो उस माया के प्रभाव को दूर करने के लिए अकाल पुरूष ने हमें उत्तरदायित्व सौंपा है। समय आने पर इस माया के प्रभाव को शबद के बल द्वारा जब तू गुरू कृपा के साथ संघर्ष करेगा, समाप्त कर दिया जायेगा। महापुरुषों ने अपना बिरद पहचाना और रविदास जी की माया से रक्षा की।

गुरू महाराज जी इसीलिए इस माया को नागिन कहते हैं लेकिन यह नागिन बहुत सुन्दर है इसका स्वरूप नाग जैसा बिल्कुल भी नहीं है। कहीं इसका स्वरूप प्यार से भरा हुआ तोतली बातें करने वाले बच्चों के रूप में है, कहीं अति प्यारी स्त्री के रूप में है, कहीं यह सुन्दर मोतियों के रूप में नज़र आता है, कहीं धन के रूप में छनकता है, इसे ठगनी भी कहते हैं इसके अनेक रूप हैं। यह नागिन की तरह किसी का लिहाज़ नहीं करती। जो भी इसे प्यार करता है, उसे खा जाना, हड़प कर जाना, इसका सहज काम है। महाराज जी इसके सुन्दर रूप के अन्दर छिपे हुये क्रूर रूप के बारे में बताते हुये फ़रमान करते हैं कि –

माइआ होई नागनी जगति रही लपटाइ।
इस की सेवा जो करे तिसही कउ फिरि खाइ।
गुरमुखि कोई गारड़ू तिनि मलिदलि लाई पाइ। *पृष्ठ - 510*

महाराज जी फ़रमान करते हैं कि यह बड़ी प्यारी है पर इसका असली रूप कोबरे नाग की तरह है जो ऊपर से बहुत ही सुन्दर पर्दे से ढका हुआ है। महाराज जी फ़रमान करते हैं –

माइआ भुइअंगमु सरपु है जगु घेरिआ बिखु माइ। *पृष्ठ - 1415*

तथा साथ ही बहुत ही दया करके यह भेद भी बताते हैं कि यह न तो पुस्तकें पढ़ कर इसको मारा जा सकता है, न तीर्थ यात्रा करके, न शास्त्रों के अर्थों द्वारा, न ही अनेक प्रकार के जप करके इसे मारा जा सकता है इसे यदि कोई चीज़ मार सकती है तो वह गुरू की कृपा से इस जीव का नाम मण्डल में प्रवेश होकर, नाम शक्ति ही मार सकती है –

बिखु का मारणु हरिनामु है गुर गरुड़ सबदु मुखि पाइ।
पृष्ठ - 1415

इसके बल के बारे में ज़िक्र करते हुये फ़रमान करते हैं कि–

सरपनी ते ऊपरि नही बलीआ।
जिनि ब्रहमा बिसनु महादेउ छलीआ॥
मारु मारु स्रपनी निरमल जलि पैठी।

जिनि त्रिभवणु डसीअले गुर प्रसादि डीठी॥　　　*पृष्ठ - 1415*

सो यह माया का सबसे पहला कर्म है कि इस जीव को वाहिगुरू जी से पूरी तरह भुला देना और सारी जिन्दगी उसे वाहिगुरू जी के अस्तित्व पर विश्वास न होने देना, वह वाहिगुरू जो इस जीव के साथ सदीवी रहते हैं, यहाँ तक कि यह जीव स्वतः वाहिगुरू जी की ओर से बॄहमुख होकर माया के साथ घुल मिल गया। जिसके बारे में थोड़ी सी और व्याख्या के साथ आप फ़रमान करते हैं -

पहिलै पिआरि लगा थण दुधि। दूजै माइ बाप की सुधि।
तीजै भया भाभी बेब। चउथै पिआरि उपंनी खेड।
पंजवै खाण पीअण की धातु। छिवै कामु न पुछै जाति।
सतवै संजि कीआ घर वासु। अठवै क्रोधु होआ तन नासु।
नावै धउले उभे साह। दसवै दधा होआ सुआह।
गए सिगीत पुकारी धाह। उडिआ हंसु दसाए राह।
आइआ गइआ मुइआ नाउ। पिछै पतलि सदिहु काव।
नानक मनमुखि अंधु पिआरु। बाझु गुरू डुबा संसारु॥

पृष्ठ - 137

सो अन्त में महाराज जी फ़रमान करते हैं कि यह मनमुख इस बात के बावजूद कि तत्व वेत्ता महापुरुष जीवों की दयनीय हालत देखकर इन्हें आवाज़ें लगा लगाकर बुलाते हैं। समझाते हैं, इन्हें बचाने का यत्न करते हैं पर क्या मज़ाल की इन जीवों के चित्त पर इसके उच्च सिद्धान्तों, उच्च उपदेशों का मामूली सा भी प्रभाव पड़ जाये। बेईमान आदमी अपनी बेईमानी में मस्त है, राजसी मनुष्य राजसी चालों में मस्त हैं, उसके सामने कुसयों, माया की ठनठनाहट उससे उलूल-जलूल बुलवाती है, सन्तों की निन्दा करते हैं और परमेश्वर से मुख मोड़कर तड़फ-तड़फ कर मरता है और मन के कहने पर चल कर सारा जीवन बर्बाद कर लेता है फ़रमान है -

मनमुखि आवै मनमुखि जावै।
मनमुखि फिरि फिरि चोटा खावै।
जितने नरक से मनमुखि भोगै गुरमुखि लेपु न मासा हे॥

पृष्ठ - 1073

इस प्रकार व्यापार में फंसा हुआ आदमी दिन-रात पैसे के लाभ की योजनाएं बनाता रहता है। किस-किस को गिनाया जाये यह सारा संसार ही माया की लपेटों में बन्धा पड़ा है और उसके साथ एक मत होकर गुरू के वचनों को सुनता तक नहीं। महाराज जी फ़रमान करते हैं कि माया में मस्त हुआ मनुष्य अन्तिम सीमा तक जिसे 'अति' कहते हैं, उस सीमा तक पहुँच कर आँखों से अन्धा होता है, कानों से बहरा होता है और वह सत्य शब्द की आवाज़ को बिल्कुल ही नहीं सुनता। महाराज जी फ़रमान

करते हैं –

माइआधारी अति अंना बोला।
सबदु न सुणई बहु रोल घचोला॥ *पृष्ठ - 313*

बाबा फरीद जी इस बेबस हालत को अनुभव करके हैरान हैं कि क्या किया जाये? इस मूर्ख जीव की भलाई के लिए महापुरुष हुक्म में बन्धे हुये इस जीव को हर सम्भव तरीके से सावधान करते हैं पर किया क्या जाये? इस जीव पर इन वचनों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता –

फरीदा कूकेदिआ चांगेदिआ मती देदिआ नित।
जो सैतानि वंञाइआ से कित फेरहि चित॥ *पृष्ठ - 1378*

इस प्रकार इस जीव को माता के गर्भ में ज्ञान था, यह शबद के साथ जुड़ा हुआ था, उस धुन की मीठी फुंवारे इसके अंग-प्रत्यंग को सुन्दर रूप दे रही थीं। यह समाधिष्ठ अवस्था में मात गर्भ की अग्नि से सुरक्षित था पर जब इस पर माया का प्रभाव हुआ उस समय सब कुछ भूल गया और अब स्वंय बड़ा ज्ञानी बन गया, बड़ा पंडित बन गया, Ph.D; D.lit कर गया, बड़े-बड़े award (इनाम) इसने हासिल कर लिये, हुआ क्या? प्रतिपल इसकी आयु बीतती चली गई। अन्त वह समय भी आ गया जब इसे इस संसार से ले जाने का बुलावा आ गया; फिर क्या था? अन्धेरा ही अन्धेरा। गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं कि प्यारे! तूने पुस्तकों के ढेरों के ढेर पढ़ लिये पर एक बात समझने वाली थी जिसे तू समझ न सका, उससे तू वंचित रह गया। तेरी प्रशंसा करते हैं कि तू बेअन्त पुस्तकें पढ़ गया पर हुआ क्या?

पड़ि पड़ि गडी लदीअहि पड़ि पड़ि भरीअहि साथ।
पड़ि पड़ि बेड़ी पाईऐ पड़ि पड़ि गडीअहि खात।
पड़अहि जेते बरस बरस पड़ीअहि जेते मास।
पड़ीऐ जेती आरजा पड़ीअहि जेते सास।
नानक लेखै इक गल होरु हउमै झखणा झाख॥ *पृष्ठ - 467*

एक बात को तू समझ न सका क्योंकि प्रकाश (ज्ञान) के साथ तूने प्यार नहीं किया। तेरा प्यार तो अन्धकार (अज्ञान) के साथ हो गया और अन्धकार के साथ तू मस्त हो गया। वाहिगुरू जी ने तुझे ज्ञान चक्षु दिये हुये थे जिनके द्वारा तू दिव्य दृष्टि प्राप्त करके इसी संसार की सत्यता को देख सकता था पर तुझे किसी प्रकार की रूचि न लगी क्योंकि तेरा प्यार अन्धकार के साथ था। प्रकाश के साथ नहीं था। महाराज जी फ़रमान करते हैं –

नानक मनमुखि अंधु पिआरु। बाझु गुरू डुबा संसारु॥
पृष्ठ - 138

इसलिये उपर्युक्त प्रार्थना की गई थी कि इस जीव द्वारा अन्धकार में गोते लगाने के कारण वाहिगुरू जी के अस्तित्व पर कोई विश्वास नहीं होता। विश्वास पहली शर्त है जब तक यह पूरी नहीं होती, तब तक यह अगम अगोचर के मार्ग पर कदम रखने का अधिकारी नहीं हो सकता। इसे श्रद्धा कहो, विश्वास कहो, यह अति आवश्यक है। हम पर गुरू महाराज जी ने बड़ी कृपा की है हमें शबद ब्रह्म गुरू ग्रन्थ साहिब जी की साकारता में गुरू रूप होकर अन्धकार में से निकालने के लिए बाणी गुरू का मिलाप हुआ है पर हम शीश झुकाते हैं, गुरू गुरू की रट लगाते हैं, पर हमारे अन्दर कितना विश्वास है, कितनी श्रद्धा है हमारे हृदय में इस महान पवित्र वजूद (अस्तित्व) के लिए। यह सब तुम स्वंय जानते हो कि हम सभी उपर्युक्त बताये गये निश्चयों को दूर फैंक कर मारते हैं और बाणी प्रकाश के सम्मुख ही एक दूसरे की पगड़ियां उतार लेते हैं, बुरा-भला कहते हैं, गालियां निकालते हैं, कपट और छल से भरी बातें करते हैं, क्या यही विश्वास है कि शबद ब्रह्म दस गुरूओं का साक्षात रूप है। यह सभी बातें कहने मात्र हैं। अब जब हमारे हृदय के अन्दर विश्वास ही न हुआ फिर हम इस अदृश्य रास्ते पर कैसे चल सकते हैं। सो पहली जरूरी बात है कि वाहिगुरू जी पर पूर्ण विश्वास हो। हम अपने बारे में कुछ जानते हुये कि हमारा वास्तविक स्वरूप क्या है, माया का वास्तविक स्वरूप क्या है, माया का अन्धकार हमारे अन्दर किस स्तर तक भरा पड़ा है, यह कैसे दूर हो सकता है? ये बाते हैं जो 'आत्म मार्ग' पर कदम रखने से पहले विचार करनी अति ही आवश्यक हैं।

सो प्यारे! सावधान होकर माया के प्रपंचों पेचों को समझो; जीवन बीतता जा रहा है। महाराज जी ढांढ़स दे रहे हैं कि यदि तू अभी भी संभल जाये अभी भी किसी तत्व वेत्ता महापुरुष पर तेरा विश्वास पैदा हो जाये तो जो कुछ तू गवाँ बैठा है वह तुझे अभी भी प्राप्त हो सकता है। फ़रमान है -

चेतना है तउ चेत लै निसि दिनि मै प्रानी।
छिनु छिनु अउध बिहातु है फूटै घट जिउ पानी॥
हरि गुन काहि न गावही मूरख अगिआना।
झूठै लालचि लागि कै नहि मरनु पछाना॥
अजहू कछु बिगरिओ नही जो प्रभ गुन गावै।
कहु नानक तिह भजन ते निरभै पदु पावै॥ *पृष्ठ - 726*

यह विश्वास पैदा कैसे हो? इसके लिये सबसे पहले जरूरी है कि यह बेसुरत हुआ जीव, मूच्छत हुआ जीव, थोड़ी होश में आ जाये और

गुरू संगत की कृपा दृष्टि में आ जाये, जाग जाये; फिर ऐसे साधन हैं जिन्हें अपना कर यह अपने महान रोग से छुटकारा पा सकता है। अगले लेखों में विस्तारपूर्वक उन साधनों के बारे में जानकारी दी जाती रहेगी, जिससे इसकी मूर्च्छा खुल जाये।

सबसे पहले आवश्यकता है समरथ गुरू की, जिसकी कृपा होने से इसे औषधि की प्राप्ति होगी और उस औषधि का प्रयोग करके फैली हुई ज़हर का प्रभाव दूर होगा –

गुन गावत तेरी उतरसि मैलु।
बिनसि जाइ हउमै बिखु फैलु। *पृष्ठ - 289*

'गुरू' का ज़िक्र अगले लेखों में किया जायेगा; तब तक जो कुछ ऊपर ज्ञात हुआ है, बार-बार इसका अध्ययन करो और सत्य की प्राप्ति की रूचि, भूख अपने अन्दर पैदा करो। सत्संग दो प्रकार का होता है – एक बाहरी दूसरा अन्तरीव, जिसे बहिरंग और अन्तरंग कहते हैं। सतगुरू का उपदेश किसी एक सम्प्रदाय, मज़हब के लिये नहीं होता। सतगुरू के वचनों के कलावे ओट में सारा अस्तित्व समा जाता है उसके वचन विश्व व्यापी होते हैं कोई भी उन सत्य वचनों से लाभ उठा सकता है।

सम्प्रदायों की मेर तेर अन्धकार की ओर बढ़ने वाला कदम हुआ करता है। सत्य स्वरूप सर्व सांझा है; सत्य प्राप्ति के लिये किये गये वचन सर्व व्यापी हैं, देश, काल, वस्तु इन वचनों को अपने घेरे में नहीं रख सकते।

इस गुप्त रास्ते पर चलने के लिये सबसे पहले वाहिगुरू जी के अस्तित्व पर पूर्ण विश्वास तथा दृढ़ निश्चय करना पड़ता है। विश्वास के लिये दो साधन प्रवान हैं, एक तो ज्ञान का, दूसरा है विश्वास का। ज्ञान के साधन में विचार प्रबल काम करता है क्योंकि विचार में तर्क निहित है और तर्क का अन्तिम अस्तित्व बहुत ही दूर तक कायम रहता है। वाहिगुरू जी क्योंकि निर्गुण स्वरूप हैं, निरंकार हैं, उन्होंने अपने आप को प्रकट करके एकंकार के रूप में स्थापित किया। इस सत स्वरूप का भी कोई रूप-रेख, कोई वर्ण, चिन्ह, कोई जात-पात, कोई नाम, स्थान नहीं दिया गया केवल इसका स्वरूप सत्य ही है। सत्य अस्तित्व (होंद) को प्रकट करता है, इस सत्य को हम 'हैं' भी कह सकते हैं। हमें जो परमेश्वर द्वारा ज्ञान के स्त्रोत पाँच ज्ञानेन्द्रियां मिली हुई हैं जिनका प्रयोग करके हम किसी निर्णय पर पहुँचते हैं तथा तर्क भरी आंखें चुंधिया देने वाले प्रकाश में देख कर कोई निर्णय लेते हैं वह उस एकंकार स्वरूप पर कोई भी निर्णय नहीं ले सकती। तर्क के सामने अनेक प्रश्न हैं कि

यह संसार कैसे रचा गया और जीव कहाँ से आ गया, कर्म कैसे बन गये, यह कर्मों के जाल में क्यों फंस गया? मैं कौन हूँ, क्या मैं पांच तत्वों की बनी हुई स्थूल देह हूँ, या मैं सूक्ष्म शरीर हूँ, जिसमें पाँच प्राण, पांच कर्मेन्द्रियां, पाँच ज्ञानेन्द्रियां, मन, चित्त, बुद्धि सम्मिलित हैं और अहम भाव इस सूक्ष्म शरीर के अस्तित्व को कायम रखता है? क्या मैं इन सभी से ऊपर कोई अज्ञानमयी अस्तित्व हूँ? जिसे कारण शरीर भी कहते हैं, मैं क्या हुआ? इन बातों का ज्ञान रखने वाले को निर्णय करना ही पड़ता है अन्यथा वह इस गुप्त रास्ते पर चल ही नहीं सकता। प्रकृति की खोज के अनेक सिद्धान्तों पर विचार करता है, उन सिद्धान्तों के साथ इसका वासता पड़ा है या नहीं, यह खोजियों के तथ्यों पर विश्वास कर लेता है पर वाहिगुरू जी की अगम्मता और अगोचरता पर इसका निश्चय ही नहीं बन्धता। प्राकृतिक खोजों पर इसके निश्चय का कारण है कि यह अपने आप को मूल प्रकृति का एक अंग ही जानता है। गुरू महाराज जी इसकी मदद करते हुये फ़रमान करते हैं कि प्यारे! तू इन विचारों से ऊपर उठ और वाहिगुरू जी के बड़प्पन में विश्वास पैदा कर कि उसने सृष्टि की रचना कैसे कर दी। वह सर्व कला समरथ एक हस्ती है, जिसकी शक्तियों के बारे में हम किसी प्रकार भी जान नहीं सकते वह स्वंय ही बेअन्त है, उसके कार्य भी बेअन्त हैं। उसकी बख्शीशें भी बेअन्त हैं, उसका पसारा भी बेअन्त है, जितना अधिक कोई इस प्रसार को जान जाता है वह इससे और आगे बेअन्त पसार वाला है। खगोल शास्त्री, वैज्ञानिक और अनेक खोज करने वाले खोजी, खोज करते-करते थक गये क्योंकि इस जीव की सूझ बहुत ही सीमित है। कोई इस वाहिगुरू जितनी सूझ रखता हो वह ही इस खेल को समझ सकता है वह Infinity (अनन्तता) में लीन हो जाता है परन्तु उसे अलग होकर समझना, मनुष्य की शक्तियों वृत्तियों के बस की बात नहीं है। महाराज जी फ़रमान करते हैं -

एहु अंतु न जाणै कोइ। बहुता कहीऐ बहुता होइ॥
वडा साहिबु ऊचा थाउ। ऊचे उपरि ऊचा नाउ॥
एवडु ऊचा होवै कोइ। तिसु ऊचे कउ जाणै सोइ॥   पृष्ठ - 5

सृष्टि रचना की खोज करने वाले अनेक सिद्धान्त पेश करते हैं। किसी का ऐसा मत है कि वाहिगुरू जी की शक्ति 'बिम्ब' पड़ने से प्रकृति के तीन गुणों - रजो, तमो, सतो - गुणों में हिलजुल पैदा हुई जैसे चकमक पत्थर यदि किसी कारखाने में लटका दिया जाये और वह चारों ओर घूमता हो तो लोहे के छोटे-छोटे कण उसकी आकर्षण शक्ति द्वारा हरकत में आ जाते हैं और वे एक प्रकार से नाच करना शुरू कर देते हैं

कुछ ऊँचा उठते हैं, कुछ अपनी जगह से दूसरी ओर खिसकते हैं। इस सिद्धान्त को मानने वाले विद्वानों का मत है कि वाहिगुरू जी की शक्ति पड़ने से प्रकृति के तीन गुण घटने-बढ़ने लगे। इस उथल-पुथल में एक बहुत बड़ा धमाका (Big bang) हुआ और प्रकृति के chemical प्रभावों के अधीन क्रिया शुरू हो गई और अनादि जीव इस प्रकृति की माया रूपी शक्ति में फंस गया। यह कर्म करने लगा, इसने कर्मों की 'हउमै' धारण कर ली तभी से जीव की यात्रा शुरू हो गई। कोई नहीं बता सकता कि जीव का पहला कदम क्या था तथा कब सृष्टि का अस्तित्व कायम हुआ? सभी योग्य पुरूष इस मसले पर बिलबिलाते हैं। महाराज भी फ़रमान करते हैं –

थिति वारु ना जोगी जाणै रुति माहु ना कोई।
जा करता सिरठी कउ साजे आपे जाणै सोई।। *पृष्ठ - 4*

ऐसे सुजान लोगों के मत के अनुसार वाहिगुरू जी का न प्रकृति के साथ कोई लगाव है, न जीव के साथ लगाव है, वे अलग-थलग है, वह कर्त्ता है, उसे जीव के सुख दुख के साथ कोई सम्बंध नहीं है। उसके अस्तित्व को तो मानते हैं परन्तु उसकी समर्थ, उसके प्यार, उसके दयालु स्वभाव को नहीं मानते। एक प्रकार से ऐसे विचारक जड़ रूप ही हुआ करते हैं।

यह मैं ज्ञान की भूल भुलैया का ज़िक्र कर रहा हूँ कि कोई बिरला ही पुरूष है जो तर्क के साथ वाहिगुरू जी के अस्तित्व पर विश्वास जमा सके। पर इस ज्ञान वर्ग में सूझवान व्यक्ति अनुभवी महापुरुषों के वचनों पर विश्वास करके अपनी परेशानियों को दूर करने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार कई लोगों ने इस सृष्टि को भ्रम कहा है। कई लोगों के विचार में यह एक सपना है। कई इसे एक अगम्मी खेल समझते हैं पर गुरमत अनुसार जो वचन आते हैं उनसे स्पष्ट होता है कि यहाँ केवल एक ही एक अस्तित्व एकंकार के रूप में ही था उस एकंकार की अपनी मौज के अनुसार यह सृष्टि शबद की शक्ति द्वारा अस्तित्व में आई। प्रकृति (माया) उस प्रभु ने स्वंय ही अस्तित्व में प्रकट की उसका इससे पहले कोई अस्तित्व नहीं था, क्योंकि वैज्ञानिकों का मत है कि जब प्रकृति compress होती है उस समय उसका अस्तित्व अति ही सूक्ष्म होकर किसी माप-तोल में नहीं आता वह अनन्तता (Infinity) में लीन हो जाती है परन्तु किसी न किसी आकार में इस प्रकृति का अस्तित्व अवश्य रहता है। परन्तु गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं कि यहाँ वाहिगुरू जी के बिना और कोई भी नहीं था, न है, न होगा। यदि एक से अनेक रूप में प्रकट होता है तो भी आप ही आप है। वह सच ही है। यदि

खण्डों ब्रह्मांडों में प्रकट होता है वह आप ही सच है और उसकी खेल भी सच है, उसकी क्रियाएं भी सच हैं, उसके द्वारा बनाये गये आकार भी सच हैं, उसकी प्रशंसा भी सच है, उसकी सलाह भी सच्ची है और जो प्रकृति उस सच्चे पातशाह ने अस्तित्व में प्रकट की वह सच ही है। यहाँ पर सच का यह अर्थ नहीं कि यह अस्तित्व सदीव (हमेशा) रहने वाला है परन्तु इसके विपरीत जो इस सत्य का प्रकटावा है वह यह है कि वाहिगुरू जी का रूप सच है और जो कुछ भी और अधिक प्रसार होता है वह सारा ही वाहिगुरू जी ही है। प्रकृति भी उसका अपना ही रूप है, जीव भी उसका अपना ही रूप है। जिस प्रकार (वट वृक्ष) बड़ का छोटा सा बीज जब फैलता है तो वह अपने बीज से अलग नहीं होता वह बीज ही वट वृक्ष का रूप हुआ करता है, उसी बीज का रूप फूल है उसी बीज का रूप फल है फिर फल में वह बीज दिखाई देता है। गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं –

पारब्रहम के सगले ठाउ। जितु जितु घरि राखै तैसा तिन नाउ।
आपे करन करावन जोगु। प्रभ भावै सोई फुनि होगु।
पसरिओ आपि होइ अनत तरंग। लखे न जाहि पारब्रहम के रंग।
जैसी मति देइ तैसा परगास। पारब्रहमु करता अबिनास।
सदा सदा सदा दइआल। सिमरि सिमरि नानक भए निहाल॥

पृष्ठ - 275

कई बार गलती से हम यह अर्थ निकालते हैं कि उसकी बनाई हुई धरती, आसमान, मिथ्या नहीं है, सत्य हैं। पर यहाँ जो हम 'सच' की बात कर रहे हैं वही एक 'सच' अनेक रूपों में प्रकट होकर दर्शन दे रहा है, कहीं गुप्त है, कहीं प्रकट है। यहाँ सच के बिना अन्य किसी दूसरे की कोई गुंजाइश ही नहीं है। जैसा कि अटल फ़रमान है –

आदि सचु जुगादि सचु।
है भी सचु नानक होसी भी सचु॥ *पृष्ठ - 1*

इन सिद्धान्तों को समझने के लिए बहुत कठिन परिश्रम की आवश्यकता है, यह प्राकृतिक बुद्धि बदल जाया करती है फिर देवताओं की बुद्धि जो इस मानवीय बुद्धि से अधिक दूरगामी है, वह प्राप्त हो जाती है फिर अति सूक्ष्म आपे को जानने वाली बुद्धि प्रकट हुआ करती है, जो इन सरल सच्चाईयों पर अति गम्भीर सिद्धान्तों को केवल समझती ही नहीं परन्तु इसके विपरीत प्रकट पसारा देखती है तथा चारों ओर प्रसारित सच के अन्दर अपना अस्तित्व भी अलग नहीं रह जाता। वह स्वंयमेव ही हो जाया करता है। इस सूक्ष्मताओं तक विद्या द्वारा प्राप्त किया गया ज्ञान नहीं पहुँच सकता। जब तक कि वास्तविक हालात पैदा न हो जाये। जैसा की

गुरू महाराज जी का फ़रमान है –

ता कीआ गला कथीआ ना जाहि।
जे को कहै पिछै पछुताइ।
तिथै घड़ीऐ सुरति मति मनि बुधि।
तिथै घड़ीऐ सुरा सिधा की सुधि। *पृष्ठ - 8*

सो पहले प्रार्थना की गई है कि परमेश्वर को तर्क द्वारा जानने का किया गया प्रयास किसी किनारे पर नहीं ले जाता। जो यथार्थ ज्ञान है वह अति सूक्ष्मताओं को प्राप्त करके उनके द्वारा प्राप्त होता है। तर्क की पहुँच प्रकृति से आगे नहीं निकलती। इसलिये तर्क का मार्ग अति कठिन है। इस भूल भुलैया में जीव फस कर और कभी उचाट होकर खो जाता है परन्तु यदि अन्तरीवी सच के मण्डल का ज्ञान प्राप्त हो जाये तो यह मंजिल की प्राप्ति तक पहुँच जाता है। सो कहा गया है कि ज्ञान द्वारा सूझ हो जाना वह अन्तरीवी ज्ञान के लिये प्रयुक्त शब्द है। ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान प्राकृतिक सीमा को पार नहीं कर सकता। इसलिये सियाने, बुद्धिमान भटक रहे हैं। बेअन्त को अन्त वाले प्लेट फार्म पर खड़े होकर नहीं जाना जा सकता। इस एक को जानने के लिये और स्पष्ट किया गया है जैसे –

सोधत सोधत सोधत सीझिआ।
गुरप्रसादि ततु सभु बूझिआ।
जब देखउ तब सभु किछु मूलु।
नानक सो सूखमु सोई असथूलु॥ *पृष्ठ - 281*

दूसरा रास्ता विश्वास का है, उसमें किसी तर्क की आवश्यकता नहीं होती, यह रास्ता बहुत ही सरल है, अपने गुरूओं, पीरों पर पूर्ण विश्वास पैदा किया जाये। जो कुछ भी उन्होंने तत्व की खोज करके प्रकट किया है उस पर बिना तर्क-वितर्क किए हृदय में धारण करना अति आवश्यक होता है। यह विश्वास का मार्ग अति सरल है। सत्पुरुषों की बाणी पर विश्वास करके जो सिद्धान्त उन्होंने बताये हैं उसे बगैर किसी किन्तु परन्तु से मान लेना अगम अगोचर मार्ग पर चलने का अवसर प्राप्त करवा देता है। गुरू महाराज जी का मत है कि यहाँ वाहिगुरू जी के बिना माया का कोई वजूद नहीं था –

करम धरम नही माइआ माखी।
जाति जनमु नही दीसै आखी।
ममता जालु कालु नही माथै
न को किसै धिआइदा॥
निंदु बिंदु नही जीउ न जिंदो।
ना तदि गोरखु ना माछिंदो।

ना तदि गिआनु धिआनु कुल ओपति
ना को गणत गणाइदा॥ पृष्ठ - 1035

आगे फ़रमान करते हैं -

भाउ ना भगती ना सिव सकती।
साजनु मीतु बिंदु नही रकती।
आपे साहु आपे वणजारा साचे एहो भाइदा॥ पृष्ठ - 1036

अपनी मौज में जगत की उत्पति आप ही अपने आप से की है, न तो प्रकृति कहीं बाहर से लाई गई है, न ही अनेक जीवों को इस प्रकृति में फंसाने का कोई जादू किया गया है। प्रकृति उसके हुक्म में हुई है, सारे आकार हुक्म में पैदा हुये हैं, जीव भी हुक्म में हुये हैं। दुःख सुख की क्रिया भी अटल नियमों के अनुसार चल रही है जैसा कि फ़रमान है -

हुकमी होवनि आकार हुकमु न कहिआ जाई।
हुकमी होवनि जीअ हुकमि मिलै वडिआई।
हुकमी उतमु नीचु हुकमि लिखि दुख सुख पाईअहि।
इकना हुकमी बखसीस इकि हुकमी सदा भवाईअहि।
हुकमै अंदरि सभु को बाहरि हुकम न कोइ।
नानक हुकमै जे बुझै त हउमै कहै न कोइ॥ पृष्ठ - 1

गुरू महाराज जी का और फ़रमान है -

बेद कतेब न सिंम्रिति सासत।
पाठ पुराण उदै नही आसत।
कहता बकता आपि अगोचरु आपे अलखु लखाइदा॥
जा तिसु भाणा ता जगतु उपाइआ।
बाझु कला आडाणु रहाइआ।
ब्रहमा बिसनु महेसु उपाए माइआ मोहु वधाइदा॥
विरले कउ गुरि सबदु सुणाइआ।
करि करि देखै हुकमु सबाइआ।
खंड ब्रहमंड पाताल अरंभे गुपतहु परगटीआइदा॥ पृष्ठ - 1036

वाहिगुरू जी की अपनी स्वतन्त्र मौज है, वह चाहे निर्गुण से निरंकार अवस्था में रहना चाहे, चाहे वह अपना विस्तार करके अपने आप को विराट रूप में प्रकट करें, वह सब कुछ सत्य ही सत्य है। दूसरी चीज़ की इसमें कोई गुंजाइश ही नहीं। पूर्ण रूप में अद्वैत है -

आप सति कीआ सभु सति।
तिसु प्रभ ते सगली उत्तपति। पृष्ठ - 294

सो इस भाव के गुरमत में बहुत विस्तार के साथ दिये गये अटल नियमों का विस्तार है जैसा कि -

आपीन्है आपु साजि आपु पछाणिआ।

अंबरु धरति विछोड़ि चंदोआ ताणिआ।
विणु थंम्हा गगनु रहाइ सबदु नीसाणिआ।
सूरजु चंदु उपाइ जोति समाणिआ।
कीए राति दिनंतु चोज विडाणिआ। *पृष्ठ - 1279*

जलु तरंग अगनी पवनै फुनि त्रै मिलि जगतु उपाइआ।
ऐसा बलु छलु तिन कउ दीआ हुकमी ठाकि रहाइआ॥
पृष्ठ - 1345

सो इस पसारे में किसी अन्य शक्ति का कोई दखल नहीं है यह कर्ता की अपनी मौज है चाहे वह निर्गुण स्वरूप में रहे, जिस अवस्था के बारे में और कोई दूसरा जान ही नहीं सकता क्योंकि वह अपने आप ही अपने आप को जानता है। यदि हम कहें निर्गुण अवस्था में वाहिगुरू कुछ नहीं करता था ऐसा हमारा कहना बिल्कुल ही निर्मूल है क्योंकि जिस अवस्था को जानने के लिये हमारी ज्ञानेन्द्रियां असमर्थ हैं उसके बारे में कोई राय बना लेना अपनी मन मत ही है। उस अवस्था में वाहिगुरू जी कैसे रहते हैं वह आप ही जानते हैं। जब कोई दूसरा है ही नहीं तो उस अवस्था को कौन जान सकता है। यदि हम प्राकृतिक उदाहरण लें कि एक बीज जब क्रियाशील नहीं होता उस समय बिना हिलजुल और बगैर प्रकट हुये बीज अपने बीज रूप में ही रहता है। परन्तु जब बीज पसारा करता है तो उसमें बड़ का कितना बड़ा वट वृक्ष, कितनी टहनियां कितने पत्ते, अदृश्य रूप में छिपे होते हैं। यह अनुभव प्रकृति के लिये तो किसी हद तक सत्य है पर हम नहीं जानते कि जब बीज, बीज रूप में होता है, उस समय बीज के अन्दर कौन सी क्रिया हो रही होती है तथा किस योजना को प्रकट करने के लिये उसमें हुक्म हो रहा होता है इन बातों से हम पूरी तरह से अज्ञात हैं। हमारा निर्गुण अवस्था की क्रिया के बारे में अनुमान लगाना किसी हालत में सत्य नहीं हुआ करता। हम तो ऐकंकार की अवस्था के बारे में ही कुछ नहीं जानते फिर उससे आगे अलग रहकर कुछ भी नहीं जाना जा सकता। उस निर्गुण में लीन तो हुआ जा सकता है, फिनाह-फिलाह अवस्था प्राप्त की जा सकती है परन्तु समुद्र में गिर रहा पानी, समुद्र की गति को किसी प्रकार भी प्रकट नहीं कर सकता। गुरू महाराज जी ने फ़रमान किया है -

हरन भरन जा का नेत्र फोरु। तिस का मंत्रु न जानै होरु।
पृष्ठ - 284

पिता का जनमु कि जानै पूतु। सगल परोई अपुनै सूति। *पृष्ठ - 284*

जिस की स्रिसटि सु करणैहारु।

अवर न बूझि करत बीचारु॥ *पृष्ठ - 284*

सिद्धों ने जब गुरू नानक पातशाह को आदि की विचार करने के बारे में प्रार्थना की तो महाराज जी ने कहा कि –

आदि कउ बिसमादु बीचारु कथीअले
सुंन निरंतरि वासु लीआ।
अकलपत मुद्रा गुर गिआनु बीचारीअले
घटि घटि साचा सरब जीआ। *पृष्ठ - 940*

सो इस प्रकार यह बहुत ही गम्भीर मामले हैं जिनके बारे में कुछ कहा सुना नहीं जा सकता केवल विश्वास ही किया जा सकता है इसलिये विश्वास का रास्ता बहुत ही सरल है। जो कुछ सतगुरू फ़रमान कर रहे हैं उनके वचनों पर पूरी तरह विश्वास लाकर हमारे लिये अगम अगोचर मार्ग पर चलना सरल हो जाता है। इस मार्ग पर चलने के लिए समर्थ गुरू की बहुत ही आवश्यकता है जिसे प्राप्त किये बिना जिज्ञासु एक कदम भी इस रास्ते पर नहीं चल सकता जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है जब से संसार की रचना हुई है, उसी समय से प्रवान आत्माएं संसार में प्रकट होकर वाहिगुरू जी के बारे में ज्ञान देती रही हैं जैसे कि भाई गुरदास जी की वारों में फ़रमान आता है कि –

सुखु राजे हरीचंद घरि नारि सु तारा लोचन राणी।
साध संगति मिलि गावदे राती जाइ सुणै गुरबाणी।
भाई गुरदास जी, वार 10/6

भाई गुरदास जी जिन्हें गुरू घर में वेद व्यास की तुलना दी जाती है जिनकी वारें गुरमत सिद्धान्त को प्रकट करती हैं उनका मत है कि वह उस समय गुरबाणी गाया करते थे और राजा हरिश्चन्द्र की रानी उस गुरबाणी को सुनने जाया करती थी और गुरबाणी में फ़रमान है कि प्रहलाद ने समरथ गुरू से ज्ञान प्राप्त किया तथा उत्तम गति को प्राप्त हुआ। जनक जी ने गुरू द्वारा ही नाम में लिव लगाई। श्री राम चन्द्र जी महाराज को गुरू द्वारा ही ज्ञान प्राप्त हुआ। उसने हरि का उपदेश सुनाया –

गुरमुखि प्रहिलादि जपि हरि गति पाई।
गुरमुखि जनकि हरिनामि लिव लाई।
गुरमुखि बसिसटि हरि उपदेसु सुणाई।
बिनु गुर हरिनामु न किनै पाइआ मेरे भाई। *पृष्ठ - 591*

इसमें मैं एक प्रार्थना करना चाहता हूँ कि हमारे बहुत सारे दानियों का यह दृढ़ मत है कि गुरू महाराज जी से पहले कोई गुरू नहीं हुआ तथा न ही दसों पातशाहियों के बाद कोई और गुरू होगा जैसा कि इस्लाम के अनुयायियों का अकीदा है कि हज़रत मोहम्मद साहिब के बाद

और कोई पैगम्बर नहीं आयेगा, वे आखिरी पैगम्बर थे। यह निश्चय ऐसी सोच वालों को मुबारिक हो परन्तु वाहिगुरू जी की सृष्टि अनन्त काल से अस्तित्व में आकर अनन्त काल तक ही अस्तित्व में रहेगी। सो इस गोल चक्र का न तो कोई आदि है न अन्त है। बोलियां बदल जाती हैं, इरादों में और Clarification (स्पष्टताएं) आती हैं किसी जगह रूक जाना अपनी उन्नति को रोकने का कारण बनता है। यह विश्व व्यापक विचार नहीं है। सीमित समय के लिए दस बीस हज़ार साल तक चलते हैं। अनेक-अनेक महापुरुष अनेक समय तक आते ही रहेंगे तथा परिस्थितियों के अनुसार सिद्धान्त प्रकट करते ही रहेंगे। नई पोशाक, नई रूप रेखा इस सच, को प्रकट करने के लिये प्रयोग करते ही रहेंगे। हमारी छोटी सी सम्प्रदा गुरू की बाणी, गुरू का आकार, साकार रूप समझ कर अपने रूहानी रास्ते की सूझ प्राप्त करती है। यदि हम सारी दुनियाँ को समक्ष रख कर विचार करें तो कुछ भी कहना बहुत कठिन है। अब पहले हम अपने निश्चय के बारे में विचार करते हैं. जन्म साखियाँ तथा गुरबाणी के आधार पर हमारा यह निश्चय बन गया है कि गुरू नानक पातशाह जब वेंई नदी में गोता लगाकर अकाल पुरूष के द्वार पर पहुँचे तो जन्म साखी के द्वारा जो कुछ हमने समझा है वह यह है कि गुरू नानक पातशाह को यह फ़रमान हुआ कि हे नानक! मैं पारब्रह्म परमेश्वर हूँ, तू गुरू परमेश्वर है, मेरे नाम का अमृत प्याला आप लो और संसार को बांटो और गुरबाणी में आता है -

आपि नराइणु कला धारि जग महि परवरियउ।
निरंकारि आकारु जोति जग मंडलि करियउ। पृष्ठ - 1395

हमारा यह अटल विश्वास है कि वाहिगुरू जी गुरू परमेश्वर के रूप (वजूद) में दसों ही गुरूओं में प्रकट रूप में थे और शबद रूप होकर वे गुरू ग्रन्थ साहिब जी के शब्द में गुरू रूप में हैं।

जब से सृष्टि की रचना हुई है उस समय से ही मुरशद-ए-कामल, मास्टर, टीचर, गुरू, उस्ताद आदि रूहानी रास्ता बताने के लिए आते ही रहते हैं और जब तक संसार रहेगा, वाहिगुरू जी ने यह प्रबन्ध कायम रखना है। वाहिगुरू जी की सृष्टि अनन्त, ब्रह्मांडों में, अनन्त रूप रंगों में विचर रही है। वाहिगुरू जी आप ही गुरू रूप होकर सभी को रास्ता दिखा रहे हैं, दिखाते रहेंगे। हम अपने अटल निश्चय पर कायम हैं। गुरू ग्रन्थ साहिब जी महाराज समरथ गुरू हैं जिनके उपदेशों के प्रकाश में गुरू ग्रन्थ साहिब जी में दी गई हिदायत कि यह मार्ग पूर्ण सन्त मिलाप होने से जल्दी तय हो जाता है उसे कायम रखते हुये हम सन्तुष्ट हैं यह सम्प्रदायिक निश्चय है। संसार में वाहिगुरू जी, संसार का उद्धार करने के लिये अपना तत्व ज्ञान किसी शरीर में प्रकट कर सकते हैं, उन्हें चाहे कोई

मास्टर कहे, चाहे गुरू कहे, हमारा किसी से कोई वाद-विवाद नहीं है वे अपने निश्चय पर पूरी तरह कायम रहें ताकि उन्हें रूहानी सूझ का मार्ग प्राप्त हो सके। यह एक बहुत नाजुक मसला है परन्तु सत्य सारे संसार के लिये सांझा होता है वह किसी के लिए खास सम्प्रदाय नहीं है कि किसी खास सम्प्रदा पर उसकी दया दृष्टि हो तथा और किसी को प्रवान ही न करता हो। उसका स्वभाव निरवैर है, वह सर्व जीवों पर दया करने वाला है। वाहिगुरू जी की बेअन्तता में एक अपने निज का मसला सारे संसार पर लागू करना, कोई सुघड़ बात नहीं है। हमारी भारतीय संस्कृति में स्कूल की पढ़ाई कराने वाले अध्यापकों को गुरू ही कहा जाता है। कोई गणित का गुरू है, कोई सांईस का गुरू है, कोई मोटर चलाने का गुरू है। कोई भी काम सीखा जाये जो उसे सिखाता है उसके लिये 'गुरू' शबद ही प्रयोग होता है। यदि हम उस्ताद, टीचर, मुरशद कहते हैं तो ये अक्षर हमारे नहीं हैं। हमारे तो सभी को गुरू ही कहते हैं। जो रूहानी गुरू है उसकी विशेषताएं, उपमायें गुरबाणी में जगह-जगह दर्ज हैं। जो इन्हें पूरा नहीं कर सकता वह कच्चा गुरू है, अन्धा गुरू है, खंडित गुरू है, वह समरथ गुरू नहीं है। गुरबाणी में फ़रमान है -

काचे गुर ते मुकति न हूआ। *पृष्ठ - 932*

अंन्हा आगू जे थीऐ सभु साथु मुहावै॥
भाई गुरदास जी, वार 35/2

अंधे गुरू ते भरमु न जाई। मूलु छोडि लागे दूजै भाई।
बिखु का माता बिखु माहि समाई॥ *पृष्ठ - 232*

गुरू जिना का अंधुला सिख भी अंधे करम करेनि॥ *पृष्ठ - 951*

अंधे कै राहि दसिऐ अंधा होइ सु जाइ।
होइ सुजाखा नानका सो किउ उझड़ पाइ। *पृष्ठ - 954*

गुरू जिना का अंधुला चेले नाही ठाउ।
बिनु सतिगुर नाउ न पाईऐ बिनु नावै किआ सुआउ।
आइ गइआ पछुतावणा जिउ सुंञै घरि काउ॥ *पृष्ठ - 58*

जो समरथ गुरू है उसके बारे में भाई गुरदास जी अपनी वार में बताते हैं -

सतिगुर पुरखु अगंमु है निरवैरु निराला।
जाणहु धरती धरम की सची धरमसाला।
जेहा बीजै सो लुणै फलु करम सम्हाला।
जिउ करि निरमलु आरसी जगु वेखणि वाला।

जेहा मुहु करि भालीऐ तेहो वेखाला।
सेवकु दरगह सुरखरू वेमुखु मुहु काला॥

भाई गुरदास जी, वार 34/1

और भी स्पष्ट करते हुये गुरबाणी में फ़रमान आता है –

घर महि घरु देखाइ दे सो सतिगुरु पुरखु सुजाणु।
पंच सबद धुनिकार धुनि तह बाजै सबदु नीसाणु।
दीप लोअ पाताल तह खंड मंडल हैरानु।
तार घोर बाजिंत्र तह साचि तखति सुलतानु।
सुखमन कै घरि रागु सुनि सुंनि मंडलि लिव लाइ।
अकथ कथा बीचारीऐ मनसा मनहि समाइ।
उलटि कमलु अंम्रिति भरिआ इहु मनु कतहु न जाइ।
अजपा जापु न वीसरै आदि जुगादि समाइ।
सभि सखीआ पंचे मिले गुरमुखि निज घरि वासु।
सबदु खोजि इहु घरु लहै नानकु ता का दासु॥ पृष्ठ - 1291

यदि किसी को ऐसा गुरू संसार में मिल सकता है तो उसके निश्चय को तोड़ने के लिये किसी वाद-विवाद में नहीं पड़ना चाहिए। वाहिगुरू जी की अनन्त सृष्टि है तथा उसने बेअन्त प्रवान आत्माएं इस संसार के उद्धार के लिए संसार में भेजी हुई हैं। जहाँ तक हमारा निश्चय है हम उस पर अडोल हैं क्योंकि हमारा कल्याण विश्वास ने ही करना है। गुरू ग्रन्थ साहिब जी सचमुच बोलते हैं, राह बताते हैं परन्तु इसके गुप्त भेदों को जानने के लिए गुरू घर के सन्तों के पास जाने की प्रेरणा करते हैं। अब यह तो जिज्ञासु के भाग्य हैं कि वह इन गुरबाणी के सन्देशों पर अमल करता है या नहीं करता या इसके कोई और अर्थ निकाल लेता है। मैं इस वाद विवाद के मार्ग में नहीं पड़ता। यदि पूर्व कर्म हों तो रसिक वैरागी के साथ मेल हुआ करता है जिसे मिलकर अज्ञानता के अन्धकार का नाश हो जाता है तथा जैसे काली अन्धेरी रात के बाद सूरज का प्रकाश होता है इसी प्रकार उस तत्व वेत्ता महापुरुष की संगत करके अपने अन्दर अज्ञान के पर्दे नष्ट हो जाते हैं तथा जन्म जन्मांतरों से माया की नींद में सोई हुई रूह की सूझ में से अन्धकार का नाश हो जाता है तथा प्रकाश होने के उपरान्त उसे एक ही वाहिगुरू घट-घट में व्याप्त नज़र आता है। हमारा अन्य मतों के निश्चयों के साथ बेकार का टकराव कुछ संवारता नहीं है, बल्कि जिज्ञासुओं के निश्चय तोड़कर कोई भला कर्म नहीं किया जाता. इसके विपरीत द्वैत की जंजीरों में फंस जाता है। जब सभी एक हैं फिर शोर शराबा किस बात का किया जाये? अन्धे पुरूष लड़ते हैं, झगड़ते हैं। सुजान का विचार है –

मन मेरे जिनि अपुना भरमु गवाता।

तिस कै भाणै कोइ न भूला जिनि सगलो ब्रहमु पछाता॥

पृष्ठ - 610

सो उपर्युक्त विचार को पढ़कर संशयों के अन्धेरे में गुम हो जाने से बचने के लिए मैं प्रार्थना करता हूँ कि हमें ये बातें बहुत ही ठंडे दिल से सोचनी चाहिए। किसी को भुलाने वाला, किसी को जगाने वाला वाहिगुरू आप ही है हम अपनी 'हउमै' धारण करके दूसरों के निश्चयों को क्यों डांवाडोल करें, उनकी अपनी मति है, उनके अपने निश्चय हैं, उनके अपने संयोग हैं, उनके भाग्य हैं क्योंकि सौभाग्य के बिना सतगुरू की प्राप्ति नहीं होती, सतगुरू की प्राप्ति के बिना नाम की प्राप्ति नहीं होती -

बिनु सतिगुर नाउ न पाईऐ बुझहु करि वीचारु।
नानक पूरै भागि सतिगुरु मिलै सुखु पाए जुग चारि॥

पृष्ठ - 649

हाँ, हम सारे विश्व के भले को सामने रखते हुये यह प्रार्थना जरूर करते हैं कि गुरू की प्राप्ति के बिना रूहानी मार्ग का सफर नहीं काटा जा सकता। गुरू ग्रन्थ साहिब जी का यह मत प्रधान है कि समरथ सतगुरू के बिना जीव को सत्य के मार्ग पर चलने की सूझ नहीं हो सकती। अज्ञानी, अन्धे गुरू अपनी चतुराईयों के साथ व्यापारिक वृत्ति धारण करके भोले भाले जिज्ञासुओं को कुमार्ग पर चला देते हैं। गुरू महाराज जी का फ़रमान है -

गुरू सदाए अगिआनी अंधा किसु ओहु मारगि पाए॥ पृष्ठ - 491

पूर्ण गुरू की शिक्षा ही पूर्ण होती है -

पूरे गुर की पूरी दीखिआ।
जिसु मनि बसै तिसु साचु परीखिआ। पृष्ठ - 293

इसलिये गुरबाणी के फ़रमान के मुताबिक इस प्रकार है -

ए मन ऐसा सतिगुरु खोजि लहु
जितु सेविऐ जनम मरण दुखु जाइ।
सहसा मूलि न होवई हउमै सबदि जलाइ। पृष्ठ - 591

क्योंकि इस मार्ग पर चलने के लिए गुरू की बहुत ही आवश्यकता है। समरथ गुरू परमेश्वर का रूप हुआ करता है -

समुंदु विरोलि सरीरु हम देखिआ इक वसतु अनूप दिखाई।
गुर गोविंदु गुोविंदु गुरू है नानक भेदु न भाई॥ पृष्ठ - 442

गुरू के बिना भ्रमों का नाश नहीं होता क्योंकि गुरू में शक्ति है कि वह सत्य वचनों के उपदेश देकर भ्रमों का नाश कर दे। महाराज जी का फ़रमान है -

बिनु गुर भरमै आवै जाइ। बिनु गुर घाल न पवई थाइ।
बिनु गुर मनुआ अति डोलाइ। बिनु गुर त्रिपति नाही बिखु खाइ।
बिनु गुर बिसीअरु डसै मरि वाट। नानक गुर बिनु घाटे घाट॥
पृष्ठ - 942

गुरू नानक पातशाह जी ने सिद्धों के साथ गोष्ठी करते हुये गुरू की विशेषताएं बताते हुये फ़रमान किया -

बिनु सतिगुर सेवे जोगु न होई।
बिनु सतिगुर भेटे मुकति न कोई।
बिनु सतिगुर भेटे नामु पाइआ न जाइ।
बिनु सतिगुर भेटे महा दुखु पाइ।
बिनु सतिगुर भेटे महा गरबि गुबारि।
नानक बिनु गुर मुआ जनमु हारि॥ पृष्ठ - 946

सो ऊपर विस्तार के साथ विचार किया गया है कि गुरू के बिना रास्ते का ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। गुरू महाराज जी ने फ़रमान किया है -

बिन गुर सबद न छूटीऐ देखहु वीचारा।
जे लख करम कमावही बिनु गुर अंधिआरा॥
अंधे अकली बाहरे किआ तिन सिउ कहीऐ।
बिनु गुर पंथु न सूझई कितु बिधि निरबहीऐ॥ पृष्ठ - 229

इस सारे विचार का परिणाम यह है कि इस गुप्त मार्ग पर चलने के लिए गुरू की बहुत आवश्यकता है। गुरू के साथ किस प्रकार व्यवहार करना है, इसके बारे में सुखमनी साहिब की 18 वीं अष्टपदी में फ़रमान है -

गुर कै ग्रिहि सेवकु जो रहै।
गुर की आगिआ मन महि सहै।
आपस कउ करि कछु न जनावै।
हरि हरि नामु रिदै सद धिआवै।
मनु बेचै सतिगुर कै पासि।
तिसु सेवक के कारज रासि।
सेवा करत होइ निहकामी॥
तिसु कउ होत परापति सुआमी॥ पृष्ठ - 287

गुरू की आज्ञा में रहना तथा अपने आपको कुछ भी बनाकर न दिखाना तथा हर समय प्रभु के नाम में ध्यान लगाये रखना तथा अपना तन, मन, धन, बुद्धि, चित्त सब गुरू के चरणों में अर्पण कर देना तथा गुरू पर परमेश्वर की भावना रखना -

दोहा - गुर को कीजे डंडवत कोट कोट परणाम।
कीट न जाने भ्रिंग को गुर कर ले आप समान।
गुर को मानुश जान ले ते नर कहीऐ अंध।

होय दुखी संसार में आगे जनम का फंध।
गुर को मानस मानते चरनांम्रित को पान।
ते नर नरके जाइंगे जनम जनम होइ स्वान।
गुर बिन माला फेरते गुर बिन देते दान।
गुर बिनु दानु हराम है जाइ पूछो बेद पुरान।
जैसो तैसो पातकी आवे गुर की ओट।
गांठी बांधी संत से ना परखिओ खर खोट।
बड़े बड़ाई पाय कर रोम रोम अहंकार।
सतगुर के परचे बिना चारो बरन चमार॥

पृष्ठ - 543, कथा नराइण हरी

गुरू महाराज जी का फ़रमान है -

गुरु परमेसरु एकु है सभ महि रहिआ समाइ।
जिन कउ पूरबि लिखिआ सेई नामु धिआइ। *पृष्ठ - 53*

गुरू तथा परमेश्वर को दो अलग-अलग हस्तियां मत समझो तथा गुरू पूर्ण रूप में अकाल पुरूष का साकार सगुण रूप हुआ करता है -

बीस बिसुए जा मन ठहराने।
गुर पारब्रहम एकै ही जाने॥ *पृष्ठ - 887*

गुर चरनी जा का मनु लागा।
नानक दास तिसु पूरन भागा। *पृष्ठ - 879*

सतिगुर जेवडु अवरु न कोइ।
गुरु पारब्रहमु परमेसरु सोइ।
जनम मरण दूख ते राखै।
माइआ बिखु फिरि बहुड़ि न चाखै॥
गुर की महिमा कथनु न जाइ।
गुरु परमेसरु साचै नाइ। *पृष्ठ - 1271*

गुरु पारब्रहमु परमेसरु आपि।
आठ पहर नानक गुर जापि॥ *पृष्ठ - 387*

गुरू पर परमेश्वर रूप में श्रद्धा रखें तथा पूरी तरह से उनकी सेवा में समय व्यतीत करें।

गुरू अमरदास जी की सेवा सारे संसार के लिये प्रकाश सतम्भ है। 72 वर्ष की आयु तक गुरू की खोज में रहे और जब समरथ गुरू की प्राप्ति हो गई तो उनकी सेवा में दिन रात एक कर दिया। सूरज प्रकाश में उनकी सेवा का वर्णन बहुत विस्तारपूर्वक लिखा गया है जिस पर विचार

करना हमारे लिये अति आवश्यक है उस सारी व्यवहार का जिज्ञासुओं की जानकारी के लिये पूरी तरह सूरज प्रकाश के अक्षरों में दर्ज कर रहे हैं –

जल ढोवन अर लकरी लयावनो करन बीजनो प्रभु सिमरनो।
चरन पखारनि अंनि पकावनि इतयादिक जेतिक हैं आनो।
मिलि सतिसंग करन जो सेवा अधिक तपन फल होहि महानो।
इमि बीचार श्री अमर कहयो उर आनौं नीर आपने पानो।
निति सति संगति देवनि ठानों अर सतिगुरु तन करहिं शनानो॥
४॥

मिलि सिखयन महि भनयों सभिनि को जल की सेवा दिहु मुझ दान।
आइसु ले करि कलस उचायहु सरि धरि लयावति है तिस थान।
देति रसोई महिं चहि जेतकि सिखयन को करवावहिं पांन।
मन नीवों करि सादर बोलहि नहि डोलै बुधि को द्रिड़ ठांन॥
४॥

श्री अंगद जब जामनी जागहि मज्ज थित तिसु काल।
तबि ते आगे ही उठि करि कै जल आनहिं भरि कलस बिसाल।
अधिक प्रीति करि सेवा ठानहि नहि अकुलावहि बलहि संभाल।
प्रथम शनानहिं बसत्र पखालहिं पुनहि शुशक करबे हित डाल॥
४॥

पुन इकंत हुइ सभि ते बैठहि कहहि न सुनहि बचन किसि नालि।
सतिगुरु मूरति रिदै समालहिं अपर मनोरथ सभ को टालि।
निज कुल को निज ग्रिह को तजि कर करि नहीं जाइ पुन कीन संभालि।
नर उपहास करनि सभि लागे ब्रिध होइ किआ कीनी ढालि॥ ७॥

संबत गयो बीत जबि इस बिध्धि जीरण बसत्र धरे तनु मांहि।
श्री अंगद सेवा के ततपर अपर मनोरथ होहि न काहि।
खान पान निरबाह देह हित छुपा पिपासा बहु बिरधाहि।
तब कुछ करहि पहिरबे पट की सुध बुधि कोन करहि हुइ नाहि॥
५॥

एक बरख बीतयो पिख सतिगुर गज डेढ़क तब दीन रुमाल।
सो लेकरि निज सीस चढ़ायो द्रिढ़ करि बाधयो रसरी नाल।
बहुत उतारनि को नहिं कीनसि लख करि गुरु प्रसादि बिसाल।
सेवा करहि तिसी बिधि निसदिन जल आनहि चहीअहि जिस काल॥
८॥

बरख बहत्तर भई आरबल तबि आए सतिगुर के पासि।
निरबल सरीर जरजरी भूत सु तऊ सेव को धरहिं हुलासि।

आलस तयाग करति उतयोगहि कलस उठाइ लयाइ जल रासि।
निज तन की अर घर कुटंब की सुधि भूली करि गुर निरजासि॥ १०॥
बरथ इकादस सेवा कीनसि दिए रुमाल इकादस पानि।
सो सगरे सिर पर करि बांधनि रसरी संग सु द्रिड़ता ठानि।
बडो मुकट तिन के तब होयहु दिन प्रति भीगहि नीर महान।
बहु पिपीलका बासा कीनसि अपर जीव उपजे तिस थान।
जबि के दए सीस परि बांधे बहुर न तरे उतारनि कीन।
करति रहति दिन प्रति द्रिड़ तिन को रैन दिवस मन प्रेम प्रबीनि।
अपर बासना रही न कोऊ चरन कमल सिमरति हुइ दीनि।
कहनि सुननि किह सों न करहि कहि इक सेवा के ततपर भीनि।
बरख दुआदसो सेवति आयहु जीरण चीर शरीर सु छादि।
पग महि भई बिवाई फट्ट करि खान पान को चहैं न सादि।
जल सों भीज राख तिसि बिधि के कब बैठहिं सुनि शबद सु नादि।
घाली घाल अधिक जब ऐसे देखति सिखय होहिं बिसमादि।
मधरो ढील शरीर अलपाइन बहुर ब्रिद्ध बल नहिं जिन मांहि।
स्वेत केस तिन चरम सिथल बहु सेवा सभि ते अधिक कराहि।
चरन अंगूठा निस मुख राखत नहि सोवत कबहूं चित चाहि।
जाम जामनी ते जल आनहि गुरू सनानहिं प्रेम उमाहि।
सीत उसन बरखा बड होवति सेवहि इक सम जानहि नाहि।
तप बिसाल कर घाल सु घालहि धंन जनम कर लीनि उपहिं।
तदपि रुख नहि गुर कछु करि हैं उदासीन सी ब्रिती रखांहि।
निकटि बिठाहि न बोलहि बूझहि अगम गुर गति लखी न जाहि।

सूरज प्रकाश, 16-17

उपर्युक्त समस्त विचार से जो गुरमत के प्रकाश में की गई है, उसके अनुसार केवल मुरशद-ए-कामल, समरथ गुरू ही जिज्ञासु को पार लगा सकता है। कच्चा गुरू, पाखंडी गुरू अनेक प्रकार के जाल बिछाता है वह स्वंय मार्ग से भटका हुआ होता है, अपने पीछे चलने वालों को, यदि आप गड्ढे में गिरा है तो उन्हें भी गहरे गड्ढे में फैंक देता है।

सम्वत् 1900 ई. के प्रारम्भ में रोपड़ के इलाके में किसी गाँव का प्रेमी एक ही बात गाँवों में घूम-घूम कर कहता रहता था। 'आ गई' 'आ गई' 'आ गई' उसकी बात किसी को भी समझ में न आती थी। कोई भी आदमी उसकी 'आ गई' के अर्थ स्पष्ट नहीं कर सकता था। कुछ समय बीतने के बाद पंजाब में एक बीमारी फैल गई, प्लेग वगैरा की, गाँव के

गाँव खाली हो गये। बहुत सारे गाँव तो बिल्कुल ही खाली कर दिये और वे वीरान हो गये। अब इसकी 'आ गई' का अर्थ यह निकाला गया कि यह कई साल पहले से कहता आ रहा था कि बीमारी आ गई, प्लेग आ गई। जनता बहुत डरी हुई थी वह विचारहीन थी। वे उस आदमी के पीछे अन्धाधुंध पड़ गई और बेअन्त पदार्थ उसे भेंट करने लगे। जब उस खचरे आदमी के पास बेअन्त धन आ गया तो इसने गुरू दशमेश पिता का रूप धारण करके पाँच प्यारे अपने चौगिर्दे खड़े करने शुरू कर दिये। जब कहीं जाता तो तीन चार सौ शस्त्रधारी आदमी इसके साथ जाया करते थे। दिनों दिन इसका प्रभाव बढ़ता गया और इसने केशगढ़ के तख्त पर कब्ज़ा करने के प्रयत्न किये। आनन्दपुर साहिब में निवास कर लिया। यहाँ बैठकर इसने सिक्ख राजाओं को फरमान भेजा कि हम केशगढ़ साहिब के मालिक दोबारा आ गये हैं हमारी अब इच्छा हुई है कि हम आपके राज घरानों के साथ सम्बंध स्थापित करें, इसलिये इस फ़रमान द्वारा आपको बताते हैं कि आप अपनी एक-एक लड़की की शादी मेरे साथ कर दो ताकि जो काम मैं छोड़ गया था वह अब पूरा कर सकूँ। अंग्रेजों से राज्य छीन लूँ। यह पत्र देकर पाँच-पाँच सिहों को सभी राजाओं की तरफ यह सन्देश भिजवा दिया। और सभी राजा तो चुप कर गये, पर महाराजा नाभा जिनका नाम हीरा सिंह था, बहुत योग्य थे। उनकी दूर दृष्टि ने भांप लिया कि यह कोई पाखण्डी अपने आपको समरथ गुरू बता रहा है। उन्होंने इसका पाखंड खोलने के लिये अपने अहलकार को एक पत्र देकर भेजा। जिस में लिखा कि महाराज! हमारे तो बड़े धन्य भाग हैं कि हम आपके साथ रिश्ता जोड़ें, पर हम प्रार्थना करते हैं कि शगन की रस्म आप नाभा पहुँच कर ही पूरी करें। वह अपने साथ एक हज़ार के करीब शस्त्रधारी सिंह साथ लेकर पहुँचा। उसका स्वागत और ठहराव बाग में किया गया। दूसरे दिन महाराजा नाभा ने प्रार्थना भेजी कि महाराज! मैं आपके साथ मुलाकात करके सारी बात तय करना चाहता हूँ, इसलिये आप कृपा करके मेरे दफ्तर के सामने आकर मुझे मिलें। जब यह महाराजा के दफ्तर के सामने पहुँचा तो चौबदार ने एक कुर्सी पर इसे बिठा दिया, बिना जल पानी पूछे सारा दिन बैठा रहा। सांय को महाराज ने कहलवा भेजा कि आज मुझे फुर्सत नहीं है, कल आप फिर दर्शन दें। दूसरे दिन भी कल की तरह इसका हाल हुआ। महाराज ने अच्छी तरह निर्णय कर लिया कि यह न तो कोई निरिच्छत साधु है, न ही कोई ज्ञानवान गुरसिख है। गुरू तो क्या, गुरू की परछाईं तक की भी इसमें पहुँच नहीं है। सो आप जी ने बिना ही मुलाकात किये कहलवा दिया कि कल शगन दिया जायेगा, आप पूरी तरह तैयार रहना। महाराजा हीरा सिंह ने अपने वज़ीर को तथा अपने फौजी जरनैल को बुलाकर हिदायतें दे दीं कि कल इस पाखंडी की मुरम्मत

करनी है, पर नाटक पूरा करना है। सुन्दर-सुन्दर कपड़ों के साथ ढक कर थाल ऐसे ले जाने हैं जैसे कि शगन की सौगातें जा रही हों, बैंड बाजा साथ-साथ बजता जाए। मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा और जब मैं इशारा करूँ उस समय इसके साथियों पर पूरी तरह से लाठी चार्ज शुरू हो जाये। दूसरे दिन शगन के नकली खाली थाल बैंड बाजों के साथ उस बाग की ओर बढ़ रहे थे, महाराजा साथ हैं। उस पाखंडी ने जब राजा को आते देखा तो अपना आसन छोड़कर महाराजा हीरा सिंह के चरणों में सिर झुकाने लगा तभी महाराज ने यह निश्चय कर लिया कि न तो यह कोई साधु है, न ही कोई ज्ञानवान पुरूष है, यह तो कोई मूढ़मति पाखंडी है जिसका दाव चल गया और दुनिया धोखे में आ गई। महाराज ने इशारा कर दिया तुरन्त लाठीचार्ज शुरू हो गया। इसके पाँच प्यारे तथा अनेक शस्त्रधारी अपने शस्त्र छोड़कर जिधर को मुँह था उसी ओर भाग लिये आखिर यह अकेला काबू में आ गया। बेअन्त जनता इस नाटक को देखने के लिये इकट्ठी हो गई। उस समय इसे पूछा गया कि तू कौन है? तो इसने अपने गाँव का सारा अता-पता बता दिया और कहने लगा कि मैं तो गुरू गोबिंद सिंह जी का रूप धारण करके सारे पाखंडी कर्म करता रहा हूँ, अब मुझे क्षमा किया जाये, आज के बाद मैं कभी भूलकर भी ऐसे स्वांग नहीं रचूँगा। सो यह वार्ता है एक पाखंडी गुरू की।

इसी प्रकार गुरू सांतवें पातशाह लधाई गाँव के, जिला फिरोजपुर में गये हुये थे। वहाँ आप घोड़े से उतर कर थोड़ी देर के लिये ठहर गये। वहाँ आप जी ने देखा कि एक साँप को कीड़े-मकौड़े लिपटे हुये हैं। उसके शरीर को कीड़े नोंच-नोंच कर खा रहे हैं और चमड़ी में से जगह जगह से खून बह रहा है। गुरू महाराज जी ने उस साँप पर दया करने हेतु अपना चाँदी की नोंक वाला तीर उसकी गर्दन पर मारा, वह बड़ी सरहाल (बहुत बड़ा साँप) मर गई। सिक्खों ने पूछा कि महाराज! यह क्या कौतुक किया? उस समय गुरू महाराज जी ने फरमाया कि यह एक पाखंडी विद्वान था, अपने आपको गुरू सिद्ध करता था। अपने चेलों से जबरदस्ती दसवन्ध लेता था और उसका प्रयोग अपने निज के लिये करता था, बहुत ही अहंकारी पुरूष था। धन की बहुलता के कारण हमेशा फूला रहता था। लोगों को बैराग की भक्ति के, शुभ प्रसंग सुनाया करता था और स्वंय अपने जीवन में कुछ भी नहीं अपनाया करता था। प्रेम से विहीन था, प्रभु पर विश्वास नहीं था, लोग इसके शिष्य, इसकी विद्वता के कारण बन गये थे। बेअन्त धन कमा लिया। दिन रात माया की तरफ ध्यान रहता था। यह जब शरीर छोड़ने लगा तो परमेश्वर के प्यार से विहीन होने के कारण, माया के प्यार में जीवन बिताने के कारण माया के ध्यान

में चला गया और साँप की यौनी में चला गया जैसा कि फ़रमान है –

अंति कालि जो लछमी सिमरै ऐसी चिंता महि जे मरै।
सरप जोनि वलि वलि अउतरै॥ पृष्ठ - 526

यह जो कीड़े इसके माँस को काट-काट कर खा रहे हैं, ये इसके सेवक हैं, ये लेखा माँग रहे हैं। गुरू महाराज जी ने फरमाया कि जो पांखड करके गुरू बनता है उसका ऐसा ही हाल हुआ करता है। गुरू महाराज जी ने उपदेश देते हुये कहा कि पूजा का धान नहीं खाना चाहिए, धर्म की कमाई करके खाना और खिलाना चाहिए। जो धर्म की कमाई करके दसवन्ध निकाल कर खाते हैं, गुरू की कृपा से उनके विघ्न दूर होते हैं।

पूजा अंस ना इहु कबि खाहे,
होइ दुखद, को बनहि सहाइ।
बहुत बिसू रहि जम बसि पाइ,
धरम किरत कर संतन सेवहि।
तस को मै सभि थान सुहाइ।

समरथ गुरू, धुर दरगाह के भाग्य में लिखे लेखों के अनुसार ही मिलता है जैसा कि फ़रमान किया है –

जिन मसतकि धुरि हरि लिखिआ
तिना सतिगुरु मिलिआ राम राजे। पृष्ठ - 450

गुरू पर पूर्ण विश्वास – गुरू को परमेश्वर रूप समझ कर विश्वास किया जाये तो जिज्ञासु का भला हो जाता है।

एक बार गुरू अंगद पातशाह संगत में बैठे थे। आप ने भाई बाला जी से पूछा कि भाई बाला जी! आप गुरू नानक पातशाह जी के साथ नौं खंडों, सातों द्वीपों, जहाँ तक धरती है, आबादी है, इन सभी स्थानों, जंगलों, पहाड़ों, समुद्रों में उनके साथ रहे, और आपने सारे कौतुक देखे हैं; आप गुरू नानक पातशाह को क्या समझते रहे? तो भाई बाला जी ने बड़ी नम्रता के साथ हाथ जोड़कर उत्तर दिया कि पातशाह! गुरू नानक पातशाह तो पूर्ण सन्त थे। महाराज जी ने कहा, "अच्छा भाई! तू सन्त हुआ।" बाबा बुड्डा जी की ओर देख कर कहा कि बाबा जी! आप ने भी गुरू नानक पातशाह के बेअन्त कोतुक देखे हैं और बेअन्त वचन श्रवण किये हैं। आप गुरू नानक पातशाह को क्या समझते रहे? उन पर आपकी क्या भावना थी? उस समय बाबा जी ने हाथ जोड़े और शीश नवाया और कहने लगे कि सच्चे पातशाह जी! गुरू नानक जी तो पूर्ण ब्रह्मज्ञानी थे। तब सतगुरू अंगद पातशाह जी बोले, "बाबा जी! आप ब्रह्मज्ञानी हुये।" इसी प्रकार भाई मनसुख, भाई भगीरथ, भाई सदारण तथा अजिता रन्धावा

जैसों से भी यही प्रश्न पूछा। सभी ने अपनी-अपनी भावनाओं के अनुसार उत्तर दिया। इसके बाद सारे गुरसिखों ने गुरू अंगद पातशाह जी के चरणों में प्रार्थना की कि महाराज! आप गुरू नानक पातशाह जी को क्या समझते रहे? उस समय गुरू अंगद पातशाह जी गम्भीर हो गये आप जी ने फरमान किया कि गुरू नानक पातशाह करोड़ों ब्रह्मांडों के मालिक आप ही गुरू रूप होकर संसार के उद्धार हेतु इस संसार में प्रगट हुये थे। वह आप निरंकार थे। इतने वचन सुनकर सभी ने शीश झुकाये और कहा कि सच्चे पातशाह! आप इसीलिये वाहिगुरू का स्वरूप बन गये हो।

इस प्रकार गुरू पर कई प्रकार के विश्वास हुआ करते हैं, कुछ का विश्वास होता है कि मेरा गुरू अच्छा सन्त है, कुछ का विश्वास होता है कि मेरा गुरू सब सन्तों से अच्छा सन्त है, कुछ का विश्वास होता है कि मेरा गुरू परमेश्वर जैसा है और विरले लोगों का विश्वास होता है कि मेरा गुरू परमेश्वर ही है। जैसा कि फ़रमान है -

सतिगुरु पुरखु अगंमु है जिसु अंदरि हरि उरिधारिआ।
सतिगुरू नो अपड़ि कोइ न सकई जिसु वलि सिरजणहारिआ।
सतिगुरू का खड़गु संजोउ हरि भगति है
जितु कालु कंटकु मारि विडारिआ॥ *पृष्ठ - 312*

जैसा निश्चय कोई अपने सतगुरू पर करता है वैसा ही फल उसे प्राप्त होता है।

सतिगुरु धरती धरम है तिसु विचि जेहा को बीजे तेहा फलु पाए।
गुरसिखी अंम्रितु बीजिआ तिन अंम्रितु फलु हरि पाए।
पृष्ठ - 302

गुरु की महिमा के बारे में फ़रमान है -

गुरु समरथु अपारु गुरु वडभागी दरसनु होइ।
गुरु अगोचरु निरमला गुर जेवडु अवरु न कोइ।
गुरु करता गुरु करणहारु गुरमुखि सची सोइ।
गुर ते बाहरि किछु नही गुरु कीता लोड़े सु होइ॥
गुरु तीरथु गुरु पारजातु गुरु मनसा पूरणहारु।
गुरु दाता हरिनामु देइ उधरै सभु संसारु।
गुरु समरथु गुरु निरंकारु गुरु ऊचा अगम अपारु।
गुर की महिमा अगम है किआ कथे कथनहारु॥ *पृष्ठ - 52*

सफल मूरति गुरदेउ सुआमी सरब कला भरपूरे।
नानक गुरु पारब्रहमु परमेसरु सदा सदा हजूरे॥ *पृष्ठ - 802*

एक जगह पर और फ़रमान आता है -

ब्रहमु बिंदे सो सतिगुरु कहीए हरि हरि कथा सुणावै।

तिसु गुर कउ छादन भोजन पाट पटंबर
बहु बिधि सति करि मुखि संचहु
तिसु पुंन की फिरि तोटि न आवै॥
सतिगुरू देउ परतखि हरि मूरति जो अंम्रित बचन सुणावै॥
पृष्ठ - 1264

नानक सोधे सिंम्रिति बेद। पारब्रहम गुर नाही भेद॥ पृष्ठ - 1142

सतिगुर जेवडु अवरु न कोइ। गुरु पारब्रहमु परमेसरु सोइ।
पृष्ठ - 1271

गुर की महिमा किआ कहा गुरु बिबेक सतसरु।
ओहु आदि जुगादी जुगह जुगु पूरा परमेसरु॥ पृष्ठ - 397

सो इस प्रकार गुरू पर जो विश्वास होना चाहिए, वह गुरू को परमेश्वर रूप समझे। जितना उच्च पवित्र, गुरसिख का विश्वास होगा, आत्म मार्ग पर वह गुरसिख हुक्म में रहता हुआ अपनी मंजिल पर शीघ्र पहुँच सकेगा।

वाहिगुरू जी घट-घट में व्याप्त हैं पर उनकी लखता समरथ गुरू के बिना नहीं हुआ करती। संसार में बहुत बड़े-बड़े उदाहरण मिल जाते हैं जिनको पढ़ने से पता चलता है कि मन का हठ करने से भी वाहिगुरू तक पहुँच नहीं हो सकती। गुरबाणी में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि -

जिस का ग्रिहु तिनि दीआ ताला कुंजी गुर सउपाई।
अनिक उपाव करे नही पावै बिनु सतिगुर सरणाई॥ पृष्ठ - 205

इस हठ के बारे में गुरबाणी में फ़रमान आता है -

मनहठि किनै न पाइआ करि उपाव थके सभु कोइ।
सहस सिआणप करि रहे मनि कोरै रंगु न होइ। पृष्ठ - 40

मनहठि जो कमावै तिलु न लेखै पावै
बगुल जिउ धिआनु लावै माइआ रे धारी॥ पृष्ठ - 687

सो इस प्रकार मन हठ करके शरीर को तपों जपों में जकड़ना, लम्बे साधन करने, भूखे रहना, ठण्डे पानी में खड़े रहना, नंगे पाँव चलना, वस्त्र न पहनने, गूंगी वृत्ति धारण करना, शरीर पर भस्म लगा लेनी, भोजन की जगह वृक्षों के पत्ते आदि खाकर गुज़ारा करना, ये बातें देखने, सुनने में बहुत अच्छी लगती हैं पर परमेश्वर की प्राप्ति नहीं करवा सकतीं, सिद्धियों की प्राप्ति हो सकती है। गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं -

हठु करि मरै न लेखै पावै।
वेस करै बहु भसम लगावै।
नामु बिसारि बहुरि पछुतावै। पृष्ठ - 266

जपु तपु करि करि संजम थाकी हठि निग्रहि नही पाईऐ।

नानक सहजि मिले जग जीवन सतिगुर बूझ बुझाईए।।पृष्ठ - 436

हठ करके शरीर को कष्ट देना इसकी जगह पर 'हउमै' की मैल उतरने की बजाये और भी बढ़ जाया करती है। आध्यात्मवाद में जब तक समरथ गुरू हउमै रोग को दूर करने की औषधि नहीं देता जो हर एक प्राणी मात्र के अन्दर रखी गई है, संयम द्वारा औषधि का प्रयोग नहीं करता तब तक हउमै के रोग से छुटकारा नहीं मिल सकता।

गुरू ग्रन्थ साहिब जी के अन्दर महान उच्च पवित्र गुरू पदवी के मालिक मुरशद-ए-कामल बाबा फरीद जी की बाणी दर्ज है जिसे हम गुरू की बाणी की तुलना देकर आदर देते हैं, प्यार करते हैं और वचन कमाते हैं। चाहे उस में मस्जिद में आकर नमाज़ न पढ़ने वाले को 'बेनिवाजा कुत्ता' कहा गया है पर हमें प्रेरणा देता है कि हम भी अपने मन्दिर, मठ, गिरजा, गुरूद्वारा साहिब जाकर हरि यश गायें और प्रार्थना करें। उनकी बाणी किसी को अखरती नहीं है उसमें प्यार ही प्यार है। उनके जीवन के बारे में जो तथ्य मिलते हैं बहुत ही रोचक और प्रेरणा के स्त्रोत हैं। आपके पूर्वज ईरान से भारत वर्ष में आए थे। बाबा फरीद जी को उनकी माता ने पाँच साल की आयु तक कुरान शरीफ पूरी तरह कंठस्थ करवा दिया था। उनकी माता ने बाबा फरीद जी को किशोर अवस्था में ही इबादत करने में लगा दिया था। वह अल्लाह-हू का जाप-ए-खफी भी करते थे और गुप्त रूप में भी जपते थे। गुरबाणी में ऐसी माताओं को धन्य कहा जाता है जो अपने बच्चों को परमेश्वर की ओर प्रेरित करती हैं। उसकी माता का नाम मरियम लिखा हुआ मिलता है उसने बाबा फरीद को आत्मिक खोज के लिए उस समय के प्रसिद्ध सूफी पीरों के पास भेजा। बाबा फरीद जी ने अपने जीवन काल में संसार का बहुत लम्बा चौड़ा भ्रमण किया। कई बार काबा शरीफ़ गये, बगदाद के बड़े-बड़े उलमां (विद्वानों) के साथ मेल हुआ और कई-कई दिनों तक उनके पास रहकर धार्मिक ज्ञान की गहराईयों की थाह पाई। उस समय के दर्जनों सूफी पीर जो करनी कमाई में बहुत ही पहुँचे हुये थे जिनकी कठिन कमाई के बारे में पढ़कर सुनकर हैरान रह जाते हैं, उन सबके साथ मेल हुआ। बाबा फरीद जी ने घोर तपस्या की। इस तपस्या की खबरें दूर दराज तक रूहानी जगत में पहुँची और यह रूहानी खोज में भ्रमण कर रहे थे तो उस समय एक बहुत बड़े पीर के साथ आपका मेल हुआ तो उन्होंने कहा, ''फरीद! कहाँ तक पहुँच गया हैं?'' तो बाबा फरीद ने जैसे ही निगाह मारी उस पीर की कुर्सी जमीन से पाँच-छह फुट ऊपर उठ गई और भी ऊपर उठती जा रही थी। उन महापुरुषों ने कुर्सी पर हाथ मारा, कुर्सी नीचे आ गई। देख लिया कि फरीद में हठ, तप करने से करामाती शक्ति काफी आ गई

है पर उसने साथ ही साथ कहा कि फरीद तेरे जप तप (जोहद) तो बहुत प्रशंसनीय हैं पर अभी तूने आत्म मार्ग पर पहला कदम भी नहीं रखा। उस बात ने बाबा फरीद को बहुत गहरी सोच में डाल दिया और यह महसूस करवाया कि मेरे अन्दर इतनी शक्ति आ गई है कि इसे इस पीर ने कुछ भी नहीं समझा। इसने फिर जंगलों में जाकर घोर तप करना शुरू कर दिया। एक बार वह अपनी माँ से मिलने के लिए 12 साल बाद घर वापिस आ रहे थे कि रास्ते में एक वृक्ष के नीचे बैठकर थकावट दूर कर रहे थे कि रास्ते में एक वृक्ष की टहनियों पर बैठे बहुत सारे पंछी अपनी मौज में गा रहे थे। जपों तपों से एकान्त में रहने के कारण मन में क्रोध उत्पन्न हो जाया करता है। सो बाबा फरीद को अकारण ही क्रोध आ गया और ऊपर को देखकर कहने लगे, ''चिड़ियो मर जाओ।'' सारे पंछी धरती पर बेरों की तरह गिर पड़े। फिर विचार आया कि इन्होंने मेरा क्या बिगाड़ा था कि मैंने इनकी जिन्दगी खत्म कर दी। अल्लाह-ताला जब मुझे पूछेगा तो मैं उसे क्या उत्तर दूँगा। इस प्रभावाधीन होकर कहने लगा, ''चिड़ियों जिन्दा हो जाओ'' सभी पंछी उड़ गये तथा फरीद के मन में आया कि मेरे अन्दर मारने और जीवित करने की शक्ति आ गई है। यह समाचार मैं जाकर अपनी माँ को बताऊँगा।

इस इरादे से जब जंगल में से बाहर निकला। इसे बहुत तेज प्यास लगी और थोड़ा आगे चलकर क्या देखता है कि 20-22 साल की जवान यौवनपूर्ण लड़की कूएं में से पानी निकालती और बिखेर देती है। इसने अभिमानपूर्वक लहज़े में कहा कि ओ लड़की! दरवेश को पानी पिलाओ। उस लड़की ने इसकी ओर बड़े गौर से देखा और बिना कुछ कहे पानी का डोल कुएं से निकाला और बिखेर दिया। जब तीन बार उस लड़की ने ऐसा किया तो इन्हें गुस्सा आ गया कुछ अपनी करामात का भी इसे अभिमान बहुत था। पता नहीं उस समय कौन-कौन से फुरने शक्ति दिखाने के मन में आ रहे होंगे। जब वह कड़क कर बोला, ''ऐ लड़की! सुना नहीं, दरवेश को बहुत प्यास लगी है, पानी पिलाओ।'' उसने सहज स्वभाव डोल निकालते हुये कहा कि बाबा! टिक कर बैठ जा, तुझे पानी जरूर पिलाऊँगी। यह चिड़ियाँ नहीं जिन्हें तू मार देगा और जिन्दा कर देगा। यदि तेरे अन्दर शक्ति है तो देख ले कि मैं पानी क्यों बिखेर रही हूँ। उस भोली-भाली युवती के मुख से दृढ़तापूर्वक वचन सुनकर फरीद को पसीना आ गया। सोचा कि मैंने तो यहाँ से 12 मील की दूरी पर पंछी मारे और जीवित किये थे इस लड़की को कैसे पता चल गया तथा एक तरह से उसकी प्यास ही बुझ गई और बार-बार माथे से पसीना छूटे जा रहा है। जब वह लड़की अपना कार्य समाप्त कर चुकी तो उसने अति मीठी बाणी

में कहा कि आओ दरवेश सांई! अब आप पानी भी पीओ, हाथ पाँव भी धोओ, घर में भोजन तैयार है भोजन खाकर जाना। जब बाबा फरीद ने पानी पीया और साथ ही पूछा कि बीबा! मुझे नहीं पता चल सका कि तू पानी क्यों बिखेर रही थी और मेरे द्वारा पंछियों को मारने और जीवित करने का तुझे कैसे पता चला? उस लड़की ने कहा कि फरीद जी जो करामात तूने पंछियों वाली दिखाई थी उसका इतना प्रभाव मेरे अन्दर प्रवेश कर गया कि तेरे मस्तक पर झाँकते ही दृष्टिगोचर होता था। तूने एक छोटी सी शक्ति अपनी माता को दिखानी थी। पानी बिखरने के बारे में उसने ज़िक्र करते हुये कहा कि मेरी बहन का घर यहाँ से 20 मील दूर है। अचानक उसके घर को आग लग गई और वह सत्संग में गई हुई थी। सो अपनी बहन का घर बचाने के लिए मैं पानी बिखेर रही थी। अब आग बुझ गई है, अब पानी पीओ और भोजन करो। बाबा फरीद जी ने कहा, ''बहना! तेरी उम्र अभी बहुत छोटी है मुझे तो ऐसा लगता है कि अभी तो तेरे हाथों की सुहाग मेंहदी भी नहीं उतरी है। तूने इतनी छोटी उम्र में कौन से जप तप कर लिये हैं जिस के कारण तेरे अन्दर इतनी शक्ति पैदा हो गई है।'' उस लड़की ने कहा, ''फरीद! आप दरवेश लोग हो, आप धूनियां रमा सकते हो, उलटे लटक कर तप कर सकते हो, जंगली फल आदि खाकर गुजारा कर सकते हो परन्तु हम स्त्रियां इन कामों में से कुछ भी नहीं कर सकती। अल्लाह ताला ने हमें पुरूषों की सेवा बख्शी है। मैं अपने पति को अल्लाह का रूप समझकर सेवा करती हूँ, मैं उसके प्यार में जीवित रहती हूँ वह श्रेष्ठ पुरूष दिन रात इबादत में रहता है, उसकी निष्काम सेवा में से मुझे ये शक्तियाँ सहज स्वभाव ही प्राप्त हो गई। फरीद! एक बात मैं तुझे पूछती हूँ कि तू घर बार छोड़कर गया तो अल्लाह ताला के मिलाप के लिये था पर शक्तियों के चक्कर में फंस गया। मैं अपने पति के साथ जाकर वली-अल्लाह की सोहबत (संगत) करती हूँ। वहाँ सुनती रहती हूँ कि करामात करना कुफ्र हुआ करता है, साधक के साथ अल्लाह नाराज़ हो जाया करता है। उसे करामातें करने का फल दरगाह में जाकर भुगतना पड़ता है। तू गया तो अल्लाह प्राप्ति के लिये था, तूने शक्तियाँ जरूर प्राप्त कर लीं परन्तु तेरा समय ऐसे ही बर्बाद हो गया। फरीद को ऐसी चोट लगी कि जंगल में जाकर घोर तप करने लग गया। ऐसी तपस्या की कि बड़े-बड़े आरिफ उसकी तपस्या को देखने आए। गुरबाणी में जिक्र आता है -

फरीदा तनु सुका पिंजरु थीआ तलीआं खूंडहि काग।
अजै सु रबु न बाहुड़िओ देखु बंदे के भाग॥ पृष्ठ - 1382

और नौबत (हालत) यहाँ तक पहुँच गई कि फरीद इतना सूख गया,

कौंवों ने समझा कि यह तो मर गया है उन्होंने पैरों की तलियों का माँस निकालना शुरू कर दिया। तप के वेग से उसके हाथ पैर बिल्कुल सुन्न हो चुके थे। खून का बहाव इतना रूक गया था कि सचमुच ही मुर्दे जैसा लगता था। केवल श्वास ही चलता था। उस समय एक कौवा उड़ता हुआ उसके माथे पर आकर बैठ गया। इससे पहले कि वह आँख में चोंच मारता, बाबा फरीद ने अपना हाथ हिलाया और दिल में से दर्द भरी आवाज़ उठी जिसमें हद दर्जे की निराशा थी। कौए को प्रार्थना की –

कागा करंग ढढोलिआ सगला खाइआ मासु।
ए दुइ नैना मति छुहउ पिर देखन की आस॥ पृष्ठ - 1382

कागा चूंडि न पिंजरा बसै त उडरि जाहि।
जितु पिंजरै मेरा सहु वसै मासु न तिदू खाहि॥ पृष्ठ - 1382

उस अवसर पर एक पूर्ण ज्ञानवान दरवेश उसके तप स्थान वाले जंगल में पहुँचता है जहाँ फरीद एक कोयल को देख कर कह रहा है कि ऐ काली कोयल! मैं तो अपने अल्लाह के वियोग में कंचन जैसे रंग से बदल कर कोयले जैसा हो गया हूँ। तुझे कौन सा दोष लगा है कि तू मेरे से भी अधिक काली हो चुकी है और तेरे विरह की आवाज़ मेरे शरीर में से आर पार हो रही है और मेरे शरीर में से बचा खुचा विरह जल आँखों द्वारा बाहर निकाल रही है। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि तू मेरे से अधिक वियोगिनी है। कोयल ने कहा, ''फरीदा! तेरा सहु (अल्लाह ताला) तो तेरे अन्दर बसता है पर मैं तो सदा ही अपने सहु के वियोग में रहती हूँ। सारे पंछी अपने-अपने जोड़े बना कर, चोगा चुग कर, वृक्षों की टहनियों पर बैठे खुशी से गीत गा रहे हैं पर मैं विरहणी अपने प्रीतम के वियोग में जल जाने के बाद भी अभी भी आशा भरी विरह आवाज़ में अपने पिर (प्यारे) को बुला रही हूँ पर मेरी किस्मत में नहीं। फरीदा! तुझे तो तेरा पीर कभी न कभी तो मिल ही जायेगा पर मेरी तो किस्मत में विधाता ने लेख लिख दिया कि तुम कभी भी पिर धन इकट्ठे होकर नहीं बैठ सकोगे।'' सो मुझे अपना दर्द भरा फिराक (विछौड़ा) खा रहा है और मैं काली स्याह हो गई हूँ।

काली कोइल तू कित गुन काली।
अपने प्रीतम के हउ बिरहै जाली॥ पृष्ठ - 794

उस समय एक कामल पुरुष बाबा फरीद जी के पास पहुँचता है, उसने कहा, फरीद! तू कौन सी धारा में पड़ गया। मैंने सुना है कि तू अल्लाह की तलाश में घोर तप कर रहा है, पर प्यारे! अल्लाह! तो तेरे अन्दर बसता है यह शरीर अल्लाह की मस्जिद है इस शरीर रूपी मस्जिद में जहाँ अल्लाह का वास है, वह वही दिखा सकता है जो आप अल्लाह

से मिला हो। यह तेरी जंगलों में उसे ढूंढ़ने की विचार व्यर्थ है, जा! मुरशदे कामिल की तलाश कर। वह तुझे रास्ता दिखायेगा जो तुझे अल्लाह के दर पर तेरे अन्दर से ही होकर गुजरता है। मैं तुझे बता देता हूँ कि तूने पहली मंजिल तय कर ली है जिसे वादी-ए-तलाश कहते हैं। अब तू प्यार की जमात में दाखिला ले, मुरशद को प्यार कर, इसे मंजिले-ए-इश्क कहते हैं। इस इश्क के द्वारा तेरे अन्दर विचार पैदा होगी जिससे तुझे अल्लाह का भेद मुरशद द्वारा मिलता रहेगा। तेरे अन्दर विवेक की वृत्ति जाग्रत होगी। इसे वादी-ए-मारफत कहते हैं। मुरशद की सेवा करते हुये इस मंजिल में विचरण करते हुये तेरे अन्दर लगातारी याद तारी (शुरू) हो जायेगी। इस याद में रहकर तू इबादत किया करेगा। उस का नाम वादी-ए-महिवीयत है। लिव में तेरे श्वास बीता करेंगे और अल्लाह के साथ जुड़ा रहेगा। सब रोने धोने खत्म हो जायेंगे और तू अपने आपको अल्लाह में मिला हुआ महसूस करेगा। उस मिलाप का आनन्द तेरे अन्दर झन्कारें देगा। तुझे तेरा मुरशद अल्लाह होकर नज़र आयेगा। वह अल्लाह का सगुण स्वरूप होकर तुझे दिखाई देगा, उसे अभेदता की वादी कहते हैं तथा वादी-ए-वहिदीअत इसे अल्लाह वाले कहते हैं। तेरे बज्र कपाट खुल जायेंगे। मुरशद की सेवा करते हुये तुझे ये चीजें स्वंयमेव ही मिल जायेंगी। फरीदा! बेअन्त शक्तियाँ तेरे आगे पीछे हाथ बान्धे फिरेंगी कि हम से कोई सेवा ले लो। देखना यदि कहीं तू इन बातों में पड़ गया तो जैसे कोई खजूर से गिर पड़ता है, तो फिर चकना चूर हो जाता है। तेरी भी यही हालत हो जायेगी, अन्दर से थक जायेगा, रूहानी शक्तियाँ तुझे सुन्दर छल से भरे जाल में फंसा लेंगी, तेरे चारों ओर खुदगर्ज़ों की भीड़ लग जायेगी जो प्यार की जगह अपनी गर्ज़ पूरी करने के लिये तेरे साथ व्यवहार करेंगे और अपना काम पूरा हो जाने के बाद, "नैंह लंघी खुआजा बिसरिआ" भाव (मतलब निकल जाने के बाद एहसान फरामोशी दिखाना) वाली बात हो जायेगी। तेरी शक्ति कमज़ोर हो जाने पर तुझे क्रोध आयेगा तू फिर श्राप देगा। दो गुनाह (पाप) सहज स्वभाव तू असूझ ही करने लग जायेगा - एक तो शक्तियाँ दिखाने का कुफ्र, दूसरा श्राप देने का पाप। फरीदा! सम्भल कर चल। यह चिकना, फिसलने वाला रास्ता है। पर यदि तू सब कुछ ज़ब्त (अजर जरना) कर गया तो तुझे अल्लाह की हजूरी में से आ रहे परम आनन्द की झलक मिलेगी। जिसे बादी-ए-नूर या वादी-ए-हैरान (विस्माद) कहा जाता है। फरीदा! यहाँ तक तो मैं तुझे बता चुका हूँ। मुरशद की कृपा से और अपने दृढ़ इरादे से सेवा करके तू पहुँच सकता है पर इससे आगे मुरशद-ए-कामल के बिना, अल्लाह के महल की चाबी नहीं मिल सकती। यहाँ मुरशद की रहमत के साथ चाबी प्राप्त होती है

और मुरशद-ए-कामल परख कर, खरा करके अल्लाह के मण्डल में प्रवेश करवा देता है जहाँ पहुँच कर अपने आप ही हमां उस्त के रूप में प्रकट हो जाता है या हमा-अज-उस्त का जज़बा प्रत्यक्ष रूप में नज़र आता है। फरीदा! यह जो तेरी जात है यह जात-ए-इलाही है यह तुझे मुरशद दिखा देगी। इस आखिरी मंजिल को फिनाह-फिलाह कहा जाता है जहाँ इसका सांसारिक अस्तित्व पूरी तरह खत्म हो जाता है और अल्लाह के रूप में से वापिस आकर समुच्चता में जागता है। व्यष्टि (समुच्चता) में एकत्व अनुभव करता है। गुरबाणी में इसे इस प्रकार फ़रमान किया है -

कबीर जाकउ खोजते पाइओ सोई ठउरु।
सोई फिरि कै तू भइआ जाकउ कहता अउरु॥ पृष्ठ - 1369

कबीर तूं तूं करता तू हूआ मुझ महि रहा न हूं।
जब आपा पर का मिटि गइआ जत देखउ तत तू॥ पृष्ठ - 1375

सो इस प्रकार बाबा फरीद मन हठ छोड़कर मुरशद-ए-कामल की शरण में आए, वहाँ आकर 12 वर्ष सेवा करते रहे। आज मुरशद ने उसे आखिरी मंजिल पर पहुँचाने की विशेष विचार से उसकी सख्त परीक्षा लेनी शुरू कर दी जिसे कसौटी पर उतारना कहा जाता है जिसके बारे में फ़रमान है -

कबीर कसउटी राम की झूठा टिकै न कोइ।
राम कसउटी सो सहै जो मरजीवा होइ॥ पृष्ठ - 948

फरीद जी जहाँ और सेवायें लंगर तैयार करने की, पानी ढोने की, झाड़ू देने की, बर्तन माँजने की, वस्त्र धोने की अनेक खिदमतें (सेवायें) किया करते थे, वहाँ आप जी ने मुरशद-ए-कामल हज़रत बुखतिआर काकी जी को गर्म पानी से स्नान करवाने की सेवा अपने जिम्मे ले रखी थी। हज़रत बुखतिआर काकी जी महान पीर मुअईऊदीन के मुरीद थे जो मानवीय शरीर में निरा अल्लाह ताला का नूर ही थे। वह फरीद द्वारा की गई खिदमतों पर गहरी नज़र रखे हुये थे और समय विचार कर आपने अनुभव कर लिया था कि अब फरीद जी को आखिरी मंजिल में चढ़ा दिया जाये। पहले वाली मंजिलों में गुप्त विधि से फरीद जी की पूरी सहायता किया करते थे, उसे नफस तथा वासनाओं से पूरी तरह पवित्र किया हुआ था। इबादत में उसकी यक सूई (एकाग्रता) को अनुभव कर चुके थे। अब आखिरी मंजिल पर पहुँचने के लिए और फरीद को चाबी सौपने के लिए उन्होंने कठोर परीक्षा लेनी शुरू कर दी।

आप पूर्ण शक्तियों के मालिक थे। आप जी ने पौष मास की कड़कती ठंड के महीने में वर्षा की झड़ी लगा दी और बहुत मूसलाधार वर्षा की

जिस स्थान पर फरीद मुरशद के स्नान के लिए आग सुरक्षित रखता था वहाँ पानी घुस गया, ईंधन गीला हो गया, आग बुझ गई। फरीद को जब समय रहते चेत हुआ तो हैरान रह गये कि मेरा नित नेम टूट जायेगा। शक्तियाँ दिखानी वर्जित थीं, शक्तियाँ दिखाने को कुफ्र कहा जाता है, शक्तियाँ दिखाना एक बहुत बड़ा गुनाह होता है जो अल्लाह के दर पर प्रवान नहीं तथा आज प्यार टूट रहा है, पानी बरस रहा है, क्या किया जाये? फरीद जी के श्लोक कुछ-कुछ प्रकाश इस भाव पर डाल रहे हैं –

फरीद गलीए चिकड़ु दूरि घरु नालि पिआरे नेहु।
चला त भिजै कंबली रहां त तूटै नेहु॥ पृष्ठ - 1378

उस समय आपने कम्बल की बुक्कल मारी और चलती हुई ठंडी हवा में, रिमझिम बरसती वर्षा की बूंदों में अजमेर शरीफ की और चल पड़े। एक घर में जाकर क्या देखते हैं कि वहाँ अभी तक दिया जल रहा है बाकी सारा शहर नींद की गोदी में बेहोशी की अवस्था में पड़ा है। गलियों में कुत्ते भौंक रहे हैं और बाबा फरीद पर खींझ-खींझ कर टूट रहे हैं उनके भौंकने की आवाज़ और खींझ कर पड़ने की आवाज़ सुनकर जिस किसी की भी आँख खुली वह महसूस कर रहा है कि शायद कोई चोर गली में से भाग रहा है। बाबा फरीद गलियों में से ठोकरें खाते हुये, हाथ पसारे हुई खस्ता हालत में गिर-गिर पड़ते हैं फिर उठते हैं। उस मकान के आगे जाकर रूक गये जहाँ पर दीये की लौ झरोखे में से नज़र आ रही थी। उसने आवाज़ लगाई कि अल्लाह के वास्ते मेरी बात सुनो। मैं बहुत सन्ताप में हूँ, मेरी मदद करो। एक बीबी आवाज सुनकर दरवाजे के पास आई और कहने लगी तू कौन है, इस समय जब सभी सोये पड़े हैं, तू क्या कहना चाहता है? बाबा फरीद जी ने कहा, "बीबा! मुझे फरीद कहकर बुलाते हैं। मैं अपने मुरशद की सेवा में लगा हुआ हूँ, मैं मुरशद को स्नान करवाया करता हूँ, आग बुझ चुकी है। मेरे पर रहम कर, तेरा अहसान मैं कभी नहीं भूलूँगा। खुदा तेरे पर बख्शीश करे, दरवेश को थोड़ी सी आग दे दे ताकि मैं अपने मुरशद को समय पर स्नान करवा सकूँ।" अन्दर से कड़कती हुई आवाज आई कि फरीदा! यह घर पीरों, फकीरों, मुरीदों के लिये नहीं है, यहाँ तो दोजख (नर्क) के टिकट मिलते हैं। गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं –

राज लीला राजन की रचना करिआ हुकमु अफारा।
सेज सोहनी चंदनु चोआ नरक घोर का दुआरा॥ पृष्ठ - 642

बाबा फरीद जी ने फिर कहा कि मैंने सिर्फ आग लेनी है। अन्दर से फिर आवाज आई कि फरीदा जिस घर के आगे खड़ा है, आप पीर

मुरीद इस घर को घृणा की नज़रों से देखते हो, अति बुरा मानते हो, यहाँ शरीर बिकते हैं, ईमान टूटते हैं, यहाँ प्यार नाम की कोई चीज़ नहीं, यहाँ सब कुछ बोलना, प्यार करना, सब हफस परस्ती (दिखावा) ही है। यहाँ सब कुछ मोल बिकता है, तू भी मोल देकर ले सकता है; आग मुफ्त नहीं मिलेगी, तुझे इसके बदले में अपने शरीर का कोई अंग देना पड़ेगा। उस समय फरीद ने कहा कि बीबा –

तन गंदगी की कोठड़ी हरि हीरिआं की खाण।
सिर दितिआं जे हरि मिले ता भी ससता जाण।

यदि तू मेरा सिर भी माँगे, वह भी मैं तेरे चरणों में रख दूँगा। उस समय उसके हृदय में नम्रता आई तो उसने फिर कहा कि तेरा अंग लिये बिना तो मैंने आग नहीं देनी, तू अपनी आँख निकाल कर दे जा और आग ले जा। बाबा फरीद जी ने इलतजाह (प्रार्थना) की कि बीबा! मुझे बहुत खुशी हुई है कि तूने मेरे पर रहम करके केवल मेरी आँख ही माँगी है। मैं तेरे हक में यही दुआ करता हूँ, अल्लाह तुझे शान्ति बख्शे। अपने प्यार की रहमत करे; अपनी मोहब्बत का एक किणका तेरी गोदी में भी डाल दे।

दरवेश कभी भी बद्दुआ नहीं देते, सदा ही आशीष देते हैं। बुरों के साथ कभी बुराई नहीं करते, हमेशा भला ही करते हैं –

फरीदा बुरे दा भला करि गुसा मनि न हढाइ।
देही रोगु न लगई पलै सभु किछु पाइ॥ पृष्ठ – 1382

दरवाजा खुला। बाबा फरीद ने अपनी आँख की पुतली निकाल कर उसके हवाले कर दी, अपनी पगड़ी फाड़ी और (दर्द पीकर) अपनी आँख पर बान्ध ली, आग ले ली। प्यारे! यह प्यार का रास्ता बहुत महंगा प्राप्त होता है। गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं –

जउ तउ प्रेम खेलण का चाउ। सिरु धरि तली गली मेरी आउ।
इतु मारिग पैरु धरीजै। सिरु दीजै काणि न कीजै॥ पृष्ठ – 1412

पहिला मरणु कबूलि जीवण की छडि आस।
होहु सभना की रेणुका तउ आउ हमारै पासि॥ पृष्ठ – 1102

बाबा फरीद जी के शरीर में चाहे आँख निकालने के कारण दर्द हो रहा था पर एक महान खुशी का अहसास उन्हें हो रहा था कि मैं अपने मुरशद का स्नान समय पर करवा दूँगा, मेरे मुरशद की खुशियों में सारी बहिशतें सारी खुशियां हैं। बाबा फरीद जी ने स्नान करवाया, सुबह दिन चढ़ आया। मुरशद ने इबादत के बाद पूछा कि फरीद कहाँ है? तब फरीद को बुलाया गया, उसने आँख बान्धी हुई थी। पूछा, "फरीद! आँख

क्यों बान्धी हुई है?'' उस समय फरीद ने कहा कि आँख आई हुई है। पंजाबी में आँख आई हुई का अर्थ होता है आँख दर्द करती है। तब मुरशद ने परम आनन्द के लहज़े से भर कर कहा, ''फरीदा! आई हुई आँखें नहीं बान्धा करते, चली गई बेशक बान्ध लो; पट्टी खोल।'' बड़ी हैरानी हुई कि बाबा फरीद की आँख ठीक ठाक निकली पर अल्लाह द्वारा दी गई आँख से छोटी। तब मुरशद-ए-कामल ने उठा कर गोदी में भर लिया और पूरे जलाल में आकर महावाक्य का उच्चारण किया जिसे हम अह्म तथा त्वम् करके जानते हैं। अहं, हमारी बोली में 'अहंम ब्रहमस्मि' हुआ करता है त्वम् सारे पसारे में तू ही तू है तेरे बिना और कोई चीज़ नहीं है। प्रत्यक्ष रूप में अल्लाह का नूर सभी व्याप्त दिखाई दिया जैसा कि फ़रमान है –

सो अंतरि सो बाहरि अनंत। घटि घटि बिआपि रहिआ भगवंत।
धरनि माहि आकास पइआल। सरब लोक पूरन प्रतिपाल।
बनि तिनि परबति है पारब्रहमु। जैसी आगिआ तैसा करमु।
पउण पाणी बैसंतर माहि। चारि कुंट दहदिसे समाहि।
तिस ते भिंन नही को ठाउ। गुर प्रसादि नानक सुखु पाउ॥

पृष्ठ - 293

सो इस प्यार भरी घटना से हम सहज ही समझ सकते हैं कि फरीद ने 36 साल घोर तप किया। मन हठ से प्रभु की तो क्या प्राप्ति होनी थी बल्कि हठ इतना बढ़ गया कि चिड़ियों का बोलना भी सहन न कर सका। मुरशद की संगत प्राप्त हुई अपने आपको उनके चरणों में न्यौछावर कर दिया। वह परमेश्वर ऐसे प्रकट हो गया जैसे अन्धेरी रात के बाद सूरज का प्रकाश प्रकट होता है –

तह भइआ प्रगासु मिटिआ अंधिआरा जिउ सूरज रैणि किराखी।
अदिसटु अगोचरु अलखु निरंजनु सो देखिआ गुरमुखि आखी॥

पृष्ठ - 88

एक बहुत बड़ी मिसाल आध्यात्मिक कथाओं में आती है कि प्राणायाम करने से, श्वांस को चढ़ाने से, योग की सारी क्रियाएं करने से आखिरी दरवाज़ा नहीं खुला करता जिस जगह से परम शान्ति रिमझिम बरसती शान्त फुहारों की प्राप्ति हो। प्राणायाम एक सुलझा हुआ रास्ता है जिसमें प्रवेश करने से पहले ज्ञान तथा कर्मेन्द्रियों को काबू करना पड़ता है, सभी विकारों को छोड़ना पड़ता है, शरीर को पूर्णतौर पर निरोग रखना पड़ता है फिर यह शारीरिक क्रियाएं प्राणायाम द्वारा की जाती हैं। सबसे पहले किसी निम्न स्तर की श्रेणी के गुरू से जो यह शारीरिक आन्तरिक क्रियाओं के बारे में जानता हो, उससे यह क्रियाएं सीखनी पड़ती हैं। प्राणायाम एक

श्वांस क्रिया है जिसके द्वारा भुंजगा नाड़ी जो रीढ़ की हड्डी के आखिरी सिरे पर बल खाती हुई उसे अपने मुँह में रखे हुये बेहोशी में सो रही है। यहाँ मैं यह बता देना चाहता हूँ कि प्राणायाम का मार्ग आहार, विचार और व्यवहार की शुद्धता के साथ सम्बंध रखता है और बहुत मेहनत करके प्राण वायु को किसी खास नुकते पर केन्द्रित करना पड़ता है। इस क्रिया के लिये शरीर का पूर्ण तौर पर निरोग और नरोया होना जरूरी है। दिमाग पूरी तरह से स्वस्थ हो तथा बहुत देर तक गर्मी सहन कर सकता हो तब यह क्रिया कुछ फल देती है। पर आजकल के हालातों में हमारी जीवन मर्यादा बहुत हद तक विषय विकारों में पड़ चुकी है। हम अपने शरीरों को विषय भोगों द्वारा तमो गुणी और रजो गुणी आहार खाकर और उसके फल स्वरूप भोगों में पड़कर बिल्कुल क्षीण कर देते हैं। ब्रह्मचर्य नाम की कोई भी चीज़ हमारे अन्दर है ही नहीं। चित्त इतने कमज़ोर हो चुके हैं कि हर वक्त काम चितवना तथा अन्य विषय भोगों की लालसाएं हमारे अन्दर मधानी की तरह हर समय घूमती रहती हैं। ऐसे हालात में प्राणायाम करना पागलपन को बुलाना है। एक हजार आदमी यदि प्राणायाम करने लग जायें तो उनमें से 999 असाध्य रोगों से ग्रस्त होकर जगह-जगह डाक्टरों के क्लीनिकों में भटकते फिरते नज़र आएंगे। इसलिये यह मार्ग गुरू महाराज जी ने आज के हालातों को देखते हुये वृजत कर दिया है। पर प्राचीन समय में साधक ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करके प्राणायाम के साधनों द्वारा आन्तरिक ऊष्मा को सहन कर लिया करते थे। आन्तरिक उष्मा द्वारा भुजंगा नाड़ी का मुख खुल जाता था तथा यहाँ सोई पड़ी कुण्डलनी शक्ति जाग्रत हो जाया करती थी जिसे परिश्रम द्वारा मूलाधार चक्र में मूल द्वार में से निकलकर स्वाधिष्ठान चक्र में होती हुई जिसका वास काम कुण्ड में होता है, द्वारा मणिपूरक चक्र नाभि में पहुँचते थे। यहाँ विष्णु भगवान के दर्शन करके अनाहद चक्र जिसका वास हृदय में है तथा 12 पंखों वाले सफेद फूल में शिवजी के दर्शन करके, विशुद्ध चक्र में पहुँचते थे। विशुद्ध चक्र का वास कंठ में है। 16 पंखुड़ियों वाला हरा रंग है यहाँ जीव का निवास हुआ करता है। वहाँ से आज्ञा चक्र में जिसका वास है दोनों नेत्रों और नाक की जड़ है यहाँ दो पंखुड़ियां हैं और फूल का रंग लाल है, गुरू का वास है। यहाँ त्रिकुटी पार करके सहंसरार दल कमल में अनेक-अनेक शक्तियों को मोहित करने वाली परन्तु ठगने वाली लहरों में से निकल कर दशम द्वार में पहुँचा करते थे। यहाँ पर दो प्रकार की एकाग्रता होती है एक को, 'सम्प्रज्ञात समाधि' कहा जाता है दूसरी को 'असम्प्रज्ञात समाधि' कहते हैं। समाधि में लय तो हो जाते थे पर एकंकार के देश में केवल नाम शक्ति ही पहुँचाया करती है उसके अनस्तित्व

(अनहौंद) के कारण एकंकार के महल तक पहुँच कर उसमें लीनता प्राप्त नहीं हुआ करती थी क्योंकि यह क्रिया समरथ गुरू के बगैर नहीं होती। बाणी में बार-बार इसके संकेत मिलते हैं-

बिनु सबदै अंतरि आनेरा। न वसतु लहै न चुकै फेरा।
सतिगुर हथि कुंजी होरतु दरु खुल्है नाही
गुरू पूरे भागि मिलावणिआ॥ पृष्ठ - 124

इस प्रकार के साधन बहुत सारे साधक छोटे स्तर के गुरूओं द्वारा प्राप्त कर लेते थे। आध्यात्मिक गुरू बहुत मुश्किल से मिलता था। जब तक आध्यात्मिक गुरू नहीं मिलता तब तक प्रभु प्राप्ति नहीं हुआ करती। ज्ञान के बिना मुक्ति प्राप्त नहीं होती, समरथ गुरू के बिना ज्ञान की प्राप्ति असम्भव है। गुरू महाराज जी का फ़रमान है -

भाई रे गुर बिनु गिआनु न होइ।
पूछहु ब्रहमे नारदै बेदबिआसै कोइ॥ पृष्ठ - 59

आदि अनेक-अनेक वचन गुरू महाराज जी के इस सम्बंध में गुरू ग्रन्थ साहिब जी की बाणी में आते हैं। गुरू की प्राप्ति बिना सौभाग्य के नहीं हुआ करती।

ऐसी एक कथा की ओर महापुरुष संकेत किया करते हैं जिसमें बताया जाता है कि एक बालक वेद व्यास जी का पुत्र था जिसका नाम शुकदेव था, उसे जन्मते ही लगन लगी हुई थी। ऐसा महापुरुषों का मत है कि उसने पिछले जन्म में शिवजी महाराज जी के मुख से उस समय अमर कथा सुनी थी जब वह अमरनाथ की बर्फीली गुफा में पार्वती जी को यह कथा सुनाकर अमर करना चाहते थे। इस तोते ने भी इस कथा को सुना। यह नहीं कहा जा सकता कि इस ने अमरकथा को समझा, पर सुना था। सुनने का महत्व भी अपना विशेष स्थान रखता है जिसका महान महत्व है। इसे मानस देही प्राप्त हो गई और वेद व्यास जी के पुत्र के रूप में जन्म लिया। जब यह अभी किशोर अवस्था में था तो इसने पिता जी से आज्ञा लेकर तप करने के इरादे से जंगलों में जहाँ साधु तप किया करते थे, चला गया। भाई गुरदास जी इसके बारे में इस प्रकार फ़रमान करते हैं -

बारह वरहे गरभासि वसि जमदे ही सुकि लई उदासी।
माइआ विचि अतीत होइ मन हठ बुधि न बंदि खलासी।
पिआ बिआस परबोधिआ गुर करि जनक सहज अभिआसी।
तजि दुरमति गुरमति लई सिर धरि जूठि मिली साबासी।
गुर उपदेसु अवेसु करि गरबि निवारि जगति गुरदासी।
पैरी पै पाखाक होइ गुरमति भाउ भगति परगासी।

गुरमुखि सुख फलु सहज निवासी॥ भाई गुरदास जी, वार 25/10

शुकदेव जी ने 36 वर्ष घोर तपस्या की। यहाँ तक की समाधि में लीन होकर एक रस बैठे रहते थे। इस समाधि के समय इनकी जटाओं में पक्षी अण्डे देकर अपने बच्चे पाला पोसा करते थे। जब काफी समय तप करते हुये बीत गया तो यह महापुरुषों से सुना करते थे कि प्रभु प्राप्ति के बिना मन में पूर्ण शान्ति तथा रस नहीं आता है पर इनके अन्दर तमोगुणी अंश तप से बढ़ गया जिससे यह क्रोध की आंधी में भी अशान्त रहा करते थे। इस भेद को जानने के लिये यह अपने पिता जी के पास आये और सारी बात उन्हें बता दी। तब उन्होंने इसे कहा , ''बेटा! जब तक तुझे समरथ गुरू की प्राप्ति नहीं होती तब तक तू परम शान्ति को अनुभव नहीं कर सकता क्योंकि समरथ गुरू के बिना कोई भी इस परम चेतन शुद्ध, ब्रह्म की अवस्था में लीन नहीं रह सकता। इसने यह बात सुन कर अपने पिता जी से कहा कि पिता जी! ''आपके अनेक शिष्य हैं आप स्वंय ही मेरे पर कृपा करो, मैं कहाँ समरथ गुरू ढूढ़ता फिरूँगा।'' तब उन्होंने कहा कि, ''बेटा! पुत्र का रिश्ता पिता के साथ और हुआ करता है। शिष्य का रिश्ता गुरू के साथ इसके बिल्कुल विपरीत हुआ करता है। गुरू पहले अपने शिष्य को मानसिक तौर पर मार देता है फिर उसे जिन्दा करता है। मैं तेरा पिता हूँ, तेरी भावना मेरे साथ पिता और पुत्र के सम्बंध जैसी है इसलिये मेरा दिया गया उपदेश तेरे अन्दर फलीभूत नहीं होगा।'' शुकदेव के बार-बार कहने पर उन्होंने महावाक्यों का उपदेश दे दिया। शुकदेव ने कुछ समय उन महावाक्यों को विचारने में बिता दिया पर उसके मन में शान्ति न आई। वह फिर अपने पिता के पास आया और कहने लगा, ''पिता जी! मैं जैसे पहले था वैसा ही अब हूँ, मुझ पर इन महावाक्यों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। मैं तो यह पहले से ही जानता हूँ फिर मुझे पूछने का भी कोई लाभ नहीं होना था। पिता जी मैं अशान्त हूँ। कृपा करके मुझे सीधे रास्ते पर लगा दो।'' तब उस समय उसके पिता जी ने कहा कि, ''शुकदेव! तू और तप कर क्योंकि तू उपदेश का अधिकारी नहीं है। मैंने तुझे पहले भी कहा था कि तू मुझ पर गुरू भावना नहीं ला सकता, इसलिये मैं तुझे ज्ञान नहीं करवा सकता। क्योंकि ज्ञान करवाने से पहले गुरू अपने शिष्य को मानसिक तौर पर मार देता है और फिर अपने उपदेश द्वारा उसे सुरजीत करता है, वह सख्त कसौटी पर उतारता है। जब तक गुरू को यह निश्चय नहीं हो जाता कि यह गुरू उपदेश का अधिकारी है तब तक वह सत्पुरुष कभी भी गुरू उपदेश नहीं देते। पहले गुरू में दयालुता की लहर उठती है, उसका जबरदस्त तूफान सेवक की ओर चलता है जिसके द्वारा अपने सेवक की तमाम बुरी मान्यताओं को

बहा देता है तथा फिर गुरू उपदेश किया करता है। यह एक आध्यात्मिक क्रिया होती है जिसे केवल समरथ गुरू ही जानता है। इस प्रकार वचन सुनाकर शुकदेव को दोबारा तप करने के लिये भेज दिया। शुकदेव ने फिर बहुत कठोर तप किया, अपने पिता द्वारा दिये गये महावचनों पर भी विचार करता रहा पर चित्त को बिल्कुल भी शान्ति न आई। कारण यह था कि उसकी आन्तरिक बख्शीश करने वाली तार अपने पिता के रूप में गुरू के साथ भिक्षुक की तरह नहीं जुड़ती थी। उसकी हउमै उसके रास्ते में बड़ी भारी रूकावट थी। समरथ गुरू का पहला फ़रमान ही यह होता है –

पहिला मरणु कबूलि जीवण की छडि आस।
होहु सभना की रेणुका तउ आउ हमारै पासि॥ पृष्ठ – 1102

ऐसा गुरू कसौटियाँ लगा-लगा कर सेवक को बिल्कुल इस प्रकार शुद्ध करता है जैसे बार-बार अग्नि का ताप दे देकर सोने को शुद्ध करके 22 कैरेट का बनाया जाता है। पिता अपने पुत्र के साथ ऐसा कभी नहीं कर सकता। इसलिये आम परिस्थितियों में पिता के लिए बड़ी मज़बूरी है कि वह पुत्र को ज्ञान करवा सके। धुर दरगाह से आए हुये जिनके अन्दर बत्ती तथा तेल के साथ दीपक भरा हुआ है उन्हें समरथ गुरू अपनी ज्योति द्वारा लाग लगा कर जलते दीपक की तरह उस दीपक को प्रज्वलित कर सकता है। यह क्रिया किसी विशेष हालत में हुआ करती है जहाँ पुत्र पूरी तरह मुरीद बन कर अपने पिता, समरथ गुरू रूप से कुछ प्राप्त करना चाहता हो। शुकदेव की हालत कुछ और तरह की थी वह अपने पिता को केवल विद्वान पिता ही समझता था क्योंकि उसने स्वंय तप द्वारा अनेक शक्तियाँ प्राप्त कर ली थीं और काफी लम्बे-लम्बे समय तक समाधि में लीन हो जाया करता था। जब वह चलता था उसके केश जटाओं के रूप में धरती के साथ लगते रहते थे और अपनी करनी कमाई पर उसे अभिमान था। सो इसलिए पिता द्वारा दिया गया गुरू उपदेश सफल न हुआ। जब काफी समय तक तप करने के बाद शुकदेव फिर आया तो व्यास जी ने कहा, "बेटा! तू समरथ गुरू की तलाश कर, उसके बिना तेरे अन्दर ज्ञान का दीपक प्रकाशित नहीं होगा। उसने कहा, "पिता जी! मेरी इतनी सहायता तो कर दो कि मुझे किसी समरथ गुरू के बारे में तो बता दो।" तब वेद व्यास जी ने अपने पुत्र को कहा कि, "बेटा! इस समय भारत वर्ष में समर्थ महापुरुष जिसने माया को पूरी तरह पराजित कर दिया है, वह मिथिलापुरी में राजा जनक के नाम से राज्य कर रहे हैं। तुझे उनके इलावा और कोई भी ज्ञान देने में समर्थ नहीं है।" उसने उसी समय उत्तर दिया कि, "पिता जी! मेरे साथ कोई मखौल तो नहीं कर रहे, कोई मज़ाक,

कोई मसखरी तो नहीं कर रहे हो। मैं आपसे सचमुच किसी समरथ गुरू के बारे में पूछने की इच्छा कर रहा हूँ। उसने आगे कहा, ''पिता जी! राजा जनक राजा भी है, गृहस्थी भी है, राज में अनेक झंझट हुआ करते हैं। गृहस्थ में मन वासनाओं और विषय भोगों के बगैर कभी भी खाली नहीं रह सकता। मैं विरक्त हूँ, फिर मैंने घोर तपस्या की हुई है, मैं आन्तरिक सारे चक्र भेद कर गगन मण्डल तक पहुँच चुका हूँ मुझे एक गृहस्थी कैसे उपदेश दे सकेगा, मेरी तो उस पर भावना ही नहीं बन सकेगी। यह बात सुनकर व्यास जी ने कहा कि, ''बेटा! हम तुझे समरथ गुरू के बारे में बता रहे हैं। केवल एक वही हैं जो तुम्हें गुरू दीक्षा दे सकते हैं। हमारी नज़रों में इस समय और कोई नहीं है सिवाय उनके।'' पिता से आज्ञा लेकर शुकदेव मिथिलापुरी को चल पड़ता है। शनैः शनैः सफर करता हुआ राजा जनक के दरबार में पहुँच कर सिंह द्वार पर जाकर चौबदार को कहता है कि राजा जनक को जाकर कह दो कि एक विरक्त साधु आपसे मिलने आया है। चौबदार ने राजा जनक को बता दिया। राजा जनक ने सम्मान पूर्वक बुलाया और उसे आसन दिया और योग शक्ति द्वारा उसके आने का कारण भी मन में भांप लिया और साथ ही यह भी देख लिया कि अभी यह गुरू उपदेश का अधिकारी नहीं है। उस समय शुकदेव ने राजा जनक के राजसी रहन सहन तथा कारोबार देख कर अन्दर तर्क पैदा कर ली कि कौन कहता है कि यह कोई ज्ञानवान पुरूष है इसने तो मेरे सामने सौ आदमियों को फांसी देने की सजा दे दी है, मैं इसे गुरू नहीं बना सकता। राजा जनक समझ गये और सेवा करने के उपरान्त कहा कि, ''ऋषि जी! कोई और सेवा मेरे योग्य हो तो बताईये।'' यह बिना कुछ कहे वहाँ से उठकर चल पड़ा और मन में बार-बार अभिमान के साथ कह रहा है कि कहाँ मेरी तपस्या और कहाँ यह राज्य पर बैठने वाला हिंसक जिसने सौ मनुष्यों को फांसी का हुक्म दे दिया है। इस प्रकार के विचारों से ग्रस्त अभिमान के साथ पूरी तरह भर गया।

ऐसी हालत में जब सोचता चला जा रहा है तो रास्ते में नारद जी मिल गये। उन्होंने कहा कि, ''मुनि जी! आप किधर से पधार रहे हैं?'' इसने अपने मन की बात बता दी और कहा कि, ''नारद मुनि जी! मैं एक राजा और गृहस्थी तथा हिंसक को अपना गुरू कैसे बना सकता हूँ। मेरे पिता बार-बार यही आदेश दे रहे हैं कि आज संसार में यदि तुझे कोई दीक्षा दे सकता है तो वह केवल राजा जनक ही है। तब उस समय नारद जी उसका वचन सुनकर बहुत हैरान रह गये और वचन किया कि, ''शुकदेव मुनि! तुझे हम एक आध्यात्मवाद की विचार बताते हैं कि ब्रह्मज्ञानी महापुरुष पर तर्क करके छः कलाएं वैराग की नष्ट हो जाया करती हैं। राजा जनक

पूर्ण रूप में ब्रह्मज्ञानी हैं। इसके बारे में गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं –

गुरमुखि जनकि हरिनामि लिव लाई।
गुरमुखि बसिसटि हरि उपदेसु सुणाई। पृष्ठ - 591

शुकदेव जी! आप राजा जनक की महानता को नहीं पहचान सके। वह गृहस्थी तथा राजा होता हुआ तथा राज नियमों के अनुसार राज दण्ड देता हुआ बिल्कुल ही निर्लेप है, माया उसके आस पास भी नहीं फटकती। भाई गुरदास जी बताते हैं –

भगतु वडा राजा जनकु है गुरमुखि माइआ विचि उदासी।
देव लोक नो चलिआ गण गंधरबु सभा सुखवासी।
जमपुरि गइआ पुकार सुणि विललावनि जीअ नरक निवासी।
धरमराइ नो आखिओनु सभना दी करि बंद खलासी।
करे बेनती धरमराइ हउ सेवकु ठाकुरु अबिनासी।
गहिणे धरिओनु इकु नाउ पापा नालि करै निरजासी।
पासंगि पापु न पुजनी गुरमुखि नाउ अतुल न तुलासी।
नरकहु छुटे जीअ जंत कटी गलहुँ सिलक जम फासी।
मुकति जुगति नावै की दासी॥ भाई गुरदास जी, वार 10/5

उनकी महिमा को आप नहीं जान सकते। देव लोक के देवता यह कामना करते हैं कि कितना अच्छा हो कि राजा जनक हमारी पुरियों में पधारें और उनके भवनों को पवित्र करें –

नामु धिआइनि साजना जनम पदारथु जीति।
नानक धरम ऐसे चवहि कीतो भवनु पुनीत॥ पृष्ठ - 1425

ब्रह्मज्ञानी की धूलि के लिये प्रमुख देवता भी लालसा कर रहे हैं जैसा कि फ़रमान है –

ब्रहमगिआनी कउ खोजहि महेसुर।
नानक ब्रहमगिआनी आपि परमेसुर॥ पृष्ठ - 273

इतने विचार बताने के बाद नारद जी ने कहा कि, ''शुकदेव जी! आप तर्क करके अपना ही नुक्सान कर रहे हो। एक कला वैराग की कई जन्मों के दुखों के बाद प्राप्त होती है, आप कई जन्मों की प्राप्त की गई वैराग अवस्था को ऐसे ही बर्बाद कर रहे हो।'' पर शुकदेव जी ने कोई ध्यान न दिया। तब नारद जी ने थोड़ा आगे जाकर अपना शरीर एक बूढ़े प्राणी का बना लिया। सामने एक नदी बह रही थी जिसमें से पार होकर दूसरी ओर पहुँचा जाता था। उसमें टोकरी से बरेती में से रेता उठा-उठा कर फैंकने लग पड़े। शुकदेव आराम करने के लिये पास ही वृक्ष के नीचे बैठा यह सारा कौतुक देख रहा था। उसने पूछा कि, ''ऐ वृद्ध पुरूष! तू

यह रेता नदी में क्यों फैंक रहा हैं? मैं तुझे एक घंटे से देख रहा हूँ।'' तब नारद जी ने कहा कि मैंने नदी से पार जाना है, मुझे नदी के पानी से डर लगता है कि कहीं मुझे बहा कर ही न ले जाए। मैं पुल बनाकर जाना चाहता हूँ।'' शुकदेव ने कहा, ''मुझे तू पूरा पागल दिखाई देता हैं। कभी नदी में रेता फैंकने से भी पुल बन सकता है? वह तो बह जाता है।'' इसके उत्तर में वृद्ध ने कहा कि, ''शुकदेव जी! मैंने तो अपनी एक घंटे की मेहनत ही बेकार की है पर तूने तो दर्जनों जन्मों से प्राप्त वैराग नष्ट कर लिया। तू राजा जनक पर तर्क कर रहा है जो पूर्ण ब्रह्मज्ञानी हैं और महापुरुषों पर तर्क करने का फल छह कलाएं वैराग की नष्ट करना होता है। मैं तो मूर्ख नहीं; यदि मैं तुझे मूर्ख कह दूँ उसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं।'' शुकदेव गम्भीर सोच में पड़ गया और कहने लगा कि ''तू कौन है जो मेरी आन्तरिक अवस्था को जानता है।'' तब नारद जी ने उसे अपना असली रूप दिखाकर तर्क करने से वर्जित किया।

सो इस प्रकार शुकदेव का समरथ गुरू पर निश्चय नहीं बन रहा था। घर गया तो पिता ने कहा कि तेरी अमानत तेरा ज्ञान पदार्थ राजा जनक के पास सुरक्षित है। जो कुछ भी तुझे प्राप्त होना है वहीं से ही मिलना है, तू श्रद्धा धारण कर तथा और तप कर ताकि तर्क रूपी मैल तेरे अन्दर से समाप्त हो जाये। काफी समय तप करने के बाद मन में कोई शान्ति न आई तथा फिर कुछ श्रद्धा भावना धारण करके राजा जनक जी पर विश्वास करके उनके दरबार में पहुँचा।

राजा जनक को महलों में खबर की गई कि एक विरक्त साधु आप जी से मिलने के लिये समय माँग रहा है। राजा जनक जी ने योग बल द्वारा देखा कि शुकदेव मुनि जो पहले भी आया था पर राज धर्म के नियमों अनुसार राजा जनक के न्याय को देखकर इसने तर्क किया था कि यह गृहस्थी राजा है, इसकी वृत्ति हिंसक है, इसने सौ मनुष्यों को फांसी की सजा दी है, यह ज्ञानवान नहीं हो सकता। चाहे राजा जनक आप बिल्कुल पूर्णतया निर्लेप थे जो कुछ उसने किया था वह राज नियमों के अनुसार दोषियों को मृत्यु दण्ड दे रहा था क्योंकि उन्होंने डाके मारे थे। यह शुकदेव, नारद जी द्वारा समझाया हुआ तथा पिता के कहने पर राजा जनक जी के पास दूसरी बार आया था। उस समय राजा जनक जी ने इसकी परख करने के लिए कि यह राम पदार्थ का अधिकारी भी है या नहीं, परखने के लिये ड्राईंगरूम में बुलाया तथा शुकदेव जी ने अपनी चिप्पी तथा दो गज़ का परना इस महल के पहले कमरे में ही रख दिया जहाँ समान रख कर राजा को मिला जाता था। आप विरक्त थे सिर्फ एक

कपड़ा धड़ के चारों ओर बान्धा करते थे। विरक्त उसे कहते हैं जिसे माया से पूरी तरह छुटकारा मिल जाये और उसकी किसी भी वस्तु के साथ ममता न हो। राजा जनक के कमरे में पहुँचते ही मिलने वाले स्थान पर बैठ गया। कमरे की छतों, दीवारों को देखने लगा तो क्या देखता है कि एक कच्चे से धागे के साथ लटकती हुई बहुत तेज़ धार की तलवार हिल रही है और मन में विचार आया कि यदि यह धागा टूट गया तो वह शस्त्र मेरे सिर में लग कर बहुत घातक सिद्ध हो सकता है और यदि मेरे शरीर में कहीं लगा तो कोई अंग भी कट सकता है या बहुत गहरा घाव भी कर सकता है। इस प्रकार हंगता और ममता में ग्रसित शुकदेव राजा जनक जी की प्रतीक्षा कर रहा है। जब राजा जनक जी आए तो नियमानुसार इसने आदर के लिये खड़ा होना आवश्यक समझा। राजा जनक जी ने संकेत करके बैठ जाने की अनुमति दे दी। जब राजा जनक जी ने परिचय देने को कहा तो इसने कहा कि मैं विश्व प्रसिद्ध महान ऋषि, ज्ञानियों के सिरमौर वेद व्यास जी का पुत्र हूँ, माता के गर्भ में रहते हुये मैंने बहुत से जन्म ऐसे देखे जिन्हें याद करके मैं अब भी भयभीत हो उठता हूँ, मेरे जन्म के समय प्रभु की कृपा से मुझ पर माया का प्रभाव न पड़ा। मैं किशोर अवस्था में ही तप करने के लिये घर से चला गया मेरे पिता व्यास जी मेरे मोह वश हुये मुझे वापिस लेने के लिये आये तो मैंने वृक्षों के बीच में छिपते हुये कहा कि इस संसार में न कोई किसी का पुत्र है, न कोई किसी का पिता है यह संसार संयोग वश इकट्ठा हो जाता है और वियोग वश बिछुड़ जाता है। पिता-पुत्र, स्त्री, बहन-भाई, मामा, चाचा, ताऊ, भतीजे, भानजे ये सब रिश्ते माया के कारण बन्धित हैं। जीव संसार में अकेला ही आता है और अपना समय पूरा करके अकेला ही चला जाता है। सो मैंने अपने पिता व्यास जी को ऐसा कह कर वापिस भेज दिया। मैंने दिगम्बर रहकर 36 वर्ष तक घोर तपस्या की। मेरी जटायें बढ़कर इतनी लम्बी हो गईं कि चलते समय धरती पर लगती रहती थीं और मैं उन्हें सम्भाल कर चलता था। मैं दिगम्बर रहता था, किसी मौसम में भी वस्त्र नहीं पहनता था, इन्हीं जटाओं से ही वस्त्र का काम लिया करता था ज्यों-ज्यों मैंने तपस्या की मेरे मन की अशान्ति कम होने की बजाय बढ़ती ही गई, वापिस मैं अपने पिता के पास आया और उन्हें अपनी इस अवस्था के बारे में जानकारी दी। मेरे पिता जी ने मुझे बताया कि भक्ति तथा ज्ञान के बिना मन शान्त नहीं होता। मैंने उन्हें उपदेश देने के लिये प्रार्थना की। उन्होंने कहा कि शुकदेव! तेरा मेरा पिता पुत्र का सम्बन्ध है, गुरू शिष्य का सम्बन्ध और होता है। तेरे मन में मेरी भावना सदा ही पिता की बनी रहती है। मेरे वचन तेरे अज्ञान का नाश नहीं कर

सकते क्योंकि तेरे मन में पितृ भावना होने के कारण महावाक्यों का प्रभाव नहीं होगा। उन्होंने मुझे आप जी का पता बताया जब मैं आप जी के पास आया उस समय आप कचहरी में न्याय की कुर्सी पर विराजमान थे, आप जी ने सौ मनुष्यों को फांसी की आज्ञा दी, मेरे मन में तर्क पैदा हुई कि मैं विरक्त हूँ, यह राजा भी है तथा गृहस्थी भी और इसका कर्म हिंसक है। यह तर्क मन में लेकर मैं वापिस चला गया। रास्ते में मुझे नारद मुनि ने इस तर्क से वृजत किया मैंने फिर जाकर पुनः तप किया। मेरे मन में से तर्क की मैल साफ हो गई। मेरे पिता ने मुझे प्रेरणा दी कि राजा जनक के पास पूरी श्रद्धा के साथ जाओ। सो इस प्रेरणावश होकर मैं आपकी चरण शरण आया हूँ कृपा करके मुझे ब्रह्मज्ञान का उपदेश दीजिये ताकि मेरा मन परम शान्त हो जाये।

उस समय राजा जनक जी ने परमार्थ के वचन करने आरम्भ किये और इसकी निष्ठा को परखने के लिये अपने योग बल द्वारा महलों में आग लगवा दी शुकदेव मुनि वचन सुनता, धागे द्वारा ऊपर लटकती हुई तलवार की ओर बार-बार देखता रहता था तथा डरता भी था कि कहीं मेरे शरीर को यह तलवार नीचे गिरकर कोई कष्ट न पहुँचाए, वचन सुनने के लिए इसकी वृत्ति पूर्ण रूप में एकाग्र नहीं हो रही थी। चौबदार ने राजा जनक को समाचार दिया कि बहुत भयंकर आग लगी हुई है तथा बहुत ही नुकसान कर रही है। राजा जनक जी ने संक्षेप रूप में इतना ही कहा कि इसे बुझा दिया जाये। सेवादार बार-बार आते हैं तथा एक एक मिनट की खबर देते रहते हैं, आखिरी खबर दी की अस्तबल (घोड़े बान्धने की जगह) जल गये हैं तथा बहुत कीमती कीमती चीज़ें जल रही हैं। वह आग जहाँ आप बैठे हैं वहाँ मुख्य द्वार पर जल्दी ही पहुँचने वाली है, आप यह जगह छोड़ कर निश्चित आज्ञा हमें दीजिये, वैसे आग बुझाने के लिये पूरा पूरा प्रयास जारी है। इतनी बात सुनते ही शुकदेव के मन में फुरना आया कि मुख्य द्वार पर तो मेरी चिप्पी तथा परना रखा है। आज्ञा लिये बिना वह एकदम अपने आसन से उठा तथा जाकर चिप्पी तथा परना उठा लिया। तभी राजा जनक भी वहाँ पहुँच गया और कहने लगे, "शुकदेव! तू अभी ज्ञान पदार्थ हासिल करने का अधिकारी नहीं हैं तेरे अन्दर यह हंगता भी है कि मैं दिगम्बर हूँ, यह राजा गृहस्थी है तथा बहुत कीमती वस्त्र पहने हुये हैं, हीरे मोतियों की मालाएं गले में डाली हुई हैं, हीरों से जड़ित, झिलमिल झिलमिल करती बहुत बहुमूल्य कलगी भी लगाई हुई है पर तेरा कार्य व्यवहार यह साबित करता है तू विरक्त नहीं है और गृहस्थी है।" राजा जनक के ये वचन सुनकर शुकदेव बड़ा हैरान हुआ, इस हैरानी को भंग करते हुये राजा जनक ने कहा कि शुकदेव मुनि! तूने काफी लम्बे

समय तक तप किया है जिसके फलस्वरूप तेरे अन्दर बहुत पकड़ (शक्ति) है, वैराग का अस्तित्व है। तप करने से तुझे शक्तियों की प्राप्ति हो गई है, उनका अभिमान तेरे हृदय की सूझ को आच्छादित कर रहा है तथा तू इन पदार्थों की जकड़ में फंसा हुआ है कि तू परमार्थक वचनों को छोड़कर आग के बारे में सुनकर एकदम दौड़ा हुआ आया है। देख! मैं राजा होता हुआ लाखों रूपये के नुक्सान की सूचनायें सुनता हुआ तुझे अचल बैठा परमार्थक वचन सुना रहा था पर तू बार-बार छत से लटकी तलवार की ओर इस भावना से देख रहा था कि कहीं मेरे शरीर पर गिर कर मुझे कोई कष्ट न पहुँचा दे। तेरे अन्दर से अभी भी देह हंगता की मैल बिल्कुल ही नहीं निकली; तेरे दिगम्बर रहने से देह हंगता में कोई अन्तर नहीं आया। तेरा सब कुछ त्याग देना पर एक कौड़ी की चीज़ में ममता वश होकर मोहित हो जाना यह प्रकट करता है कि तू अति मायाधारी मनुष्य है। माया की मैल तेरे अन्तसकरण में फैलकर तेरे ज्ञान को पूरी तरह से आच्छादित कर रही है इसलिये तू ज्ञान का किसी प्रकार भी अधिकारी नहीं है।

गुरू महाराज जी गुरू ग्रन्थ साहिब जी की बाणी में माया का स्वरूप बताते हुये फ़रमान करते हैं -

एह माइआ जितु हरि विसरै मोहु उपजै भाउ दूजा लाइआ॥

पृष्ठ - 921

या -

इन्हि माइआ जगदीस गुसाई तुम्हरे चरन बिसारे।
किंचत प्रीति न उपजै जन कउ जन कहा करहि बेचारे॥

पृष्ठ - 957

और अधिकार के बारे में वर्णन करते हुये बाणी में फ़रमान है कि -

राम पदारथु पाइकै कबीरा गांठि न खोल्ह।
नही पटणु नही पारखू नही गाहकु नही मोलु॥ पृष्ठ - 1365

जा, जाकर तपस्या कर और अपने मन की मैलों को दूर करने का यत्न कर, फिर देखेंगे कि तू राम पदार्थ पाने का अधिकारी भी है? इतना कहकर शुकदेव जी को वापिस भेज दिया। इसने आकर फिर घोर तप किया तथा माया के रूपों को समझ कर इसका परित्याग किया। अपने पिता के पास आकर आध्यात्मिक वचन श्रवण किये, उन्होंने कहा कि, ‘‘बेटा! गुरू के पास जाने का जो नियमित विधान है वह यह है कि अपनी हंगता और ममता को पूरी तरह से मार कर जाना पड़ता है। गुरू महाराज जी ने इस सम्बंध में फ़रमान किया है -

पहिला मरणु कबूलि जीवण की छडि आस।
होहु सभना की रेणुका तउ आउ हमारै पासि॥ पृष्ठ - 1102

जउ तउ प्रेम खेलण का चाउ। सिरु धरि तली गली मेरी आउ।
इतु मारगि पैरु धरीजै। सिरु दीजै काणि न कीजै॥ पृष्ठ - 1412

इस प्रकार भाई गुरदास जी ने और स्पष्ट करते हुये फरमाया है कि मुरीद को मुर्दा बनना पड़ता है, बातों से मुरीद नहीं बना करते सारी शक्तियाँ होते हुये भी धैर्य धारण करना पड़ता है। सिदक में रहना पड़ता है तथा किसी समय भी शक्ति का प्रयोग नहीं करना पड़ता, इसे सन्तोष (सब्र) कहते हैं। सिख अपने गुरू के साथ पूरा सिदकी होकर जुड़ा रहे और उसे साक्षात प्रभु समझता हो, गुरू तथा प्रभु को दो न समझे और मन राजा की अजेय शक्तियों के साथ जूझने वाला हो। इसके अलावा गुरू से डरता भी हो, गुलाम बनकर रहने वाला हो, अपना तन, मन, धन गुरू के अर्पण करके सेवा करने वाला हो। इतने गुण हों तो पीर का मुरीद बन सकता है, यदि अपने अन्दर देह हंगता और ममता हो और गुरू तथा परमेश्वर को दो समझे, ऐसी हालत में वह मुरीद या सिख नहीं बन सकता। मुरीद की तीन अवस्थायें हुआ करती हैं -

मुरीद मुरीद-ए-सादिक मुरीद-ए-फिदा

सिक्ख सनमुख सिक्ख मरजीवड़ा सिक्ख

ब्रह्मज्ञान अमृत हासिल करने के लिये जिज्ञासु को बहुत कठिन संघर्ष करना पड़ता है तथा गुरू द्वारा ली जाने वाली परीक्षा में 100 प्रतिशत नम्बर लेकर पास होना पड़ता है। गुरू द्वारा लगाई गई कसौटी में पूर्ण रूप से प्रसन्न रहना पड़ता है, उसमें किसी शिकायत की कोई गुजांइश नहीं होती चाहे भाई मंझ की तरह महान दुखी अवस्था में से गुजरते हुये कठिन परिश्रम करना पड़ता हो।

इस प्रकार शुकदेव मुनि जनक जी का आदेश मानकर वापिस आ गया तथा काफी समय तक हंगता और ममता को हृदय से दूर करने के लिये एक सख्त परिश्रम करता रहा। जब इसके हृदय में पूर्ण नम्रता और श्रद्धा पैदा हुई फिर यह अपने पिता का आर्शीवाद प्राप्त करके राजा जनक जी के महलों के निकट आ पहुँचा। राजा जनक जी ने पहले ही आदेश किया हुआ था कि शुकदेव नाम का मुनि थोड़ी देर में आ जाने वाला है, उसका पूरा अनादर करना है, धक्के मारकर निकाल देना है, और मेरे साथ मिलने की आज्ञा नहीं देनी।

राजा जनक के गृह में एक बहुत बड़ा यज्ञ हो रहा था। सारे भारत वर्ष के ऋषि-मुनि, विद्वान, पण्डित पहुँचे हुये थे। राजा जनक जी अपने हाथों द्वारा भोजन परोस रहे थे तथा भोजन खा लेने के उपरान्त जूठी पत्तलें आप उठाकर महलों पर चढ़कर पीछे ओर नीचे फैंक रहे थे। वहाँ शुकदेव मुनि बैठा था उस पर जूठी पत्तलें गिर रही थीं। उस जूठ में जूठी दाल, सब्जी चावल आदि के अंश चिपके हुये थे, वहाँ इतनी पत्तलें फैंकी गई कि नीचे बैठा शुकदेव मुनि पूरी तरह से दब गया, अपने हृदय की पूरी श्रद्धा भावना राजा जनक की सर्वज्ञता पर दृढ़ रखी। जब वह इस परीक्षा में सफल रहा तो उसे पत्तलों के नीचे से निकाला गया, स्नान आदि करवा कर उसके हृदय की भावना को परखा तथा उसकी अडोलता को देखा उसका मन पूरी तरह शान्त था, क्रोध तथा निरादर के प्रभाव का कोई अंश उसके मन में चक्कर नहीं काट रहा था -

जूठनजूठि पई सिर ऊपरि खिनु मनूआ तिलु न डुलावैगो॥

पृष्ठ - 1309

उस समय राजा जनक ने कहा कि अब बता तेरे आने का क्या मनोरथ था। शुकदेव ने अति विनम्रता सहित प्रार्थना की और कहा कि हे महाप्रभु! मैं एक भटकता जीव तेरी शरण में आया हूँ। मेरा मन पूरी तरह से अशान्त है, कृपा करो, मुझे उस पद में पहुँचा दो, जिसे निह-केवल परम शान्त पद कहते हैं जिसे प्राप्त करके पुनः आना जाना जन्म-मरण समाप्त हो जाया करता है। मुझे वह दीक्षा दो जिसे प्राप्त करके मुझे इस संसार में एक प्रभु ही साक्षात्कार प्रतीत हो, मेरी द्वैत का पूरी तरह से नाश हो जाये, मेरे अन्दर से 'मैं' भाव पूर्ण रूप से अलोप हो जाये, मैं अपने तत्व स्वरूप को पहचान कर अपने उच्च पद को दृढ़ करके जीवन व्यतीत करूँ। यह सुनकर राजा जनक जी ने कहा कि, "शुकदेव! इस अति उत्तम पदवी को प्राप्त करने से पहले तुझे एक परीक्षा देनी पड़ेगी वह यह है कि तू अपनी हथेली पर तेल से भरा हुआ छन्ना (खुला बर्तन) लेकर सारे शहर की परिक्रमा करेगा और बिना किसी एक बूँद के गिराये तू मेरे पास वापिस आयेगा तो समझ लेना कि तू इस परीक्षा में सफल हो गया पर यदि इसके विपरीत एक भी बूँद गिर गई तो तुझे उसी समय मृत्यु दण्ड भुगतना पड़ेगा। नंगी तलवारों वाले तेरे पीछे पीछे चल रहे होंगे और उन्हें हुक्म होगा कि यदि एक भी बूँद तेल की गिरे तो शुकदेव को उसी समय मृत्यु दण्ड दे दिया जाये। शुकदेव अपनी लालसा में पूर्ण रूप में दृढ़ था, उसके मन में मौत का कोई भय नहीं था बल्कि उसके मन में बड़ा चाव था कि अब मुझे वह उपदेश मिल जायेगा जिसे प्राप्त करके मैं परम पद को प्राप्त कर लूँगा। महाराजा जनक ने सारे शहर की परिक्रमा के साथ-

साथ अनेक प्रकार के राग, रंग, नाच, गाने, मनमोहनी वस्तुओं का प्रबन्ध कर दिया ताकि शुकदेव की रूचि इनकी ओर लग जाये। शुकदेव में पूर्ण लगन थी वह अपने ध्यान में इस अति कठिन परीक्षा को पास करने के लिये हथेली पर तेल का भरा हुआ बर्तन उठाये अडोल चलता जा रहा था और उसे यह ध्यान नहीं था कि Ring Road (चक्राकार सड़क) के चारों ओर कोई नाच गाने हो रहे हैं या मनमोहिनी वस्तुएं रखी हुई हैं, वह उसी तरह से दृढ़ता के साथ चलता हुआ इस परीक्षा में से भी पूरी तरह सफलता प्राप्त कर गया। उस समय राजा जनक जी ने इसे पूर्ण अधिकारी समझते हुये सामने बिठाकर महावाक्यों को उच्चारण करते हुये इसके जीव भाव को पूर्ण रूप से तोड़ दिया। हउमै की दीवार टूट गई, हंगता और ममता दोनों ही उड़ानें भर कर चली गईं, अब रह गया साक्षात ब्रह्म दर्शन। छोटा सा अपनत्व (आपा) परम अस्तित्व में समा गया, समुद्र की लहर समुद्र में ही लीन हो गई। अन्धेरे में रस्सी को साँप समझकर भ्रम की क्रिया में ग्रसित, प्रकाश होने पर समझ गया कि यह रस्सी कभी भी साँप नहीं थी, यह तो केवल रस्सी ही थी, केवल प्रकाश के अनास्तित्व के कारण इसका सर्प रूप ही समझ में आता रहा। प्रकाश ने सर्प का भ्रम दूर कर दिया तथा रस्सी की वास्तविकता को प्रकट कर दिया। शुकदेव पूर्ण आनन्द में महान सुख अनुभव करता हुआ अपने ज्ञान स्वरूप को पहचान कर परम सुखी हो गया।

सो इस प्रकार समरथ गुरू की प्राप्ति भाग्य के बिना नहीं हुआ करती और गुरू से परम पदार्थ प्राप्त करने के लिये लगी हुई कसौटी में से पास होना पड़ता है। गुरू के बिना ज्ञान नहीं हुआ करता, गुरबाणी में फ़रमान है –

भाई रे गुर बिनु गिआनु न होइ।
पूछहु ब्रहमे नारदै बेदबिआसै कोइ॥ *पृष्ठ - 59*

गुरू के ज्ञान के बिना मन का अन्धेरा नहीं मिटा करता जैसा कि फ़रमान है –

जे सउ चंदा उगवहि सूरज चड़हि हजार।
एते चानण होदिआं गुर बिनु घोर अंधार॥ *पृष्ठ - 463*

कुंभे बधा जलु रहै जल बिनु कुंभु न होइ।
गिआन का बधा मनु रहै गुर बिनु गिआनु न होइ॥ *पृष्ठ - 469*

उपजै गिआनु दुरमति छीजै। अंम्रित रसि गगनंतरि भीजै।
एसु कला जो जाणै भेउ। भेटै तासु परम गुरदेउ॥ *पृष्ठ - 974*

कबीर मनु सीतलु भइआ पाइआ ब्रहम गिआनु।
जिनि जुआला जगु जारिआ सु जन के उदक समानि॥

पृष्ठ - 1373

अज्ञान के हट जाने से जो रतन पदार्थ रूपी परमात्मा इस शरीर में घट-घट में व्याप्त है उसे प्राप्त कर लिया तथा हउमै रोग का पूरी तरह से खातमा हो गया -

बलिआ गुरगिआनु अंधेरा बिनसिआ हरि रतनु पदारथु लाधा।
हउमै रोगु गइआ दुखु लाथा। आपु आपै गुरमति खाधा।

पृष्ठ - 78

गुरपरसादि रतनु हरि लाभै मिटै अगिआनु होइ उजीआरा॥

पृष्ठ - 353

सो अगम अगोचर मार्ग पर चलने के लिये समरथ गुरू की आवश्यकता है। जो गुरू स्वंय ही भ्रम का शिकार हुआ हो वह दूसरे को पार नहीं उतार सकता।

कबीर साहिब का फ़रमान है कि कच्चे गुरू जिज्ञासु का समय पूरी तरह से नष्ट कर देते हैं। ऐसी निरर्थक क्रियाओं में डाल देते हैं कि इसका जीवन इन कर्म काण्डों में उलझ पुलझ कर व्यर्थ चला जाता है। तत्व के खोजी को बहुत ही सावधान होने की ज़रूरत है तथा हर समय प्रभु से सहायता लेते हुये प्रार्थना करनी चाहिए कि हे प्रभु! तेरी कृपा से मुझे मानस जन्म तो प्राप्त हो गया है, कृपा करके ऐसे आध्यात्मिक गुरू के साथ संयोग करवा जो स्वंय भी मुक्त हो और मेरे बन्धन भी काट दे। दूसरों के बारे में तो बाणी का यह फ़रमान है -

कबीर माइ मूंडउ तिह गुरू की जा ते भरमु न जाइ।
आप डुबे चहु बेद महि चेले दीए बहाइ॥ *पृष्ठ - 1370*

गुरबाणी का यह अटल सिद्धान्त है कि प्रभु के मिलाप के लिए पूरे सतगुरू की आवश्यकता है, फ़रमान आता है कि बज्र कपाटों को खोलने की जो चाबी है, वह अकाल पुरूष ने पूरे सतगुरू को सौंप दी है।

जिस का ग्रिहु तिनि दीआ ताला कुंजी गुर सउपाई।
अनिक उपाव करे नही पावै बिनु सतिगुर सरणाई॥ *पृष्ठ - 205*

तन रूपी छत में मन को कोठे की तुलना दी गई है और इसे अज्ञान के ताले लगे हुये हैं जिस दरवाजे की रक्षा करने के लिये शक्तियाँ जिन्हें आसुरी सैना भी कह कर बताया जाता है उसके बड़े धुरन्दर जरनैल क्रोध आदि स्वंय इस दरवाज़े की रक्षा कर रहे हैं। इस दरवाज़े में से गुजरने वालों को दुखों का सामना करना पड़ता है। आशाओं तथा अन्देशों के दरवाज़े लगे हुये हैं इससे आगे वासनाओं रूपी पानी हांडी गहरी माया ने खाई खोदी हुई है जो पानी से भरी हुई है जीव को इसमें से गुज़र कर जाना पड़ता है फिर कहीं जाकर सतपुरूष के दर्शन सत्य के आसन

पर होने सम्भव हैं जैसा कि फ़रमान है –

> ***दुखु दरवाजा रोहु रखवाला आसा अंदेसा दुइ पट जड़े।***
> ***माइआ जल खाई पाणी घरु बाधिआ सत कै आसणि पुरखु रहै॥***
> ***पृष्ठ – 877***

प्रभु का रास्ता दुखों के मण्डल में से (कठोर संघर्ष) होकर गुज़रता है, हमारे मन में आम यह इच्छा रहती है कि हमें कोई भी दुख प्राप्त न हो हमारा जीवन सुखों से भरा होना चाहिए। हम दुख के साथ समझौता नहीं कर सकते लेकिन फिर भी हम दुखों में ग्रस्त हुये रहते हैं। जब दुखों के साथ समझौता ही नहीं फिर दुखों के दरवाज़े में से कैसे पार हो सकते हैं। दुनियाँ के इतिहास में ऐसा बहुत कम देखा गया है कि कोई प्रेमी प्रार्थना करे कि हे वाहिगुरू! मेरे ऊपर दुखों की बख्शीश कर, ऐसी प्रार्थना एक अनहोनी बात है। सिर्फ माता कुन्ती के बारे में कहते हैं कि वह भजन पाठ करके प्रार्थना किया करती थी कि हे प्रभु! हम राज सुख पाकर तुझे भूल न जायें, हमें दुखों का वरदान दे। हम हर समय सुख मांगते हैं हमारी मांगों की लड़ी इतनी लम्बी है कि हम सारी आयु दे–दे–दे करते हुये बिता देते हैं। मुझे सुन्दर शरीर दे, मैं अच्छा पढ़ लिख जाऊँ मेरा जीवन साथी बहुत ही पसन्द का मिले, मेरा रोज़गार बहुत ही अच्छा चले, मुझे बहुत ही प्यारे पुत्र की दात मिले, मेरे पास बहुत सुन्दर रिहायश के महल हों, मुझे बड़े से बड़ा पद प्राप्त हो, यह हमारे मन में हर समय ही एक कामना लगी रहती है, हम दुख का नाम सुनकर कांप उठते हैं तथा किसी कीमत पर भी दुख को अपने ध्यान में लाने के लिये तैयार नहीं हैं। चाहे गुरू महाराज जी का फ़रमान है कि –

> ***केतिआ दूख भूख सद मार। एहि भि दाति तेरी दातार॥पृष्ठ – 5***

सो हम इस सिद्धान्त के साथ सहमत होने के लिये तैयार नहीं हैं। एक कथा ऐसी आती है कि गुरू पाँचवे पातशाह का दरबार लगा हुआ है। हजारों जिज्ञासु संगत में सुशोभित हुये हैं, गुरू पिता जी की ओर टकटकी लगा कर दर्शन कर रहे हैं ऐसा प्रतीत हो रहा है कि गुरू के दर्शनों से एक पलक भर भी अपनी स्मृति से वंचित नहीं होना चाहते तथा चकोर की तरह अनवरत गुरू का दर्शन कर रहे हैं। गुरू महाराज जी अपने मुखारविंद से प्रवचन कर रहे हैं तथा गुरसिखों की शंकाओं की निवृत्ति करने के लिये रूहानी प्रवचनों की वर्षा कर रहे हैं। वचनों की समाप्ति के उपरान्त एक गुरसिख जिसका नाम भाई गुरमुख था, वह खड़ा हो गया और प्रार्थना की कि सच्चे पातशाह! आप जी के प्रवचनों का मुख्य आशय जो मेरी समझ में आया है वह यह है कि दुख तथा सुख दोनों प्रभु की मर्ज़ी अनुसार इस जीव के भाग्य में आते हैं। सिक्ख को

प्रभु की रज़ा में रहकर, प्रभु प्रसन्नता प्राप्त करनी जरूरी है। आप ने फ़रमान किया है –

सुखु दुखु तेरी आगिआ पिआरे दूजी नाही जाइ।
जो तूं करावहि सो करी पिआरे अवरु किछु करणु न जाइ॥
पृष्ठ – 432

और यह भी फरमाया है कि दुख सुख वाहिगुरू की मर्जी से ही हुआ करते हैं जो इस हुक्म आज्ञा में प्रसन्नचित्त रहता है न तो दुख आने पर घबराता है और न ही सुख आने पर छलांगे लगाता फिरता है और न ही Excited (उत्तेजित) होता है और न ही गिरती दशा में पहुँच कर उदास होता है। वह वाहिगुरू की रज़ा के अनुसार अपने आपको मिलाकर एक सुर कर लेता है। दुख सुख के समय एक जैसी वृत्ति में प्रवृत्त रहना चाहिए। आप जी ने फ़रमान किया –

दुखु सुखु तेरै भाणै होवै किसथै जाइ रूआईऐ।
हुकमी हुकमि चलाए विगसै नानक लिखिआ पाईऐ। पृष्ठ – 418

आप जी ने यह भी फरमाया है कि वाहिगुरू की मर्ज़ी में ही सब कुछ घट रहा है जैसा कि –

भाणै उझड़ भाणै राहा।
भाणै हरिगुण गुरमुखि गावाहा।
भाणै भरमि भवै बहु जूनी सभ किछु तिसै रजाई जीउ॥
ना को मूरखु ना को सिआणा।
वरतै सभ किछु तेरा भाणा।
अगम अगोचर बेअंत अथाहा
तेरी कीमति कहणु न जाई जीउ॥ पृष्ठ – 98

तथा जप तप करना, संयम करना, यौनियों में भटकना, दुख सुख भोगते ही रहना यह सब वाहिगुरू जी की मर्जी के अनुसार ही हो रहा है –

नानक नामु धिआईऐ गुरू पूरा मति देइ।
भाणै जप तप संजमो भाणै ही कढि लेइ।
भाणै जोनि भवाईऐ भाणै बखस करेइ।
भाणै दुखु सुखु भोगीऐ भाणै करम करेइ।
भाणै मिटी साजि कै भाणै जोति धरेइ।
भाणै भोग भोगाइदा भाणै मनहि करेइ।
भाणै नरकि सुरगि अउतारे भाणै धरणि परेइ।
भाणै ही जिसु भगती लाए नानक विरले हे॥ पृष्ठ – 963

तथा आप जी ने यह भी संकेत दिया है कि जो प्रभु आज्ञा को प्रसन्न चित्त होकर मान लेते हैं वे प्रभु को अच्छे लगते हैं और वह गुरमुख पदवी को प्राप्त कर लेते हैं। मनुष्य की मर्ज़ी कहीं भी नहीं चलती। सब कुछ तेरी

रज़ा में ही हो रहा है। जैसे कि –

जो तुधु करणा सो करि पाइआ।
भाणे विचि को विरला आइआ।
भाणा मंने सो सुखु पाए भाणे विचि सुखु पाइदा॥
गुरमुखि तेरा भाणा भावै।
सहजे ही सुखु सचु कमावै।
भाणे नो लोचै बहुतेरी आपणा भाणा आपि मनाइदा॥
तेरा भाणा मंने सु मिलै तुधु आए।
जिसु भाणा भावै सो तुझहि समाए।
भाणे विचि वडी वडिआई भाणा किसहि कराइदा॥

पृष्ठ – 1063

हे सच्चे पातशाह! हम लोग तो सुख मांगते हैं। वाहिगुरू जी अपनी रज़ा के अनुसार हमें दुख की दात बांट रहे हैं तथा आप जी ने फ़रमान किया है वाहिगुरू जी के सामने प्रार्थना करनी चाहिए कि आप अपनी रज़ा में हमें रखो। यदि हमें सुख की प्राप्ति हो तो वाहिगुरू जी की इच्छा हमें बहुत ही अच्छी लगती है पर यदि वाहिगुरू जी सुख की जगह दुख की दात दें वह हमें बहुत ही बुरा लगता है। हे सच्चे पातशाह! मनुष्य के मन में बहुत बड़ी कमज़ोरी है कि वह दुख तथा सुख को एक जैसा नहीं समझ सकता, आप जी ने फ़रमान किया है –

आपणे भाणे विचि सदा रखु सुआमी हरिनामो देहि वडिआई।
पूरे गुर ते भाणा जापै अनदिनु सहजि समाई॥ **पृष्ठ – 1333**

क्या आप कृपा करके किसी ऐसे गुरसिख के प्रत्यक्ष दर्शन करवा सकते हो जो अवान्छित वातावरण में भी सुख की तरह ही दुख को समझता हो तथा दुख आने पर किसी प्रकार भी डगमगाये न। ये वचन संगतें भी सुन रही थीं। प्रार्थना सुनकर ऐसा प्रतीत हो रहा था कि संगत के मन में भी यही अभिलाषा है। गुरू महाराज जी ने सभी की इच्छा जानकर फ़रमान किया कि गुरसिखो! ऐसे बेअन्त गुरसिख हैं जो सुख तथा दुख में समान रहते हैं तथा निश्चल चित्त हैं। पूर्वज महापुरुषों ने भी ऐसे ज्ञानवान पुरुषों के लक्षण बताते हुये अपने वचनों द्वारा समझाया है। कृष्ण महाराज जी गीता में अर्जुन के पूछने पर बताते है कि, ''हे अर्जुन! ज्ञानवान पुरूष की निष्ठा दुख सुख में, सुख तथा स्नेह में, कंचन तथा मिट्टी में समान रहती है। वह दुख को दुख नहीं मानता, सुख का उसके साथ कोई स्नेह नहीं हुआ करता, वह न किसी को भय दिखाता है न ही किसी से भयभीत होता है, निन्दा तथा स्तुति से उसका कोई प्रयोजन नहीं हुआ करता। लोभ, मोह, अभिमान, हर्ष तथा शोक से अलग रहकर, मान तथा अपमान में समान वृत्ति रखता है। वह न किसी की निन्दा करता है, न ही

किसी की प्रशंसा करता है, न ही किसी की चापलूसी। जिसे किसी प्रकार का लोभ, मोह, अंहकार नहीं है, खुशी तथा शोक में निर्लेप रहता है, आदर तथा निरादर की परवाह नहीं करता आशाओं से निर्लेप रहता है, काम तथा क्रोध जिसे स्पर्श नहीं कर सकते उसके मन में प्रभु का पूर्ण ज्ञान हुआ करता है। ऐसा जो पुरूष है वह तत्व ज्ञानी हुआ करता है। वह परमेश्वर के साथ अभेद अवस्था में विचर रहा होता है। जिस प्रकार पानी, पानी में अभेद हुआ रहता है, उसमें द्वैत का कोई अंश नहीं हुआ करता इसी प्रकार के भाव गुरबाणी में भी अंकित किये गये हैं जैसे कि –

प्रभु की आगिआ आतम हितावै। जीवन मुकति सोऊ कहावै।
तैसा हरखु तैसा उसु सोगु। सदा अनंदु तह नही बिओगु।
तैसा सुवरनु तैसी उसु माटी। तैसा अंम्रितु तैसी बिखु खाटी।
तैसा मानु तैसा अभिमानु। तैसा रंकु तैसा राजानु।
जो वरताए साई जुगति। नानक ओहु पुरखु कहीऐ जीवन मुकति॥

पृष्ठ - 275

गुरू नौंवे पातशाह महाराज जी ने और स्पष्ट करते हुये इसी को इस प्रकार फ़रमान किया है –

जो नरु दुख मै दुखु नही मानै।
सुख सनेहु अरु भै नही जाकै कंचन माटी मानै।
नह निंदिआ नह उसतति जाकै लोभु मोहु अभिमाना।
हरख सोग ते रहै निआरउ नाहि मान अपमाना।
आसा मनसा सगल तिआगै जग ते रहै निरासा।
कामु क्रोधु जिह परसै नाहनि तिह घटि ब्रहमु निवासा॥

पृष्ठ - 633

गुरू महाराज जी कहने लगे कि भाई गुरमुख! ऐसे गुरसिख के यदि दर्शन करने की लालसा है जो सुख दुख को भावी के अधीन समझ कर प्रसन्न चित्त रहता है तो तू गुजरात चला जा। वहाँ एक गुरसिख है जिसका नाम भाई भिखारी है। वहाँ से तू इस प्रश्न का प्रत्यक्ष समाधान कर सकेगा।

भाई गुरमुख हुक्म मानकर गुजरात चला जाता है तथा बताये गये पते के अनुसार भाई भिखारी के घर का पता पूछ कर वहाँ पहुँच जाता है। भाई भिखारी जी अच्छे धनाढय गुरसिख हैं हर समय प्रभु से इकमिक हुये अपनी वृत्ति उसके प्यार में लीन रखते हैं। उसका पता पूछ कर जब एक अलग कमरे में जहाँ भाई भिखारी जी उस समय कार्यशील थे वहाँ चला गया। क्या देखता है कि भाई भिखारी जी एक सीढ़ी बना रहे हैं जो मृत शरीर को श्मशान भूमि में ले जाने के लिये काम आती है तथा साथ ही यह भी देखता है कि एक बड़ी दरी सिली हुई पड़ी है। उस कमरे में

मृतक का सामान भी नज़र आया पर कोई प्रश्न न कर सका। भाई भिखारी जी के पुत्र की शादी के सम्बंध में पूरे जोर शोर के साथ तैयारी हो रही है। वस्त्र सिलने के लिये दर्जी आये हुये हैं, मिठाईयां तैयार हो रही हैं, हर प्रकार से घर में मंगल गान हो रहे हैं, खुशी ही खुशी नज़र आ रही है। दूसरे दिन भाई भिखारी जी के लड़के की बारात को दूसरे शहर में ब्याहने के लिये जाना था, सो यह सब देखने के बाद गुरमुख ने अपना परिचय दिया कि मैं गुरू पाँचवें पातशाह जी के हुक्म के अनुसार आप जी के दर्शन के लिये भेजा गया हूँ। उस समय भाई भिखारी जी ने यथाशक्ति आदर किया, आपने श्रद्धा सहित गुरसिख के चरण धोये, पंच स्नान (मुँह, हाथ, पैर) कराये, जल पानी की सेवा की तथा इतनी देर में रहिरास साहिब पढ़ने का समय हो गया, रहिरास साहिब जी का पाठ किया गया। गुरसिख को श्रद्धापूर्वक भोजन खिलाकर अलग कमरे में विश्राम करने का प्रबन्ध कर दिया। अमृत बेला के पंच स्नान के लिये बाथरूम (स्नानागार) बता दिया गया तथा अनेक प्रकार से श्रद्धापूर्वक विश्राम के लिये आज्ञा मांगी तथा साथ ही प्रार्थना कर दी कि गुरू महाराज जी की बड़ी कृपालता है कि मुझे आप जैसे महापुरुषों के दर्शन हुये हैं जिनके दर्शन करके मुझे गुरू महाराज जी के दर्शनों का ही प्रभाव प्रतीत हो रहा है। कल मेरे लड़के की शादी है, आप जी ने बारात में आकर हमें कृतार्थ करना है। मित्र, रथों, घोड़ों पर सवार होकर बारात लेकर विदा हुये, घर में अति आनन्द मंगल का समागम बना हुआ था तथा नियत समय पर चाव के साथ माता तथा बहनें नई दुल्हन के मिलाप के लिये अपने आप को मानसिक रूप से तैयार कर रहीं थीं। एक दो दिनों के बाद वह समय भी आ गया, जब बारात वापिस आ गई, माता पानी वारने के लिये पानी तथा तेल आदि लेकर खड़ी थी। भाई भिखारी जी की लड़कियां अपने भाई के स्वागत के लिये दरवाजा रोककर मन वांछित मायिक पदार्थ प्राप्त करने की पूरी तरह इच्छुक थीं क्योंकि खुशियों के समय ऐसी बातें स्वाभाविक ही हुआ करती हैं। बारात पहुँच गई, वह रथ आ गया जिसमें दूल्हा रथ से नीचे उतरता है और उसके बाद उसकी पत्नी उतरती है पर सभी हैरान हो गये अपने लड़के का कलावा भर कर अपनी दोनों बाजुओं में भर लिया। एकदम वातावरण बदल गया क्योंकि वह लड़का रास्ते में ही पेट में कोई सख्त दर्द उठने के कारण चढ़ाई कर गया था। सारे शकुन अधूरे रह गये भाई भिखारी जी ने अपने परिवार को गुरू महाराज जी की रज़ा मान कर चलने का आदेश दिया तथा परिवार पूरी तरह से गुरू महाराज पर श्रद्धा रखता था पर फिर भी पुत्र वियोग का अनुभव करके माता के नेत्रों के सामने काल चक्र घूमने लगा और एकदम बहुत बड़ा धक्का लगा जिसे

सहन करना मनुष्य के लिये बहुत कठिन हो जाता है। पर जल्दी गुरू प्यार में लीन सम्भल गई तथा अरदास करने लगी कि पातशाह! संयोग भी तू ही करवाता है, वियोग भी तेरी मर्ज़ी के अनुसार होते हैं, तू कृपा कर कहीं हम अल्पज्ञ जीव दुखों के थपेड़े सहते हुये तेरे से दूर न हो जाएं। पातशाह! तेरा ही भरोसा है, जो तू करता है सो प्रवान है। भाई भिखारी जी ने उस समय रिश्तेदारों, सम्बंधियों के बैठने के लिये वह बड़ी दरी जो उन्होंने पहले ही टांके टूंके लगाकर तैयार करके रखी हुई थी, बिछा दी। सारे रिश्तेदार सम्बन्धी वहीं थे आपने प्रार्थना की कि प्रेमियो! दिन ढलने में थोड़ा समय ही रह गया है काके को स्नान करवाकर अभी ही श्मशान भूमि ले जाया जाये। अनेक प्रेमियों के नेत्रों से जल छल छला कर बह रहा था। बोलने की शक्ति ही समाप्त हो चुकी थी। सभी हैरान थे कि यह क्या हो गया। खुशियों में बजने वाली शहनाईयां मातमी सुर में बदल गईं। सो उस समय संस्कार किया गया। भाई भिखारी जी घर वापिस आ गये और सभी को प्रार्थना की कि आप मेरे रिश्तेदार हो, गुरू की सिक्खी तुम्हें प्राप्त है, दुख सुख उसकी मर्जी के अनुसार ही होता है जो उसकी रज़ा को मानता है वह प्रभु को अच्छा लगता है। भोजन करना शारीरिक रक्षा के लिये अति आवश्यक है सो जो भोजन बना है आप सभी भोजन करो। भाई भिखारी जी ने भाई गुरमुख जी को भोजन खिलाया। भाई गुरमुख के दिल को भी काफी धक्का लगा। और वह बोलना नहीं चाहते थे। भाई भिखारी जी ने सारे परिवार को बिठा कर रहिरास साहिब जी का पाठ अपने मुखारविंद से सुनाया और गुरमत सिद्धान्तों का निरूपण करते हुये बताया कि यह सब कुछ इसी तरह होना था इसमें कुछ भी नहीं बदला जाना था। ऐसे वचन सुन कर कुछ हौंसला सभी को मिला।

दूसरा दिन हुआ, उस समय भाई गुरमुख जी ने कहा कि भाई भिखारी जी! आपने मृतक का सामान पहले ही मंगवा कर रखा हुआ था इससे प्रतीत होता है कि तुम्हें पहले से ही पता था कि मेरे लड़के का स्वर्गवास हो जाना है तथा संस्कार करने के लिये सामग्री कहीं से लानी नहीं। मेरा यह पक्का निश्चय है पर मेरे मन में एक बहुत भारी शंका पैदा हो गई है कि यदि आपको पता था तो आपने लड़के की शादी नहीं करनी थी और गुरू महाराज के चरणों में जाकर इसकी लम्बी आयु की प्रार्थना करना एक पिता को शोभा देता है। अब बच्चा चला गया घर में पूरी तरह से अन्धकार छा गया है। मुझ से तो यह बात सहन नहीं हो सकती और मैं हैरान हूँ कि आपने अपने पुत्र की लम्बी आयु गुरू महाराज जी से क्यों नहीं मांगी? उस समय भाई भिखारी जी ने कहा कि भाई गुरमुख जी! इस सारे संसार की खेल में दो शक्तियाँ अटल नियम के अनुसार कार्य कर रही हैं एक

को संयोग कहते हैं दूसरे को वियोग कहते हैं। इस संसार का प्रवाह उसी प्रकार चल रहा है जैसे एक तेज रफ्तार वाली नदी अपने किनारों को तोड़ती हुई बह रही हो, उसके अन्दर उठने वाले भंवर चक्र एक जगह से रेत को उठा लेते है और दूसरी जगह छोड़ देते हैं। इसी प्रकार किसी और जगह से उठाकर कहीं दूर दूसरी जगह फैंक देती है। इसी तरह संसार का प्रवाह चल रहा है। जितने जीव इसी प्रकार संसार में अपने साथ सम्बन्धी देखते हो ये सभी संयोग की शक्ति के साथ मिलते हैं तथा जब वियोग शक्ति अपनी सत्ता दिखाती है तो वह मेल को बिछोड़े में बदल देती है। यह जीव अकेला ही आता है, अकेले ही इसने जाना है और अपने किये कर्म अकेले ने ही भोगने हैं, कोई किसी की सहायता नहीं करता।

मात पिता बनिता सुत बंधप इसट मीत अरु भाई।
पूरब जनम के मिले संजोगी अंतहि को न सहाई॥ पृष्ठ - 700

मिलाप और बिछोड़ा जब प्रभु की मर्ज़ी के अनुसार होना ही है तो यह होकर ही रहता है। हम प्रभु को प्यार करने वाले उसकी रज़ा को मानकर ही उसके साथ जुड़े रह सकते हैं। जब हमारी मर्ज़ी प्रभु की मर्ज़ी के उलट हो जाती है तो उस समय प्रीत टूट जाया करती है। बाणी में फ़रमान आता है -

जे सुखु देहि त तुझहि अराधी दुखि भी तुझै धिआई॥
जे भुख देहि त इत ही राजा दुख विचि सूख मनाई॥ पृष्ठ-757

भाई गुरमुख जी! गुरू महाराज जी के आदेशानुसार हमें दुख तथा सुख में सम रहना प्रभु को रुचिकर लगता है। गुरबाणी में फ़रमान आता है -

सुखु दुखु जिह परसै नही लोभ मोह अभिमानु।
कहु नानक सुन रे मना सो मूरति भगवान॥ पृष्ठ - 1426

कृष्ण महाराज जी ने गीता में फ़रमान किया है कि जिसकी वृत्ति शत्रु तथा मित्र, मान और अपमान समय सम है तथा गर्मी सर्दी सुख दुख आदि द्वन्दों में सम रहती है तथा सारे संसार में आसक्ति रहित है, मोह रहित है, निन्दा स्तुति को समान समझता है। वाहिगुरू जी में सदा लीन रहने वाला सारे द्वन्दों से रहित जो है वह स्थिर बुद्धि वाला पुरुष मुझे बहुत ही प्यारा है, सर्दी गर्मी, सुख दुख, मान अपमान में जिनका चित्त निर्विकार तथा शान्त रहता है तथा जो अपने स्वरूप में लीन रहते हैं ऐसा इन्द्रियों को जीतने वाला पुरुष जीवन मुक्त अवस्था को प्राप्त करता है। गुरू महाराज जी ने सिख को ऊँचा उठाने के लिए दुख दारू के रूप में बख्शा है। सुख को रोग के समान बताया है -

दुखु दारू सुखु रोगु भइआ जा सुखु तामि न होई।

तूं करता करणा मै नाही जा हउ करी न होई। *पृष्ठ - 469*

एक ऐसी ही कथा गुरू दशमेश पिता जी के साथ सम्बंधित है कि आप जी से गुरसिखों ने प्रश्न पूछा कि जिस पर आप की दयालुता हो उसकी पहचान क्या हुआ करती है? गुरू महाराज जी ने कहा कि हमारी दयालुता जिस पर हो जाया करती है तो उसके रोग शोक समाप्त हो जाते हैं, उसके कार्य स्वतः सिद्ध होने लग पड़ते हैं, उसका मान संसार में होना शुरू हो जाता है और सुखों की दात प्राप्त हो जाती है क्योंकि गुरू के पास अनेक फल हैं। इतनी बात सुनकर सभी चुप हो गये, बात किसी किनारे पर न लगी, दोबारा फिर प्रार्थना की गई कि महाराज जी! यदि आप की महान प्रसन्नता हो जाये तो फिर क्या निशानी हुआ करती है? उस समय आप जी ने फ़रमाया कि गुरसिखों। यहाँ दो परिस्थितियां होती हैं, एक तो यह कि गुरसिख वरदान प्राप्त करके पहले से भी ज्यादा भजन बन्दगी करने लग जाता है, परोपकार करता है और लोगों को शुभ मति देता है और प्रेरणा देता है कि वे निगुरे न रहें, गुरू वाले के बनें, अपना जीवन मनोरथ प्राप्त करें जो बहुत स्पष्ट है -

भई परापति मानुख देहुरीआ।
गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ। *पृष्ठ - 12*

ऐसे गुरसिक्ख पर हमारी कृपा होती है, हम उसे आध्यात्मिक जीवन का वरदान दे देते हैं। उसे नाम सिमरन में लगाकर, कर्म, उपासना, ज्ञान, विज्ञान की अवस्थाओं में से पार करवाते हुये, शनैः शनैः आत्म दर्शी मण्डल में पहुँचा दिया करते हैं तथा उसकी दृढ़ता तथा लगन देखकर उसका जीव भाव खत्म करके अपने परम चेतन सदा अविनाशी पद का अधिकारी बना कर अपने साथ अभेद कर लिया करते है। यानि कि उसे ब्रह्मज्ञान की अवस्था प्राप्त हो जाती है, उसकी द्वैत समाप्त होकर वह परमेश्वर का रूप हो जाया करता है। जैसा कि हमने बताया है कि -

आतम रस जिह जानही, सो है ख़ालस देव।
प्रभ महि मो महि, तास महि, रंचक नाहन भेव। *सरब लोह ग्रंथ*

ऐसी अवस्था की प्राप्ति हो जाना हमारी परम प्रसन्नता के कारण हुआ करती है। यदि कोई गुरसिख इसके विपरीत गुरू से मन माँगे वरदान प्राप्त करके विमुख हो जाये और उसी वरदान में ही फंस जाये, भजन बन्दगी तथा नितनेम तथा शुभ आचरण छोड़कर शराबों कबाबों में मस्त हो जाये, दात को प्यारा समझ कर दातार को पूरी तरह भुला दे फिर ऐसा भी हो जाया करता है कि वह हमारे से सम्बंध तोड़कर नरकों के फल भोगता फिरता है। यदि उसे अपने किये हुये बेमुखता के कर्मों पर पश्चाताप हो जाये तो हम उसके हृदय की वेदना को अनुभव करके उसे इस माया की

दलदल में से निकालने के लिये दुख की जंज़ीर भेज दिया करते हैं। उस समय उसे जो दुख प्राप्त होते हैं वह हमारी प्रसन्नता के कारण ही हुआ करते हैं वे एक प्रकार से उच्च जीवन में पुनः प्रवेश करने के लिये हमारी ओर से दात हुआ करती है जैसा कि फ़रमान है –

केतिआ दूख भूख सद मार। एहि भि दाति तेरी दातार॥ पृष्ठ -5

इस प्रकार गुरू दशमेश पिता जी ने सारी संगत को समझाया कि जैसे मरीज़ बीमार हो जाता है, कई बार उसे बहुत कड़वी दवाईयां देनी पड़ती हैं जो शरीर में जाते ही सभी विकारों को साफ करती हैं जिसके फलस्वरूप शरीर स्वस्थ हो जाता है। इसी प्रकार अपने सिख को ऊँचा उठाने के लिए गुरू दुख की जंज़ीर भेज दिया करता है। दुख को वाहिगुरू की दात समझने वाले बहुत ही कम हुआ करते हैं।

भाई भिखारी जी भाई गुरमुख जी के वचन सुनकर पहले तो चुप कर गये क्योंकि भाई गुरमुख जी ने कहा था कि आपको पता था कि इस लड़के की आयु खत्म हो जानी है तो इसकी शादी क्यों करनी थी, भाई भिखारी जी आप गुरू महाराज जी के प्रवान गुरसिखों में से हो, यह कोई अनुचित बात नहीं थी यदि आप गुरू महाराज जी से अपने लड़के की ओर आयु मांग लेते, गुरू घर में किसी चीज़ की कमी नहीं है। महापुरुषों से ऐसा सुना है –

तीरथ कीए एक फल संत मिले फल चार।
गुरू मिले फल अनेक है कहत कबीर विचार।

सो गुरू के पास कोई कमी नहीं है, हम प्रति दिन ही आनन्द साहिब में पढ़ते हैं –

साचे साहिबा किआ नाही घरि तेरै।
घरि त तेरै सभु किछु है जिसु देहि सु पावए।
सदा सिफति सलाह तेरी नामु मनि वसावए।
नामु जिन कै मनि वसिआ वाजे सबद घनेरे।
कहै नानकु सचे साहिब किआ नाही घरि तेरै। पृष्ठ - 917

गुरू कम हो गई (टूट गई) आयु को बढ़ा देते हैं, शरीर में से निकल गये प्राणों को पुनः प्रवेश करा देते हैं। आप सत्संग में महापुरुषों से सुनते ही हो कि गुरू तीसरे पातशाह महाराज गोइन्दवाल साहिब में रह रहे थे। आप अमृत बेला में उठकर स्नान आदि करके समाधिस्थ हो जाया करते थे एक दिन जब आप समाधिस्थ होने लगे एक अति दर्दनाक चीख आपके कानों में पड़ीं, इस हृदय भेदी कूक ने आप का नर्म हृदय पूरी तरह से पिघला दिया। आपने सेवादार को भेजा कि पता करके आओ कि कौन दुखी है? कौन ऐसा पुरुष है जो अमृत बेला में बन्दगी करने वालों की

सुरतें दरगाही जलाल के साथ जुड़ती हैं, रो रहा है। गुरसिख ने पता करके बताया कि महाराज! एक विधवा ब्राह्मणी का इकलौता नौजवान पुत्र चढ़ाई कर गया है इसलिये वह बहुत ही विरह में विह्वल है कई हमदर्दी से भरे भद्र पुरुष उसे बड़ा दिलासा भी दे रहे हैं पर वह चुप नहीं करती क्योंकि विरह की पीड़ा उससे सहन नहीं होती थोड़ी थोड़ी देर के बाद गश खाकर बेहोश हो जाती है। पातशाह! कुदरत वाले ने माँ को ममता ही ऐसी प्रदान की है कि बच्चों की मौत को सहन नहीं कर सकती। गुरू महाराज जी ने सारी व्यथा सुनकर गुरसिख को कहा कि जाओ अमृत बेला है, सुरत में लीन आत्माओं ने अपने स्वः स्वरूप से सुरत जोड़नी है कहो कि तेरा रोना उनके लिये विघ्नकारी है, तू अमृत बेला में अपने पुत्र को गुरू दरबार में लेकर आना, प्रभु द्वारा उसके प्राण वापिस कर दिये जायेंगे। यह सुनकर वह ब्राह्मणी चुप हो गई। अमृत बेला में अपने और भाईचारे के साथ अपने पुत्र को ले जाकर गुरू चरणों में रख दिया। महाराज जी ने कृपा दृष्टि करके, ''सतिगुरू मेरा मारि जीवाले'' के विधान के अनुसार उसे प्राण दान दे दिये। सो भाई भिखारी जी। आप यदि अपने पुत्र के लिये और आयु की मांग गुरू महाराज जी से कर लेते तो यह हृदय विदारक दृश्य हमें देखने को न मिलता कितनी खुशियों का मंगलाचरण इस घर में हो रहा था। हर तरफ प्रसन्नता के मारे किसी के धरती पर पैर नहीं टिक रहे थे। अब देखो कैसा मातम छा गया, कितना उदास वातावरण बन गया। भाई भिखारी जी आपकी प्रार्थना तो गुरू महाराज जी ने बहुत निकट होकर सुन लेनी थी क्योंकि आप गुरू में अभेद होने वाले गुरसिख हो। आपने ऐसा कर लेना था। बच्चे को प्राण दान मिल जाते। उस समय भाई भिखारी जी ने कहा कि भाई गुरमुख जी! आप को पता ही है कि सारी सृष्टि वाहिगुरू जी के अटल हुक्म में चल रही है। उसमें दखल देना शोभा नहीं देता। बाकी आप कहते हैं कि यदि तुम्हें पता था तो इस बच्चे का ब्याह क्यों किया, इस सम्बंध में प्रार्थना है कि इस लड़के का भाग्य ही ऐसा था कि इसने ब्याह करवाने के बाद चले जाना था। भाई भिखारी जी कहने लगे जहाँ तक गुरू महाराज से कुछ माँगनें का सम्बंध है उसके बारे में गुरू महाराज जी ने अपनी बाणी में स्पष्ट किया है -

मागना मागनु नीका हरि जसु गुर ते मागना॥ ***पृष्ठ - 1018***

सो गुरू से तो हरि यश, नाम से प्रीत, गुरमुखों के दर्शन, सन्तों की धूल मांगना ही विधान है, नाशवान वस्तुयें सदा स्थाई नहीं रहतीं, ये अल्पकाल के लिये प्राप्त होती हैं। संयोग वियोग की मर्यादा अनुसार ये मिलती तथा बिछुड़ती रहती हैं। भाई गुरमुख जी! आप स्वयं ही सोचो कि यह जीवन सदीवी तो है नहीं यहाँ बड़े बड़े इस संसार में आये, बड़ी

बड़ी लम्बी आयु वाले ब्रह्मा, विष्णु, शिव जी महाराज जैसे आए, अपने समय के अनुसार क्रियाएं करके निरंकारी हुक्म के अधीन संसार से चले गये। पीरों, पैगम्बरों, ऋषियों मुनियों का कोई अन्त नहीं। यह सभी अपने अपने, समय अनुसार सांसारिक मंच पर अपना नाटय करके अदृश्य मण्डल में प्रवेश कर जाते हैं जो इस संसार में से गया है, संसार में आया तो नहीं न। फिर भी यदि हम उसके प्राण दान मांग लेते तो भी उसने जाना तो था ही तथा मैं और तुम भी तो एक दिन चले ही जायेंगे। गुरू महाराज जी तो इस संसार को एक सपना ही बताते हैं। फ़रमान है –

जैसा सुपना रैनि का तैसा संसार। *पृष्ठ - 808*

तथा ऐसा ही फ़रमान करते हैं कि इस स्वपन की वस्तुओं के साथ मोह में ग्रस्त होना मूर्खो का कार्य है। सपने में यह जीव अनेक भोग भोगता है, राजा भी बन जाता है, कंगाल भी बन जाता है। पर सपने का अन्त होते ही सपने की कोई भी वस्तु साक्षात्कार दिखाई नहीं देती। यदि स्वपन सत्य होता है तो स्वपन में देखे गये पहाड़, नदियाँ, कहीं न कहीं तो अस्तित्व में होने ही थे पर सभी को पता है सपने के sphere में स्वपन अवस्थायें सपने के समाप्त होते ही समाप्त हो जाया करती हैं। इस प्रकार भाई गुरमुख जी! जो जीवन हम जी रहे हैं, यह बहुत से वर्षो का एक लम्बा सपना है, यह भी खत्म हो जायेगा। जैसे एक सेर आटा हो तो वह थोड़े समय में खाकर समाप्त कर दिया जायेगा, यदि कई मन आटा हो तो वह काफी समय तक खाया जाता रहेगा, परन्तु खाये तो दोनों ही आटे जाते हैं। सो न तो यह जीवन सत्य है, न ही वह जीवन सत्य है, दोनों ही स्वपन है। गुरू महाराज जी फ़रमान करते है –

सुपने सेती चितु मूरखि लाइआ।
बिसरे राज रस भोग जागत भखलाइआ।
आरजा गई विहाइ धंधै धाइआ।
पूरन भए न काम मोहिआ माइआ।
किआ वेचारा जंतु जा आपि भुलाइआ। *पृष्ठ - 707*

भाई गुरमुख जी! आप भी गुरू महाराज जी के अति निकट रहते हो, आपको तो पता है कि हम रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण की नींद में सोये पड़े हैं। इसके ऊपर जो सदा का जागरण है वह सत्य का जीवन है, जिसका कभी भी नाश नहीं होता वह परम पद की प्राप्ति हुआ करती है जहाँ पहुँच कर जीव का आना जाना समाप्त हो जाता है, जहाँ इसका बिछोड़ा हुआ था, उसी स्थान पर पहुँच जाता है। सो ऐसी सत्य अवस्था को छोड़कर सपनों की दुनियाँ के सुखों की मांग करना गुरसिख को शोभा नहीं देता। गुरू महाराज जी तो उपदेश करते हैं कि हमें सुख तथा दुख

में सम रहना चाहिए।

यह सभी विचार सुनकर भाई गुरमुख जी ने कहा कि भाई भिखारी जी! आपके अन्दर तो पूर्ण प्रकाश है, आपको मिथ्या तथा सत्य के दोनों डण्डे दृष्टि गोचर हो रहे हैं पर इस बात की चिन्ता मेरे मन में जो बार बार उदासी की ओर ले जाती है वह यह है कि जो ब्याहता लड़की घर आई है उसने सारी जिन्दगी विधवा जीवन व्यतीत करना है, उसके सुहाग को तो झपटा मारा गया। मौत ने उसे खुशियों में से निकाल कर दुखों के मण्डल में फैंक दिया। उस बेचारी का क्या हाल होगा? यदि तुम्हें पता था कि इसने आज इस समय चढ़ाई कर जाना है तो आप उस लड़की को तो विधवा होने से बचा लेते। उस समय भाई भिखारी जी ने कहा कि आप इस बात का उत्तर उस नव विवाहिता लड़की के मुख से सुनने का कष्ट करें, आपको पता चल जायेगा। उस समय अवसर देखकर भाई गुरमुख जी ने बीबी के पास जाकर अफसोस प्रकट किया और कहा बीबा! मुझे बहुत दुख है जब मैं देखता हूँ, तू बिना सुहाग का आनन्द लिये विधवा हो गई है। सारा जीवन तुझे किस तरह दुखों से भरा वातावरण पैदा करता रहेगा यह सोचकर मुझे बहुत दुख हो रहा है। उस लड़की ने कहा कि आप मेरे पिता समान हैं, यह जो आपने मेरे बारे में सोचा है मैं वैसी नहीं हूँ, मैं खुश हूँ कि मैंने शादी इस महापुरुष के साथ करके सदीव सुहाग प्राप्त कर लिया है। महापुरुष अविनाशी मंडल के वासी होते हैं, मेरा सुहाग सदा स्थाई है, थोड़ी देर का बिछोड़ा है, जब मैंने ये जीवन सफर पूरा कर लेना है तो मेरा अपने पति देव के साथ सदीवी मेल हो जायेगा। वह महापुरुष थे। महापुरुष मरा नहीं करते सदा अमर जीवन का आनन्द लूटते हैं। भाई गुरमुख जी यह उत्तर सुनकर हैरान हो गये और कहने लगे कि बेटा! तुम्हें कोई दुख नहीं है? वह कहने लगी "हाँ। पिता जी! मेरे मन में कोई दुख नहीं है इसके विपरीत मेरे मन में अति प्रसन्नता है कि मुझे विधाता ने इस महापुरुष के साथ संयोगवश जोड़ दिया है। आपको यह मालूम नहीं कि मेरे पति कितनी उच्च अवस्था के मालिक हैं, मैं इसके साथ की पिछले जन्म से प्रतीक्षा कर रही हूँ। मैं आपको सारी बात विस्तार से बताती हूँ। वह इस प्रकार है कि मैं पिछले जन्म में राजकुमारी थी। बहुत ही पक्की ब्रह्मचारिणी थी यह मेरा पति ब्राह्मण महान तपस्वी था और सम्पूर्ण ब्रह्मचारी था। इसने प्रण किया हुआ था कि मैं सारी जिन्दगी ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा जैसे भीष्म पितामह ने ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा की थी और उसने इस प्रतिज्ञा का सारी जिन्दगी पालन किया। ऐसी ही प्रतिज्ञा मेरे पति ने की हुई थी। मैंने पिछले जन्म में छोटी उम्र में ही बहुत जप तप किये थे, मेरे नेत्रों में ऐसी शक्ति उत्पन्न हो गई कि

कोई भी पुरुष मेरे नेत्रों की ओर नहीं देख सकता था। उसकी आँखे मेरे नेत्रों के साथ मिलते ही नीची हो जाया करती थीं। मेरे पिता मेरी शादी करना चाहते थे। मैंने पूरी तरह से इन्कार कर दिया कि मैं ब्रह्मचारिणी रहूँगी और इस ब्रह्मचर्य व्रत का पूरी तरह पालन करूँगी। मेरे माता पिता बहुत परेशान हुये। कुछ समय बीतने के बाद उन्होंने मुझे फिर शादी करने के लिये पूछा और साथ ही शास्त्रों के प्रमाण भी दिए कि स्त्री का संसार में कुआंरा रहना किसी भी विधान के अनुसार ठीक नहीं है। इसका दोष माता-पिता तथा लड़की को भी लगता है। बेटी! जब तक तू पति रूप परमेश्वर के साथ ब्याही नहीं जाती, तेरी गति होना अति कठिन है तथा इसके साथ कठोरता से हिदायत की कि हमने कुआँरी नहीं रहने देना। उस समय मैं अपने माता पिता का आदर करती हुई उन्हें स्पष्ट कर दिया कि मैं अपनी शादी के लिये स्वयंवर रचाना चाहती हूँ। शर्त मेरी यह है कि मैं जयमाला लेकर अकेले अकेले राजकुमार के नेत्रों में झांकूँगी जिसके नेत्रों की ओर देखकर मेरे नेत्र डर के मारे नीचे हो गये उसे मैं अपना पति बनाऊँगी। मैंने जात पात का कोई विचार नहीं करना चाहे वह ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य हो। माता पिता ने उस प्रतिज्ञा को स्वीकार कर लिया। स्वयंवर की तारीख निश्चित कर दी गई तथा इसके साथ साथ मेरी शर्त को निमन्त्रण पत्रों के ऊपर जो अलग अलग राजकुमारों को भेजे गये, लिख दिया गया। बहुत सुन्दर, जवान बलवान राजकुमार स्वयंवर में शामिल हुये पर सभी के नेत्र मेरे नेत्रों के साथ मिलते ही नीचे हो गये। मेरे माता पिता यह सारी बात देख रहे थे, मैं किसी के गले में भी जय माला न डाल सकी। यह देखकर मेरे माता पिता बहुत चिन्तित हुये। उन्होने तीर्थो के दर्शन करने का कार्यक्रम बनाया। मैं साथ थी, तीर्थो में जिसने भी मेरे साथ नेत्र मिलाए उनके नेत्र नीचे होते चले गये। सो इस प्रकार मैं पति की खोज करते करते माता पिता के साथ जब गंगा के किनारे पहुँची तो वहाँ ये मेरे पति देव। जिनकी अकाल मृत्यु हो चुकी है, ब्राह्मण शरीर में तपस्या कर रहे थे। जब मैंने इनके तेजस्वी नेत्रों की ओर देखा तो मेरे नेत्र झुक गये। मेरे माता पिता ने भी इसे पसन्द कर लिया। फिर हम सभी मिलकर उस ब्राह्मण को मेरे साथ शादी करने के लिये कहने लगे। पर वह ब्राह्मण न माना, मैंने भी वहीं प्रतिज्ञा की कि यदि मैं शादी करूँगी तो इस ब्राह्मण तपस्वी के साथ ही करवाऊँगी। चाहे मुझे कई जन्म क्यों न बिताने पड़े, मैं शादी इसी के साथ ही करूँगी। माता पिता को मैंने भेज दिया। अपने पति से थोड़ी सी दूर गंगा किनारे मैं भी तपस्या करने लगी। मैंने भी वैसी तपस्या की जैसी पार्वती जी ने की थी कि करोड़ों जन्म बीतने के बाद भी केवल शिव जी को ही पति बनाऊँगी अन्यथा हर जन्म

में कुआंरी ही रहूँगी। सो इस प्रकार मैंने प्रतिज्ञा कर ली कि यदि मैं विवाह करूँगी तो इसके साथ ही करूँगी अन्यथा जन्म दर जन्म कुआंरी ही रहूँगी। मैंने उस ब्राह्मण तपस्वी को अनेक बार प्रार्थना की और साथ के साथ अपनी प्रतिज्ञा के बारे में भी बताया, पर वह बिल्कुल भी न माना। मैंने उसके निकट बैठकर घोर तप करना शुरू कर दिया। मेरी तपस्या को देखकर ऋषियों मुनियों ने इसको समझाया। मेरे पिता जी भी वहाँ पहुँच गये थे उन्होने भी इस ब्राह्मण को समझाया। कि यह लड़की तेरी प्रालब्ध का तीव्र भोग है। तीव्र प्रालब्ध भोगे बिना कर्म निवृत नहीं हुआ करते। तुझे इसलिये शादी करवानी ही पड़ेगी। ऋषि कहने लगे कि हे तपस्वी! तेरे भाग्य में इसके साथ शादी करनी लिखी हुई है यह कर्म प्रालब्ध कोटि में पहुँच चुका है चाहे तू कितने जन्म क्यों न बिता ले। इसे समझाने लगे और कहा कि तपस्वी ब्राह्मण! तू एक बार मेरी लड़की के साथ विवाह कर ले इसके कुआंरी रहने का दोष मुझे लगना है। शादी के बाद तू जो भी करेगा, तेरी बातों में हम दखल नहीं देंगे। जब ऋषि मुनियों ने मेरे माता पिता ने यह प्रार्थना की और समझाया कि हे ब्राह्मण!

भोगे बिन भागे नहीं करम गती बलवान।

यह शादी तुझे करनी ही पड़ेगी। उसने उत्तर दिया कि अच्छा। मैं शादी तो कर लूंगा पर मैं इस लड़की के साथ कोई सम्बंध नहीं रखूंगा। यह सुनकर मैंने उसे नमस्कार की और कहा कि मुझे तुम्हारी शर्त मन्जूर है। मुझे तो बहुत खुशी होगी जब मैं आप जी को विधि पूर्वक पति बना लूंगी। जहाँ तक सम्बन्ध की बात है उसके लिये मैं आपको मजबूर नहीं करती। सो उस ब्राह्मण ने तथा मैंने स्वः इच्छा से शरीर छोड़ दिया तथा इस जन्म में अपने अपने पूर्व जन्म की प्रतिज्ञा के अनुसार हमारी केवल शादी होनी थी उसने शादी के बाद शरीर छोड़ना ही था। सो मेरी प्रतिज्ञा भी पूरी हो गई और उसके वचन भी पूरे हो गये। मेरा उसके साथ जो सम्बंध जुड़ गया वह जन्म जन्मातरों तक कायम रहेगा। थोड़े समय के बाद मैंने भी शरीर छोड़ देना है और सच्ची दरगाह में इकट्ठे रहेंगे। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है कि मेरे ससुर घर के माता-पिता गुरमुख हैं तथा उन्होनें इस दुख सुख वाली भावी को समझ कर सम वृत्ति अपनाये रखी है। सभी के माथे पर प्रभु ने लेख लिखे हैं, उन लेखों के बिना कोई स्वतन्त्र नहीं है। उसका ही हुक्म चलता है -

सरब जीआ सिरि लेखु धुराहू बिनु लेखै नही कोई जीउ।
आपि अलेखु कुदरति करि देखै हुकमि चलाए सोई जीउ॥

पृष्ठ - 598

सो भाई गुरमुख जी को ये वचन सुनकर तसल्ली हो गई तथा

उनका गुरू वचनों पर पूर्ण विश्वास दृढ़ हो गया। गुरू महाराज जी के चरणों में आकर नमस्कार की और धन्यवाद किया कि सच्चे पातशाह! अपने गुरमुख प्यारे के दर्शन करवा कर मेरे मन की शंका दूर कर दी क्योंकि हम पढ़ तो लेते हैं दुख सुख को सम समझना है पर मुझे ऐसा लगता था कि ये वचन पढ़ने तो आसान हैं पर निभाने बहुत कठिन हैं। सो धन्य हैं आपके गुरसिख जो आप के इन वचनों पर पूरी तरह चल रहे हैं।

अगम अगोचर के मार्ग पर चलने के लिये सब से पहले मन को दुखों के दरवाज़े में से निकलना पड़ता है जब तक हम दुख को सुख के समान नहीं जान लेते, हमारा दुख के साथ हमेशा ही विरोध रहता है हालांकि ये दुख जीव के कर्मों के अनुसार ही आया करते हैं और इन धुर दरगाह से लिखे लेखों को कोई मिटा नहीं सकता जैसा कि गुरबाणी में फ़रमान हैं -

लेखु न मिटई हे सखी जो लिखिआ करतारि॥ पृष्ठ - 937

ऐसा ही फ़रमान आता है -

जैसी कलम वुड़ी है मसतकि तैसी जीअड़े पासि। पृष्ठ - 74

लिखिआ मेटि न सकीऐ जो धुरि लिखिआ करतारि॥ पृष्ठ - 89

पिछले जन्मों में किये गये कर्म जो मौजूदा जन्म में किरत का रूप धारण कर लेते हैं वे अवश्य ही भोगने पड़ते हैं। वाहिगुरू के अटल नियमानुसार जीव उसी तरह से चलता है -

करणी कागदु मनु मसवाणी बुरा भला दुइ लेख पए॥
जिउ जिउ किरतु चलाए तिउ चलीऐ तउ गुण नाही अंतु हरे॥
पृष्ठ - 990

सत्संग प्राप्त हो जाना, साधु का मिलाप हो जाना, यह पिछले किये हुऐ कर्मों के फल के कारण ही होता है जैसा कि -

पूरब करम अंकुर जब प्रगटे भेटिओ पुरखु रसिक बैरागी।
मिटिओ अंधेरु मिलत हरि नानक जनम जनम की सोई जागी॥
पृष्ठ - 204

इस प्रकार ,जब तक दुख से बेगाना पन दूर नहीं होता और मनुष्य नफरत करता है, अगम अगोचर के मार्ग पर चलने के लिए दरवाज़ा बन्द ही रहता है क्योंकि यह द्वार है ही दुखों का जिस की रक्षा रोह (क्रोध) कर रहा है। दुख तथा सुख को सम समझकर हम आगे बढ़ सकते हैं। इस द्वार की रक्षा करने वाले रोह के साथ हमें जूझने के लिये चार वृत्तियाँ अपनानी पड़ती हैं जिनके नाम हैं - करुणा, मैत्री, मुदता, उपेक्षा।

एक बार पाँचवे पातशाह हजूर महाराज के पास बहुत दूर देश से गुरसिख आये। उन्होंने प्रार्थना की कि ''महाराज! कलयुग का समय है। आपका फ़रमान है –

कलजुगि रथु अगनि का कूड़ु अगै रथवाहु॥ *पृष्ठ – 470*

सारे संसार में झूठ का व्यवहार चल रहा है और सच आलोप हो रहा है। हम आप जी के वचन पालन करने का पूरी तरह से यत्न करते हैं पर हमारा मन पांच चोरों द्वारा बहकाया हुआ स्थिर नहीं रहता और अनेक प्रकार के दुष्ट भाव हमारे हृदय में प्रवेश करते रहते हैं जिस के फलस्वरूप हमें नाम जपना बुहत कठिन लगता है। ईर्ष्या, निन्दा, वैर आदि हिंसक भाव मन में उठते रहते हैं। सच्चे पातशाह! क्या किया जाये? आप हमारी प्रार्थना सुनकर बताओ कि हम क्या करें? गुरू महाराज जी ने कहा कि प्यारे गुरसिखो! आप चार चार ब्याह और करवा लो। यह सुन कर सभी हैरान हो गये और कहा कि सच्चे पातशाह। हमें एक विवाह को सम्भालना कठिन हो रहा है, ऐसा करने से तो घर में महाभारत का युद्ध शुरू हो जायेगा हम आप के वचनों को पूरी तरह से समझ नहीं सके। गुरू महाराज जी ने फ़रमान किया कि हम शारीरिक विवाह के लिये नहीं कहते पर मन के विवाह के लिये कहते हैं कि मन को करूणा, मुदता, मैत्री, उपेक्षा नामक स्त्रियों से विवाह करवाना आवश्यक है जिस से इस मन की परेशानी दूर हो सके। वह इस प्रकार है कि जब आप देखो कि हम तो अमीर हैं दूसरा आदमी गरीब है, दुखी है, मज़बूर है, उस समय करुणा वृत्ति द्वारा उस के दुख को दूर करने के लिये उस पर दया करो और यथाशक्ति उस की सहायता करो ऐसा करने से तुम्हारा चित प्रसन्न रहेगा पर भूल कर भी अभिमान मत करना कि मैने सहायता की है। अभिमान करने पर इस नेक कर्म का फल नष्ट हो जाया करता है। यदि तुम्हारे बराबर का है उस के साथ ईर्ष्या नहीं करना उस के साथ मैत्री वृत्ति द्वारा सम्बंध बनाने चाहियें। जिस के पास तुम्हारे से अधिक धन है उस के साथ ईर्ष्या हो जाना स्वाभाविक है। जिस के हृदय में ईर्ष्या उत्पन्न हो जाये उस के द्वारा किये गये नेक कर्म सभी विफल हो जाते हैं जैसा कि –

जिसु अंदरि ताति पराई होवै तिस दा कदे न होवी भला।
पृष्ठ – 308

ईर्ष्या एक बहुत बुरी बीमारी है जिस में अपना नुकसान करवा कर भी दूसरे का नुकसान करना चाहता है। उस पर महापुरूष एक कथा सुनाया करते हैं। एक बार एक प्रेमी किसी नगर में रहता था उस के पास

गुज़ारे के लिये बहुत कम माया थी उस के खर्चे पूरे नहीं हुआ करते थे। घर वाली ने कहा कि मैंने सुना हुआ है कि यदि सन्तों की सेवा की जाये और यदि वह सेवा से प्रसन्न हो जायें तो चार पदार्थ बख्श दिया करते हैं। जिनके नाम-धर्म, अर्थ, काम मोक्ष हैं। जीवन में धर्म के गुण जैसे दया, क्षमा, धीरज, अहिसां, विनम्रता, पवित्रता, शील दान आदि सभी गुण प्रवेश कर जाया करते हैं जो जीव को सदा ही सुखी रखते हैं। इन गुणों के समूह को धर्म कहते हैं और धर्म सारी सृष्टि का एक ही होता है। सम्प्रदाय समय की आवश्यकता के अनुसार महापुरूष, अपने ढंग से बना लिया करते हैं, उन्हें आम बोली में शरां (नियमावली) कहते हैं। ये नियम हर सम्प्रदाय के अलग अलग होते हैं। सो इस धर्म की प्राप्ति महापुरूषों की सेवा करने से होती है। अर्थ-पैसे टके की छूट मिल जाना, कारोबार अच्छा चल जाना किसी कार्य में पैसे की कमी के कारण रूकावट न पड़ना ये भी महापुरूषों की सेवा करने से प्राप्त हो जाता है। सभी शुभ कामनाएँ, वासनाएँ सन्त सेवा से पूरी हो जाया करती हैं इन सब से उत्तम पदार्थ जिसे मुक्ति कहा जाता है, उनकी संगत प्राप्त करके और उनके शुभ वचनों की कमाई करके, श्रवण, मनन, निधिआसन से प्राप्त हो जाया करती हैं। पत्नी कहने लगी कि आप किसी महापुरूष की सेवा करो वह सेवा से प्रसन्न हो कर चारों पदार्थ बख्श देगें अपना जीवन निर्वाह अच्छा चल पड़ेगा। गुरू महाराज जी का भी ऐसा ही फ़रमान है -

चारि पदारथ जे को मागै। साध जना की सेवा लागै।
जे को अपुना दूखु मिटावै। हरि हरि नामु रिदै सद गावै।
जे को अपुनी सोभा लोरै। साध संगि इह हउमै छोरै।
जे को जनम मरण ते डरै। साध जना की सरनी परै।
जिसु जन कउ प्रभ दरस पिआसा।
नानक ता कै बलि बलि जासा॥ *पृष्ठ - 266*

इस शिक्षा से प्रेरित हो कर वह एक महापुरुष के पास चला गया जब काफी सेवा की तो महापुरुष प्रसन्न हो गये तो एक दिन आपने उसे पूछा, ''तेरी सेवा करने का क्या मनोरथ है?'' उस ने बताया कि ''महाराज! घर में गरीबी का बोल बोला है, कोई भी काम जिसे भी हाथ लगायें सिरे नहीं चढ़ता। हर काम में विघ्न पड़ता है इतने गरीब हो गये हैं कि दो वक्त का हमारा गुज़ारा नहीं चलता, आप कृपा करो, मेरे पर बख्शीश कर दो। महापुरुष कहने लगे,''कल अमृत बेला में हमारे पास आना तेरी भावना के अनुसार तुझे कुछ दिया जायेगा।'' दूसरे दिन महापुरूषों के सम्मुख खड़े हो कर नमस्कार की और प्रार्थना की कि '' महाराज! आप जी ने मुझे हाज़िर होने का हुक्म दिया था क्योंकि मैंने प्रार्थना की थी हम बहुत

गरीब हैं।'' यह सुनकर महापुरूषों ने एक शंख उस के हाथों में पकड़ा दिया और कहा कि, हे भद्रपुरूष! अपने घर जा कर, जगह पवित्र करके अच्छी तरह से साफ एंव स्वच्छ पवित्र करके उस पर आसन लगा कर बैठ जाना। इस शंख को चौकी पर रख कर धूप आदि देना, जो कुछ तेरी इच्छा मांगने की हुआ करे, यह शंख बजा देना, तेरी इच्छा पूरी हो जाया करेगी। पर इस में एक बहुत बड़ा दोष है जो शायद तुझे अच्छा न लगे। वह यह है कि जब तू कुछ मागेंगा तेरे शरीके वालों (परिवार के अन्य सदस्य) को बिना मांगे ही दुगनी वस्तु प्राप्त हो जाया करेगी। कहने लगा, ''महाराज ! मुझे तो अपना गुज़ारा करने तक की गरज़ है, मैंने क्या लेना है उनसे चाहे वे कितने ही बड़े अमीर क्यों न बन जाएं।'' महापुरूषों से शंख लेकर घर आ गया। घर वाली को सारी बात बताई। अपनी आवश्यकताएं पूरी करने के लिये शंख बजा दिया करता, उस के पास कोठी भी हो गई, गाय भैसें भी हो गई, जमीन-जायदाद, पैसा भी हो गया पर उस के शरीक के पास सब चीजें दुगुनी हो गई। इन चीजों को देखकर उस के अन्दर ईर्ष्या की आग की लपटें उठने लगीं। पत्नी भी उदास हो गई कि मेहनत तो तूने की है इन्होंने (शरीक) कुछ भी नहीं किया और इनके पास हर चीज़ दुगुनी हो रही है। अब हमने शंख नहीं बजाना। उन के साथ बोल-चाल भी बंद हो गई, ठण्डी आहें भरने लगे, एक जलन हृदय में पैदा हो गई। काफी समय बीत गया, भूख भी कम हो गई, माथे पर बल पड़ गये, नेत्रों में क्रूरता आ गई, मुख में फीका पन समा गया। हर वक्त क्रोध में भरे रहते। सो इस प्रकार कुछ समय बीतने के बाद उस प्रेमी ने एक दिन अपनी पत्नी से कहा कि आज तू जगह को लीप, आज शंख की पूजा करके मैं ऐसा कुछ मागूँगा कि तू हैरान हो जायेगी और अपने दुखों का अन्त हो जायेगा यह बात सुनकर उस की पत्नी को कुछ साहस मिला। शंख साफ जगह पर चौकी के ऊपर रख दिया। इसने कहा, ''हे शंख देवता, हमारी एक एक आँख अन्धी कर दे।'' स्वभावतया शरीकों की दो आँखे अन्धी हो जानी थी सो हो गई। उस समय दूसरी माँग रख कर शंख बजाया और कहा कि मेरे दरवाज़े के आगे साथ लगता एक कुआँ बन जाये शरीक के घर के आगे दो दो बन गये। वे बहुत घबराये और हैरान हो गये कि हमारी आँखों की ज्योति क्यों जाती रही। कुएं का उन्हें कोई पता नहीं था क्योंकि नेत्रों की ज्योति तो पहले ही खत्म हो चुकी थी। वे जब घर से बाहर निकलें तो कुएं में धड़ाम से गिर पड़ें। ये दोनों अपनी कानी आँखों से देख देख कर प्रसन्न हो रहे हैं। सो यह ईर्ष्या बहुत बुरी बिमारी है। यह मानसिक रोग है क्योंकि ईर्ष्यालु व्यक्ति हर समय दूसरे को नुकसान पहुचाँने की सोचता

रहता है गुरू महाराज जी कहने लगे कि इस का इलाज यह हुआ करता है कि जिस के पास अपने से अधिक धन नाम, सवारियाँ तथा सहुलियतें हो उस की प्रशंसा करनी चाहिए इस के साथ ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए। सो इस प्रशंसा वृत्ति का प्रयोग करके हृदय में जलन पैदा नहीं होगी। सांसारिक यात्रा करते हुये द्वैत के अधीन होकर जीव कई बार, दूसरे के साथ वैर भाव करता हुआ उसका बुरा सोचता है,उसे जान से भी मार देता है। यह अनजान मूर्खों की बातें हैं क्योंकि ऐसे कर्म करने से दुःख और बढ़ जाया करते हैं। गुरू महाराज जी कहने लगे,''जब किसी के साथ वैर पड़ जाने का सन्देह हो जाये तो उससे मिलना जुलना कम कर दो, इतना दूर हो जायें कि वह तुम्हें भूल ही जाये और तुम उसे भूल जाओ। इस वृत्ति को उपेक्षा वृत्ति कहते हैं इसका प्रयोग करने से दुख कम हो जाया करते हैं, उलझनों से मनुष्य बच जाता है।

अगम अगोचर के मार्ग (आत्म मार्ग) पर चल कर अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उस समरथ गुरू की आवश्यकता है जिस ने यह संसार सफर स्वंय तय कर लिया हो और संसार में जिज्ञासुओं का भला कर रहा हो, उन्हें मायिक नींदों से जगाकर प्रभु के द्वार की ओर भेज रहा हो, क्योंकि इस मार्ग की चाबी पूरे सतगुरू के पास है जैसा कि फरमान आता है –

गुरु कुंजी पाहू निवलु मनु कोठा तनु छति॥
नानक गुर बिनु मन का ताकु न उघड़ै अवर न कुंजी हथि॥
पृष्ठ - 1237

यह सत्य के द्वार की चाबी क्योंकि अकालपुरूष द्वारा ही गुरू को सौंपी गई है वह प्रभु के द्वार का भेदी है ऐसे समझ लो कि गुरू परमेशवर का सगुण स्वरूप होता है तथा जिज्ञासुओं के उद्धार के लिये जिस रूप में काम कर रहा होता है, उसे गुरू कहा जाता है। इस के बारे में फरमान है –

समुंदु विरोलि सरीरु हम देखिआ इक वसतु अनूप दिखाई।
गुर गोविंदु गुोविंदु गुरू है नानक भेदु न भाई॥ पृष्ठ - 442

वाहिगुरू जी ने बाहर से आ कर नहीं मिलना, वह तो इस शरीर में ही रोम रोम, कण कण में निवास करते हैं, केवल माया ने जबरदस्त भ्रम डाला हुआ है इसलिये शरीर में काम करने वाली चेतन ज्योति ने जो जाग्रत शरीर brain (दिमाग) द्वारा पैदा की गई है वह सुरत बहुत ही सीमित है। इस प्रकार है जैसे जहाँ से बिजली पैदा होती है वहाँ से जब इसे संग्रह कर आगे भेजते हैं तो 11000 वाट के रूप में यह बड़े

बड़े खम्बों में से हो कर अलग अलग शहरों, प्रान्तों में जाती है। इस की शक्ति को सीमित करने के लिए जगह जगह पर ट्रांसफार्मर लगाये जाते हैं तथा हमें 220 वाट की बिजली प्राप्त होती है जो तारों द्वारा अनेक कार्य करती है। अमेरिका वगैरा में यह 110 वाट की होती है। जब यह Medical treatment (इलाज) के लिये प्रयोग की जाती है तो इस की शक्ति और भी कम कर दी जाती है। जैसा काम लेना होता है, उतनी पावर (ताकत) की बिजली अलग अलग मशीनों में काम करती है इस की विशेष Power (शक्ति) मापी जाती है। आवश्यकतानुसार घटाई बढ़ाई जा सकती है। कहीं यह हज़ारों horse power का काम करती है। कहीं यह बहुत कम एक horse power का, कहीं आधी horse power का और उस से भी कम जितनी आवश्यकता हो इस के अनुसार काम करती है। इस प्रकार जो परम चेतन शक्ति है, वह किसी सीमा (limit) में नहीं है पर जिस प्रकार के शरीर में प्रवेश करके जितनी सत्ता वह शरीर के साथ सम्भाल सकता है उस के अनुसार काम करती है उतना ही बल और वैसी ही सोच उस शरीर में उत्पन्न हुआ करती है, जैसा कि फरमान है –

पसरिओ आपि होइ अनत तरंग।
लखे न जाहि पारब्रहम के रंग।
जैसी मति देइ तैसा परगास।
पारब्रहमु करता अबिनास॥ ***पृष्ठ - 275***

जैसी दिमाग (brain) में शक्ति है और जिस प्रकार के मायिक गुण शरीर के अन्दर कम या अधिक कार्य कर रहे हैं वैसी ही सूझ बूझ मनुष्य की हुआ करती है। जब यह होश मानवीय मन में पैदा होती है तो वह अपनी अलग हस्ती का अनुभव करता है और इसके अन्दर दो भाव हंगता तथा ममता एक दम पैदा हो जाया करते हैं। यह भाव, पैदा होते ही जो सुरत इसमें समय के साथ बढ़ती जाती है वह अपनी अलग दुनियां अलग अस्तित्व सृजन करती है, उसके अपने हित बनते हैं, उसकी प्राप्तियाँ, उसकी अपनी होती हैं, उसके अन्दर अनेक विचार पैदा होते हैं जैसे किसी नदी का पानी उछलकर छोटे छोटे गड्ढों को भर देने के बाद नदी अपने किनारों के बीच में बहने लग जाती है। समय तथा वातावरण के अनुकूल प्रतिकूल वह पानी गन्दा होना शुरू हो जाया करता है। उसमें अनेक प्रकार के कृमि पैदा होने शुरू हो जाया करते हैं। वह पानी पीने के काम में नहीं आ सकता, वह दूषित हुआ जल बदबू देने लग जाता है, यह सब क्यों होता है? क्योंकि वह मुख्य स्त्रोत से टूट गया और उसका एक छोटा सा अलग अस्तित्व कायम हो गया। इसी तरह से यह जीव अपनी ca-

pacity (क्षमता) के अनुसार परम ज्योति से प्रतिबिम्बत होकर अपने अन्दर अपनी ही दुनियाँ महसूस करता है और मानता है कि मैं हिन्दू हूँ, सिख हूँ, ईसाई हूँ, मुसलमान हूँ, बौद्धी हूँ, जैनी हूँ, पारसी हूँ, या जिस सम्प्रदाय के साथ सम्बन्ध रखता हो वही अपने आप को मानने लग जाता है चाहे आधारभूत तत्व उसी प्रकार के हैं जैसे शूद्र तथा ब्राह्मण के होते हैं। एक स्थान पर कबीर साहिब जी कटाक्ष करते हुये फ़रमान करते है –

जौ तूं ब्राहमणु ब्रहमणी जाइआ।
तउ आन बाट काहे नही आइआ॥
तुम कत ब्राहमण हम कत सूद।
हम कत लोहू तुम कत दूध॥ *पृष्ठ - 324*

अपने आप को अनेक सम्प्रदायों से भर लेता है और यह भी कहता है कि मैं काला हूँ, गोरा हूँ, अमीर हूँ, गरीब हूँ, सुखी हूँ, दुखी हूँ, मैं कमज़ोर हूँ, मैं ताकतवर हूँ मुझ में बहुत ताकत है, मैं निर्बल हूँ ऐसी द्वन्द से भरी भावनायें यह सीमित होश उसी तरह से पैदा कर लेती हैं जैसे नदी से अलग हुआ पानी अनेक प्रकार के विकार धारण करके गन्दा हो जाता है। इसकी सीमित होश में बहुत ही खतरनाक मगरमच्छ पैदा हो जाते हैं चाहे उनका कोई शरीर नहीं पर उनमें इतनी शक्ति है कि इस शरीर को एक क्षण में होश मण्डल में से निकाल कर बेहोश कर देते हैं। जैसे क्रोध शक्ति है। जब आता है तो किसी की भी शर्म नहीं करता, न गुरू का लिहाज़ करता है, न ही मित्रों, दोस्तों की शर्म करता है। ऐसे काम करवा देता है जिनके हो जाने के बाद बहुत पश्चाताप करना पड़ता है। गुरू महाराज जी ने तो ऐसा फ़रमान किया है कि प्रेमियो! यदि कोई छूत (भिट) लगती है जिससे मनुष्य स्पर्श करने से अछूत हो जाता है, वह क्रोध ही है इसलिये फ़रमान हुआ –

ओना पासि दुआसि न भिटीऐ जिन अंतरि क्रोधु चंडाल॥
पृष्ठ - 40

यह जब मनुष्य के अन्दर प्रवेश करता है तो उस समय इस सुन्दर काया को ऐसे गला देता है जैसे सोने को ढालने के लिये सुहागा डाला जाता है –

कामु क्रोधु काइआ कउ गालै। जिउ कंचन सोहागा ढालै।
पृष्ठ - 932

इस शरीर में नाम धन का जो अमृत प्याला रखा गया है ये उसे लूट लेते हैं। यह विचार तथा इसके साथी काम क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, निन्दा, चुगली, वैर भाव, द्वैत, गफलत, जलन आदि अनेक अवगुण उस नाम धन को या ऐसे कह लो उस औषधि को जो शरीर के अन्दर

प्रभु ने रखी हुई है उसे लूटते हैं -

इसु देही अंदरि पंच चोर वसहि कामु क्रोधु लोभु मोहु अहंकारा।
अंम्रितु लूटहि मनमुखि नही बूझहि कोइ न सुणै पुकारा।

पृष्ठ - 600

गुरू महाराज जी हरि औषधि के बारे में फ़रमान करते हैं -

हरि अउखधु सभ घट है भाई। गुर पूरे बिनु बिधि न बनाई।
गुरि पूरै संजमु करि दीआ। नानक तउ फिरि दूख न थीआ॥

पृष्ठ - 259

वाहिगुरू जी ने इस कीमती नाम वस्तु तथा सदगुणों के समूह की रक्षा के लिये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ भी दी हैं पर ये भी काम नहीं कर रहीं क्योंकि सभी रक्षक ठगौरी बूटी के सूंघने से बेहोश हो गये हैं इस बूटी की विष ने मनुष्य की होश को बेहोशी में बदल दिया है। जब रक्षक ही सो गये, जब होश ही खत्म हो गई तो नाम लूटना और भी बहुत आसान हो गया, जो इस शरीर के कण कण में भरपूर है, वे इस धन को लूट कर शरीर को साहसहीन, कड़वा और बदबूदार बना देते हैं। फ़रमान है -

नैनहु नींद परद्रिसटि विकार। स्रवण सोए सुणि निंद वीचार।
रसना सोई लोभि मीठै सादि। मनु सोइआ माइआ बिसमादि॥
इसु ग्रिह महि कोई जागतु रहै। साबतु वसतु ओहु अपनी लहै॥
सगल सहेली अपनै रस माती। ग्रिह अपुने की खबरि न जाती।
मुसनहार पंच बटवारे। सूने नगरि परे ठगहारे॥
उन ते राखै बापु न माई। उन ते राखै मीतु न भाई।
दरबि सिआणप ना ओइ रहते।
साध संगि ओइ दुसट वसि होते॥ *पृष्ठ - 182*

गुरू महाराज जी इस क्रोध का प्रभाव बताते हुये फ़रमान करते हैं -

हे कलि मूल क्रोधं कदंच करुणा न उपरजते।
बिखयंत जीवं वस्यं करोति निरत्यं करोति जथा मरकटह।
अनिक सासन ताड़ंति जमदूतह। तव संगे अधमं नरह।
दीन दुख भंजन दयाल प्रभु नानक सरब जीअ रख्या करोति॥

पृष्ठ - 1358

क्रोध बहुत बड़ा सूरमा है, वह हर समय अज्ञान की रक्षा करता है। मोह राजा का विश्वास पात्र है पर उसका विरोध हर समय ताकतवर शान्ति करती रहती है पर क्रोध यह कहता है -

सवैया - प्रभु मोहि सुनी यहि बात कहे
तुमरे संग सांति विरोध कमाए।
सरधा हरि की पुन भगति तथा
तिनकी येह दोन भई सु सहाए।

मम जीवत शांति की बात कहां
यह चाहत तीनहि प्राण गवाए।
भुज को बल नाथ कहा कहीए
कछु भाखत हो सु सुनो मन लाए॥ १३४

कहने लगा, कहते हैं कि शान्ति मेरा विरोध कर रही है। श्रद्धा और भक्ति मेरे साथ वैर करने में उसके सहायक हैं पर मेरे सामने इन तीनों बहनों की क्या ताकत है कि वे एक पल भर के लिये भी खड़ी हो सकें। मैं शरीर में आता हूँ तो ये जैसे अन्धेरी आती है और मच्छर उड़ जाते हैं ऐसा ही हाल इनका हुआ करता है। कहने लगा, सजग नेत्रों वालों को भी मैं अन्धा कर देता हूँ, कानों वालों को धैर्य विहीन कर देता हूँ और चतुर पुरुषों की मति भ्रष्ट कर देता हूँ। मैं जिसके हृदय में भी पैर टिका लूँ उसका ध्यान कभी भी भले कार्य में नहीं लगने देता। चाहे कितना भी पढ़ा लिखा क्यों न हो, कितनी डिग्रियां क्यों न प्राप्त की हों, पर मैं एक क्षण में ही उसे मूर्ख की पदवी प्राप्त करवा देता हूँ। विद्वानों की पदवी के लिये तो उसने 15-20 साल घोर तपस्या की तो लोग उसे विद्वान कहने लगे पर मेरे अन्दर इतनी ताकत है कि मैं पल भर में उसे सब कुछ भुला देता हूँ।

पड़िआ मूरखु आखीऐ जिसु लबु लोभु अहंकारा।   पृष्ठ - 140

और मैं मति भ्रष्ट करके अन्धा कर देता हूँ, जैसे -

अन्ध करो द्रिग वंतन को,
श्रत वंतन को बधरो कर डारों।
ध्रित वंतन को सु अधीर करो,
पुन चातर की मति दूर निवारों।
हित कारज नांहि पिखै कबहीं,
जिन के उर भीतर मैं पग धारों।
हित आतम को न सुनै कबहीं,
पड़िओ जितनो खिन मांहि बिसारों॥ १३५

लोभ क्रोध का मित्र है उसने भी अपनी ताकत के बारे में बताते हुये कहा कि हे मित्र! जैसे तू ताकतवर है, मेरे अन्दर भी इतनी ताकत है कि मेरा मुकाबला भी बड़े बड़े महारथी नहीं कर सकते। मैं एक पल में मति नष्ट कर देता हूँ। इतने फुरने पैदा कर देता हूँ कि उसकी होश ऐसे डाँवा डोल हो जाती है जैसे कोई बहुत तेज नदी भंवरों के तेज वेग में किसी तैराक को घेर लेती है। कहने लगा, ''ऐ मेरे मित्र क्रोध! मैं तो मनुष्य की बुद्धि पूरी तरह से नष्ट कर देता हूँ, मेरे वश में पड़ा हुआ वह दिन में भी और रात में भी धन की, जायदाद की चितवना में से नहीं निकल

सकता। मैं धर्म कर्म का नाश करके ऐसे काम करवा देता हूँ जो कभी सोचे भी नहीं होगें, चित्त में कभी आये ही नहीं होंगे। मैं जब किसी पुरुष पर हावी हो जाता हूँ सब से पहले उसके दिव्य मन को उसके कर्मों धर्मों से बाहर निकाल लेता हूँ फिर चाहे वह कितने भी पाठ क्यों न करे, कितनी आँखे क्यों न बन्द किए जाये उसकी वृत्ति मेरे चारों ओर ही घूमती रहती है -

सवैया - *जिन के सिर ऊपर हाथ धरों*
तिन की सु दशा सुन मीत बतावै।
सु मनोरथ की सरित पर कूलहि
नांहि कदाचित ते नर पावै॥
तिन के उर अंतर सांति कहां
नर जो धन को दिन रैन धिआवै।
अब क्रोध सखे सुनीये सु कहों
जिह भांतन ते धन मैं मन लावै॥ १३६

जब मेरे वश में जीव आ जाता है तो उसकी सारी सोच मेरे चारों ओर ही घूमती रहती है। वह अपनी प्राप्त की हुई माया, जायदाद, सवारियों में ही सदा मस्त रहता है। भूल कर भी परमेश्वर की ओर नहीं जाता। मैं ऐसे काम बता सकता हूँ जो कभी चित्त में भी न आएं।

इस पर एक कथा आती है कि भक्त कबीर जी ताना बुन रहे थे बहुत सारे साधु आए उनके देखते देखते एक वृद्ध पुरुष आया उसके पास एक उलझा हुआ ताना था। कबीर साहिब को आकर कहने लगा कि भगत जी! मेरी लड़की का विवाह है मैं गरीब आदमी हूँ। ताने और बाने का सूत मेरे पास है पर यह बहुत उलझा पड़ा है मैं इसे बुढ़ापे के कारण सुलझा नहीं सकता। भगत जी! आप प्रभु के भक्त हो प्रभु के आदमियों को प्यार करते हो आप कृपा करके इस सूत का वस्त्र बना दो ताकि मैं अपना कार्य ठीक समय पर सिद्ध कर सकूँ, कबीर साहिब ने उस सूत को सुलझा कर Tools (रच्छ) में डाल दिया और कुम्बल में बैठकर कपड़ा बुनना शुरू कर दिया और अभी थोड़ी सी नलियां ही डाली थीं। पुराना सूत होने के कारण बहुत कम चलती थीं और आप बड़ी सावधानी के साथ रछ बदल कर सूत बुन रहे थे। बहुत मेहनत कर रहे थे ओर यह सारा काम मुफ्त ही कर रहे थे। साधुओं के साथ वचन वार्ता भी किये जा रहे हैं और हाथों पैरों से काम भी कर रहे थे। इतनी देर में साधु क्या देखते हैं कि एक बहुत ही सुन्दर वस्त्र पहने अनेक प्रकार के आभूषण पहने एक स्त्री आई, देखने में कोई रानी महारानी लगती थी उसने एक

रेशम का सूत निकाला जो सुलझा हुआ था और साथ ही ऐसे कहा भगत जी! यह कपड़ा मुझे बहुत जल्दी चाहिये मुझे यहाँ के लोगों ने बताया है कि तुम्हारे जैसा और इस शहर में शायद ही कोई बुनता हो। मज़दूरी में उतनी ही दे दूँगीं जितनी आप मागेगें उससे भी अधिक मैं इनाम दे दूगी। वह जब हाथ हिलाती है तो छन-छन की आवाज़ होती है। कबीर साहिब जी ने दीर्घ दृष्टि से देखा कि यह तो छल करने वाली माया रूप धारण करके आई है। कबीर जी कुम्बल में से निकल कर सूत काटने वाली छुरी पत्थर पर घिसाने लगे। उसने भी भांप लिया कि इन्होनें मुझे पहचान लिया है कहीं ऐसा न हो कि यह मुझे रूप से कुरूप कर दें क्योंकि बाणी में ऐसा फ़रमान है -

नाकहु काटी कानहु काटी काटि कूटि कै डारी।
कहु कबीर संतन की बैरनि तीनि लोक की पिआरी।पृष्ठ - 476

वह उठी और बिना कोई बात किये वहाँ से चली गई। सन्तों ने पूछा कबीर जी! वह स्त्री डर के मारे चली क्यों गई, देखने में तो वह कोई रानी महारानी लगती थी पर यह कैसी घटना घटित हुई? इस समय कबीर जी ने कहा कि हे सन्तों! वह तो माया का साकार रूप धारण करके आई है जो जप करने वालों का जप भंग कर देती है तपस्वियों का तप छुड़वा देती है, ऊँचे पहुँचे हुए को नीचे गिरा देती है, संसार में कलह, क्लेश इसके द्वारा ही डाले गये हैं। वह उन क्लेशों की जन्म दात्री है जिनका वर्णन पातंजलि ऋषि ने अपने योग शास्त्र में किया है। सो हमारा इरादा देखकर वह चली गई क्योंकि हमने इसके नाक कान काट देने थे। चाहे इन बातों का भाव आन्तरिक सम्बंध रखता है, पर समझाने वाली प्रतीक बना कर रखना पड़ता है। साधु कहने लगे कि इसके पिछले और अगले बाल क्यों नहीं हैं सिर पर? कबीर साहिब कहने लगे कि यह बात माया को ही बुला कर पूछ लो। आवाज़ लगाई तो माया तुरन्त चरणों में हाज़िर हो गई। कहने लगी, "मैंने सारी दुनियां को देवताओं सहित भ्रम में डाल रखा है, इस भ्रम के अन्धेरे में से कोई भी नहीं निकल सकता। पर सन्तों ने इतना प्रकाश डाला है कि मेरी सन्त मण्डल में कोई पेश नहीं चलती। मैं अभी भी तुम्हें भ्रमित करने आई थी क्योंकि मेरा अपने पति देव ईश्वर के साथ विवाद चल रहा था, वह यह था कि मैंने उन्हें कहा कि हे भगवान! तेरे भक्त दिन रात तेरा प्रचार करते हैं, बड़े ही मनमोहक मन्दिर, मठ, मस्जिदें बनाये हुये हैं जहाँ दिन रात परमात्मा के नाम का प्रचार होता है तथा सदा ही मुझे माया नागिन कह कह कर बुलाते हैं और मुझे सन्तों की वैरिन कहते है। अनेक प्रकार की बातें उन्हें बताते हैं कि बुरे कर्म करने से जीव नरकों में जाता है और वहाँ नरकों के दुख

भोगता है पर यदि आप वास्तविकता देखो तो आप मेरी इस बात से सहमत हो जाओगे कि ये सभी प्रचारक, मस्जिदों मन्दिरों, धर्म स्थानों के प्रबन्धक, ज्ञानी, दानी आदि वास्तव में मेरे ही आदमी हैं। यदि भला आप यह कहें कि वे मेरी सेवा कर रहे हैं, दान दे रहे हैं तो भी मुझे प्राप्त करने के लिये कर रहे हैं, वह प्रशंसा चाहते है अपनी। अन्दर वासना काम कर रही है चाहे मैंने कभी भी अपना प्रचारक संसार में नहीं भेजा। आप अपने भक्तों को भेजते हो फिर उन्हें प्रकट करने के लिये आप कभी नरसिंह रूप धारण करके जाते हो, कभी गरुड़ पर चढ़ कर जाते हो, कभी कोई रूप धारण करते हो, कभी कोई रूप धारण करते हो। इतना प्रत्यक्ष देख कर भी कोई तुम्हारे पीछे नहीं लगता और सभी मेरे ही भगत हैं। आप प्रत्यक्ष देख लो, शराबखाने (Pub), नाटक चेटक, (नाच गाने) नगेंज़ संसार में देख रहे हो। बिना प्रचार किये ही अपने आप हो रहा है। तुम्हारे भजन में किसी का मन नहीं लगता, मेरी ओर सभी आकर्षित रहते हैं। मुझे ही प्रिय समझते हैं, तुम्हारी तरफ तो कोई भी नहीं आता जो तुम्हारे आदमी दिखाई दे रहे हैं वे मेरे है साधु संगत भी आडम्बर रच रहे हैं, मेरी ही मांग उनके हृदयों में समाई रहती है, कीर्तन करते हैं, सुरत पैसे टके पर रहती है, माया में रहती है तेरा भजन कीर्तन करने के लिये माया का ही सौदा करते हैं। कोई चढ़ावा लेता है, कोई बाजे पर रुपये रखवाता है। कोई विरला ही है जो तेरा आदमी हो सकता है पर यदि मैं परखूं तो असलियत का पता चल जायेगा। मुझे तो लगता है कि सभी मेरे ही भगत है। भगवान कहने लगे, ''नहीं, मेरे बहुत बड़े बड़े भगत है जो तेरी पेश नहीं चलने देते।'' इस वाद विवाद के अर्न्तगत मैंने भगवान से प्रार्थना की कि मुझे कोई अपना भगत दिखाओ जो मुझ से निर्लेप हो, मेरा जलाल तो इतना जबरदस्त है कि देखते ही भक्ति भूल जाती है। वह तो आप उनकी मदद करते हो तब कहीं जाकर विजय प्राप्त करते हैं। अब आपने यदि यह बात देखनी है तो जब मैं अपने प्रभाव दिखाऊँगी तो आप अपने भक्त की मदद मत करना। भगवान ने कहा ठीक है। सो इस प्रकार उन्होनें एक सेठ को दिखलाया कि वह माया से निर्लेप है। देख! इसने साधुओं के ठहरने के लिये कितने कमरे बनवाये हुये हैं, अपनी किरत में से लंगर, वस्त्र शुभ कमाई में से दान देता है, हर रोज़ एकाग्र चित्त होकर मेरा नाम जपता है, इसी तरह इसका परिवार भी मेरा भक्त है। कहती है मैंने देखा और सहज भाव ही भगवान से कहा कि आप इसकी सराय में रह कर तो देखो यदि मैंने आपको धक्के न मरवाये तो मेरा नाम बदल देना। भगवान ने वृद्ध का रूप धारण किया, सेठ के घर चले गये। सेठ ने बहुत आदर मान किया, चरण वन्दना की और सेवा पूछी तो भगवान ने

कहा कि हमने 42 दिन का एक जप करना है। हमें कोई ऐसा अकेला स्थान चाहिए जहाँ हमें कोई भी इन 42 दिनों में विघ्न (disturb) न डाले और कोई भी हमारे पूजा पाठ में दखल न दे, उस सेठ ने उन्हें सराय के अच्छे अच्छे कमरे दिखाये पर भगवान ने वह कमरा चुना जिसमें सेठ ईंधन वगैरा रखा करते थे। वह कहने लगे कि यह कमरा हमारे लिये ठीक है। हो सकता है कि कोई आपके जान पहचान वाला आदमी आ जाये और तुम्हें बड़े कमरे देने पड़ जाएं। फिर तुम मुझे कमरा छोड़ देने को कहो और ऐसा करने से मेरे जप में विघ्न पड़ जायेगा। सो भगवान ने कोयले रखने वाला कमरा अपने पास रख लिया और दरवाज़े बन्द कर लिये। मैंने दूसरे दिन ही अपनी शक्ति के साथ अनेक रूप धारण कर लिये तथा महारानी का रूप धारण करके उसकी सराय के आगे रेशमी तम्बू डालकर थोड़े समय के लिये रुक गई। सेठ ने मुझे कहा कि कमरों में आ कर रहो। मैंने उसे कहा कि हमने जल पान करना है, रसद का सामान चाहिए। मेरे साथ सौ के करीब दासियाँ हैं, इतने ही नौकर चाकर हैं। इस तरह उसको जो माया दी गई थी उससे वह सामान ले आया। हमने जल पान तैयार करके खाया। सेठ ने कहा कि कोई सेवा मेरे लायक बताओ तो मैंने उसे कहा कि जितने बर्तन इकट्ठे हो गये हैं, ये हम एक बार ही प्रयोग करते हैं, दोबारा नहीं प्रयोग करते आप इतना सा कष्ट कर दो यह जो सोने का कुण्डा, ये बड़ी बड़ी बाल्टियाँ, पानी पीने वाले भारी बर्तन ये सभी उठाकर किसी कूड़े के ढेर में फैंक दो। सेठ के लड़के भी वहीं खड़े थे कहने लगे यह सेवा हम अभी कर देते हैं, उन्होंने सारे बर्तन इकट्ठे किये, सीधे अपने घर ले गये, लाखों रुपये के हीरे जवाहारत उनमें लगे हुये थे। उन्होंने सलाह बनाई कि यदि यह महारानी दो चार दिन भी ठहर जाये तो हमारे पास इतना धन हो जायेगा जो कई पीढ़ियो तक खत्म नहीं हो सकेगा। वे आकर हाथ जोड़ कर कहने लगे आप कुछ दिन हमारे पास ठहरो और इस सराय के बहुत सुन्दर कमरे हैं, हर प्रकार की सहुलियत इनके अन्दर हैं आप इन कमरों में आराम करो। मैंने कहा आराम तो हमने नहीं करना है पर इस सराय में कोई पुरुष नहीं होना चाहिए। मैं कमरे देखने लगी। एक एक करके कमरा देखती गई पर जब भगवान जिस कोयले वाले कमरे में बैठे थे वहाँ पहुँची तो मैंने कहा इसे खोल कर दिखाओ। उन्होंने कहा कि यहाँ तो कोई बूढ़ा सा ब्राह्मण है, 42 दिन बाद उसने बाहर निकलना है। वह कोई जप कर रहा है मैंने कहा फिर तो मैंने यहाँ नहीं रहना क्योंकि यह पुरुष है, हमें क्या पता कि हम किस हालत में विचर रही हों, देखने लग जाये। यह कमरा भी खाली करवा दो। उस

समय उन्होंने भगवान को आवाज़ लगाई कि बाबा! यह कमरा खाली कर दे हम तुझे कोठी में कमरा दे देते हैं। भगवान ने कहा कि मैं तो अब कमरा बिल्कुल भी खाली नहीं करूँगा, 42 दिन के बाद ही निकलूँगा। वे कहने लगे, "तूने तो हमारे कमरे पर कब्ज़ा ही कर लिया?" उन्होंने दरवाज़ा तोड़कर भगवान को एक लड़के ने बाँयें कन्धे से और दूसरे ने दाँये कन्धे से पकड़ लिया और भगवान को टांगे लटकाये बाहर ले आये। सेठ ने धक्का मारा और कमरे में से बाहर निकाल दिया। फिर क्या था? भगवान बाहर निकल कर चल पड़े और अलोप हो गये। जब सेठ वापिस हमारे पास आया तो मैं भी वहाँ से अलोप हो चुकी थी और अपनी माया भी अलोप कर ली थी। घर से खबर आई कि घर में से सारे बर्तन एक एक करके छू-मन्तर हो गये। फिर मैंने भगवान से कहा कि देखा, तेरे भक्त से ही तुझे धक्के लगवा दिये। वह कहने लगे यह तो धन प्राप्ति के लिये ही मेरा भक्त बना हुआ था। अब मैं तुझे अपना अनन्य भक्त दिखाता हूँ। भगवान कबीर जी के पास आए उन्होंने उलझा हुआ ताना उन्हें दे दिया और मैं भी अपने जाहो जलाल (शानशौकत) के साथ आई, वह तुमने देख ही लिया। मैं डर कर भाग गई कि यह मेरा नाक, कान चुटिया ही न काट दे। बाकी जो तुम मेरे अगले और पिछले केशों के बारे में पूछते हो वह भी सुन लो। सन्तों के द्वार पर मैं सिर झुकाती हूँ कि मेरा भी उद्धार करो क्योंकि पापियों ने मुझे गलत स्थानों पर प्रयोग करके दूषित कर दिया है। आप कोई शुभ कार्य आरम्भ करो और मेरा प्रयोग करो और इनके चरणों में बार बार नमस्कार कर के मेरे अगले केश घिस गये हैं तथा चुटिया वाली तरफ से पापी लोग पकड़ने के लिये दौड़ते हैं पर मैं उनके हाथ नहीं आती। उन्होंने झपट झपट कर मेरे पिछले केश खींच लिये हैं। सन्त कहने लगे, "हे माया, हमें अपना कोई कौतुक तो दिखा।" कहने लगी, "मेरे अनेक कौतुक हैं, मैं हर प्रकार की भूल भूलैया में व्यक्ति को डाल सकती हूँ, होश हवास गायब कर देती हूँ। चलो! मैं एक कौतुक (करिश्मा) लोभ का तुम्हें दिखाती हूँ।" सन्तों को साथ लेकर जंगल में पहुँची। कहने लगी, "देखो! सामने चार जानी दोस्त (गहरे मित्र) आ रहे हैं। एक दूसरे को बहुत प्यार करते हैं और अब मैं दिखाती हूँ कि ये आपस में प्यार करते हैं या मुझे प्यार करते है। माया ने एक सोने की थैली का रूप धारण किया। वे चारों मित्र जब उसके निकट पहुँचे, उन्होंने मोहरों का ढेर पड़ा देखा, बहुत खुश हुये। कहने लगे चलो हमें मोहरें मिल गई हैं। थैली पास पड़ी है किसी की गिर गई लगती है, यह हम चारों बाँट लेते हैं और हमारा बहुत अच्छा गुज़ारा चल जायेगा।

ये सोच कर उन्होंने मोहरें थैली में डाल लीं। 15-20 सेर की थैली थी उठा कर जंगल में कहीं अकेली जगह में जा बैठे। कहने लगे देखो, अपनी किस्मत खुल गई है, कितनी माया हाथ आ गई। अब ऐसा करते हैं कि पहले हम कुछ खा पी लें फिर आराम सें बांट लेंगे। यदि कोई इस रास्ते से ढूंढने वाला आया, उसे भी देख लेंगें। क्योंकि वे रास्ते से हट कर गहरे जंगल में बैठे थे जहाँ किसी को दिखाई न दें। पास ही एक नदी बह रही थी वहाँ हाथ पैर धोये। दो मित्रों को कहा कि जाओ, सामने नगर से बहुत अच्छा भोजन लेकर आओ। बाकी दो वहीं बैठ गये, दो भोजन लेने चले गये। माया कहने लगी कि जब मैंने लोभ को हुक्म दिया कि तू इनके मन को हिलोरा दे तो भोजन लेने जाने वाले दो मित्रों में से एक ने कहा कि बहुत माया है यदि किसी ढंग से हम दोनों के पास ही आ जाये तो कितनी बढ़िया बात होगी। दूसरे ने कहा कि तूने तो मेरे मन की बात कह दी, मैं भी यही सोच रहा था। फिर क्या किया जाये, जिससे यह सारी माया हमारे हाथ आ जाये। योजना समझ में आ गई कि हम रोटी यहीं पर ही खा लेते हैं और इनकी रोटियों में तेज ज़हर मिला दें ताकि एक एक ग्रास मुँह में डालते ही मर जायें। इस योजना के अनुसार ये दोनों भोजन लेकर आये और उधर जो रखवाले बने बैठे थे उनके मन में भी लोभ ने हुलारा मारा और उन्होंने भी षडयन्त्र रच डाला कि जब उन्होंने आकर भोजन रखना है तो उनके तेज़ तलवार के साथ शीश काट दिये जायें तथा नदी में बहा देंगें। सो ऐसा ही हुआ उन दोनों ने पहले वालों के आते ही सिर काट दिये और रक्षक बने दोनों ने जैसे ही भोजन खाना शुरू किया; ज्यों ही दो दो ग्रास मुँह में डाले, ज़हर तेज़ होने के कारण दोनों मर गये। माया ने अपना असली रूप धारण किया और सन्तों को कहने लगी कि देखो, मेरा प्रभाव, मैं ऐसे काम करती हूँ पर जब मैं कबीर साहिब के पास गई तो मेरा कोई बस न चल सका। बल्कि मुझे डर हो गया कि कहीं मेरा नाक कान ही न काट दें। सो इसलिये मैं जल्दी जल्दी वहाँ से चली गई। सो लोभ कहने लगा कि हे मित्र क्रोध। मेरी ताकत का हाल सुन, मैं एक क्षण में मित्रों को दुश्मन बना कर उन्हें एक दूसरे के खून का प्यासा बना देता हूँ -

सवैया - जिन के सिर ऊपर हाथ धरों
तिनकी सु दशा सुन मीत बतावै।
सु मनोरथ की सरित पर कूलहि
नांहि कदाचित ते नर पावै।
तिनके उर अंतर सांति कहां नर
जो धन को दिन रैन धिआवै।

अब क्रोध सखे सुनीये सु कहों
जिह भांतन ते धन मैं मन लावै॥ १३६

सवैया - इह मत्त गइंद सु झूलत हैं,
मम एहु तुरंगम भौन सुहाए।
लिख पंत्र सु भपति मोहि दयो,
धन लिआवहुं बेग बंगालहि जाए।
इह गाउं दए कछु और कहै नर
जे इह भांति सु चीत धिआए।
तिन के उर शांति की कौन कथा
इम चिंतत ही जग माहि बुढाए॥ १३७०

यह सुनकर क्रोध ने अपना प्रभाव भी बताना शुरू कर दिया।

इसका चित्र श्री मान सन्त गुलाब सिंह जी कृत प्रबोध चन्द्र नाटक स्टीक के 138 नम्बर सवैये में ऐसा लिखा है -

मोह प्रभाव सु मीत सुणो,
मम संगहि ते जन एहु कमाए।
तुशटा द्विज पूत हनो मघवा
सिव सीस बरंच के काट गवाए।
बाहुज मार सु स्त्रोणत मैं
भ्रिग नंदन आप भली बिधि नहाए।
सु बशिष्ट मुनीश्वर के सुत
जे मुनि कौसक आप सु तांहि हताए॥ १३८

क्रोध कहने लगा, ''हे मित्र लोभ। मेरा प्रताप सुन, यदि मेरी संगत मिल जाये तो मैं ऐसे काम करवा देता हूँ जिन्हें देख कर श्रेष्ठ पुरुष भी बुरी तरह से व्याकुल हो उठते हैं। शिव जी ने ब्रह्मा का सिर काट दिया था, परशुराम ने क्षत्रियों के सिर काट काट कर खून के कुण्ड भरे थे विश्वामित्र मुनि ने वशिष्ट जी के सौ पुत्र मार दिये। इतने बड़े बड़े महान पूज्य पुरुषों ने ऐसे काम मेरे ही प्रभाव के कारण किए। जब बड़े बड़े देवता और महामुनि ऐसे ऐसे कुकृत्य कर सकते हैं तो कलियुगी जीवों की क्या ताकत है कि मेरे सामने खड़े हो सकें। जब मैं अपनी पूरी ताकत के साथ किसी के अन्दर काम करता हूँ तो बेचारी शान्ति की क्या ताकत है कि मेरे सामने ठहर सके। मैं तो शान्ति को ऐसे भगा देता हूँ जैसे तेज़ हवा मच्छर को नहीं टिकने देती।'' ध्यान से सुन, एक बार इन्द्र अपनी सभा में राग रंग देख रहा था वह इन रंग रलियों में इतना मस्त था कि जब उसके पास उसके गुरू बृहस्पति आये तो इन्द्र को उसके आने का पता नहीं चला और उसने अपने गुरू को कोई सम्मान न दिया। इसे गुरू

अपमान का दण्ड देने के लिये बृहस्पति नाराज़ होकर चले गये। उन्होंने अपने आप को गहरे जंगलों में अलोप कर लिया जब इस बात का राक्षसों के गुरू शुक्राचार्य को पता चला तो उसी समय उसने राक्षसों को कहा - कि अब इन्द्र पर चढ़ाई कर दो क्योंकि उसकी रक्षा करने के लिये गुरू बृहस्पति अलोप हो गया। असुरों ने इन्द्र के स्वर्ग पर कब्ज़ा कर लिया। वह देवताओं सहित ब्रह्मा जी के पास गया तो ब्रह्मा जी ने कहा कि, तेरे द्वारा घोर पाप हुआ है। तूने अपने गुरू का निरादर किया है जिससे तेरी ऐसी हालत हुई है तेरा तप हार गया है। इन्द्र ने इसका इलाज पूछा तो ब्रह्मा जी ने कहा कि अब तू अपना तप तेज़ बढ़ाने के लिये यज्ञ कर। इसकी सम्पूर्णता के लिये तुष्टां ब्राह्मण के पुत्र विश्शृवा से यज्ञ करवा पर एक बात याद रखना हम तुझे अभी बता देते हैं कि तूने इस यज्ञ में पूर्ण रूप से क्षमा धारण करके शान्त रहना है यदि तू किसी का अपराध भी देख ले तो भी मानसिक शान्ति भंग नहीं करनी और अपने आप को क्षम्य रूप में रखना। उस विश्शृवा की माता राक्षस पुत्री है यदि यह ब्राह्मण असुरों का पक्ष करता भी नज़र आया तो भी तू क्षमा धारण किये रखना तब तेरा कार्य सिद्ध हो जायेगा। इस शुभ शिक्षा का पालन करता हुआ इन्द्र तुष्टा ब्राह्मण को अपना पुरोहित बना कर यज्ञ करने लगा। जब वह आहुतियाँ डाल रहा था तो उस समय उसकी माता ने कहा कि बेटा! तू अपने मामों का भी ध्यान रखना वे मेरे भाई हैं, उनका सर्वनाश मत करवा देना। एक आध आहुति उनके नाम की भी डाल देना। जब विश्शृवा यज्ञ कर रहा था, देवताओं को आहुति देते समय उच्च स्वर से मन्त्र का उच्चारण करना। पर कभी कभी चुप चाप आवाज़ में असुरों के पक्ष में भी आहुति डाल देता था। यह बात इन्द्र को पता चलने पर उसने ब्रह्मा जी द्वारा दी गई शिक्षा को जड़ मूल से ही भुला दिया और इसने इस ब्राह्मण का शीश काट दिया।

इसी तरह से ब्रह्मा अपनी पुत्री सरस्वती के रूप को देखकर मोहित हो गया। ब्रह्मा ने उसके रूप को देखने के लिये चारों नेत्रों से काम लेना शुरू कर दिया क्योंकि पहले वह उसके कन्धे की तरफ हो गई फिर पीछे की ओर, फिर दूसरी ओर हो गई पर ब्रह्मा चर्तुमुखी होने के कारण उसे मन्द वासना से देखता रहा। यह जान कर सरस्वती ने अपने आपको आकाश की ओर कर लिया। ब्रह्मा ने पाँचवा नेत्र जो आकाश की ओर देखता था, नया पैदा कर लिया। ऐसी अनीति देख कर शिवजी ने क्रोधित होकर ब्रह्मा का पाँचवा सिर काट दिया। इस घटना का ज़िक्र गुरबाणी में भी आता है -

अनिक पातिक हरता त्रिभवण नाथु री।

तीरथि तीरथि भ्रमता लहै न पारु री।
करम करि कपालु मफीटसि री॥ *पृष्ठ - 695*

अनेक पापों का नाश करने वाला तीन लोकों का शिवजी, तीनों लोकों का स्वामी, अलग अलग तीर्थो में भटकता रहा, पर अन्त न पा सका। ब्रह्मा के सिर काटने का पाप उसके सिर से न उतर सका। तीर्थो पर भटकता भटकता जब वह कपाल मोचन आया तब यहाँ आकर उसकी हथेली से दाग उतरा।

सो प्रार्थना यह हो रही है कि इस शरीर में प्रभु का वास है। जब दी गई मति में प्रभु ज्योति के तेज़ का प्रतिबिम्ब पैदा होता है तो इसके अन्दर एक होश पैदा होती है। एक सुरत आती है और वह सुरत अपने आप को वाहिगुरू जी की परिपूर्णता से तोड़ लेती है और वह चेतन सत्ता इस शरीर में वाहिगुरू कहलाने की बजाये जीव कहलाने लग जाती है। उसे हंगता और ममता, मैं तथा मेरी, पूरी तरह से बान्ध लेती है। इस सुरत के अधीन होकर वह चेतन अंश जिसे जीव कहा जाता है वह अपने आपको अलग समझता है। प्रभु ज्योति द्वारा हुक्म की क्रिया अनुसार जो कुछ भी भला बुरा हो रहा है उसे यह जीव (छोटी सुरत या छोटा आपा भाव) अपने सिर पर ले लेता है। इस जीव का अस्तित्व तो limited consciousness (सीमित सुरत) के कारण है, इसे यह मालूम नहीं कि यह चेतन शक्ति मेरी नहीं है और मैं कुछ भी नहीं हूँ, यह सब कुछ परम आपे द्वारा एक खेल खेला जा रहा है पर इसके अन्दर यह भाव पक्का हो जाता है कि मैं वाहिगुरू से अलग हूँ और मेरी दुनियां अपनी है। इस उत्पन्न हुये भाव को 'हउमै' कहते हैं। जाग्रत का बुलबुला अस्तित्व कायम कर लेता है तथा किये गये अच्छे बुरे कर्म अपने सिर ले लेने के कारण उनका फल भुगतने के लिये बार बार पैदा होता है और मरता है और इसके अन्दर अनेक विकार पैदा हो जाते हैं। जो बहुत ही भयानक होते हैं जैसे कि ऊपर काम और क्रोध का हाल निरूपण किया गया है। यह हउमै विकारों से भरी हुई है और उसने वाहिगुरू के द्वार पर अपनी आसुरी सम्प्रदा के पहरेदार इसलिये लगा दिये हैं कि कोई भी सुरत इन दरवाज़ों में से होती हुई निज महल में न पहुँच जाये। जिसका जिक्र गुरबाणी द्वारा किया गया है -

दुखु दरवाजा रोहु रखवाला आसा अंदेसा दुइ पट जड़े।
माइआ जलु खाई पाणी घरु बाधिआ सत कै आसणि पुरखु रहै॥

पृष्ठ - 877

प्रश्न यह पैदा होता है कि हम फंस तो गये और इतने अधिक कर्म

हमारे हउमै भाव के कारण इस छोटी सुरत के साथ चिपक गये हैं, जिन्हें पहचानने की हमें बहुत आवश्यकता है। सो यह बात बताई जा चुकी है कि दुखों में रहते हुये हम कैसे दुख की पहरेदारी में से निकल सकते हैं। इसके दो इलाज हैं - एक तो यह है कि दुख तथा सुख को एक जैसा समझा जाये। पर यह अवस्था इतनी आसान नहीं है कि हम इसे अपना लें। न ही किसी दुख को दारू (औषधि) मान कर उसके साथ स्नेह पैदा कर सकते हैं क्योंकि हमें दुख के नाम से ही घृणा है। हम तो प्रतिदिन प्रभु के द्वार पर प्रार्थना करते हैं कि मेरे अवगुण माफ कर देना, मुझे दुखों से बचा लेना। मैं दुख सहन नहीं कर सकता गुरू महाराज जी ने चार दुख बड़े-बड़े बताये हैं -

दुखु वेछोड़ा इकु दुखु भूख। इकु दुखु सकत वार जमदूत।
इकु दुखु रोगु लगै तनि धाइ। वैद न भोले दारू लाइ॥

पृष्ठ - 1256

अब हमें इस बात की ओर ध्यान देना होगा कि दुख कहाँ से पैदा हुआ, वाहिगुरू जी सत्त-चित्त-आनन्द हैं। इस स्वभाव में परछाई मात्र भी दुख नहीं है। छोटे से छोटे बीज रूप में भी दुख नहीं है तो दुख आ कहाँ से गया? बहुत सारे चिन्तकों ने जिन्होंने इस बात को जानने का प्रयास किया है। उनका पूर्ण विश्वास है कि संसार में कोई ऐसा तत्व है जो चेतन तत्व के विपरीत अपने अस्तित्व में दुखों का भण्डार रखता हो जो जीव को दुखी करता हो, उस तत्व को उन्होंने प्रकृति का तत्व या माया का तत्व या अज्ञान तत्व कह कर उसका अस्तित्व अलग माना है। जब प्रभु की ज्योति का प्रतिबिम्ब प्रकृति पर पड़ता है तो इस प्रकृति की समता में उथल पुथल शुरू होने लग जाती है तथा इस प्रकृति के तीन गुण रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण उछलते हैं। यह प्रकृति प्रभु की अंश जीव को अपने प्रभावाधीन कर लेती है और प्रभु से अलग करके इसमें अलग अस्तित्व का आभास देती है, यह जीव अपने मूल से टूट जाता है और निर्बल तथा भोला बन कर तीन गुणों की नींद में मूर्च्छित हुआ एक लम्बा सफर तय करता हुआ आ रहा है। आम परिस्थितियों में इसका सफर कहीं भी खत्म नहीं होता, पर इन आचार्यों नें जिनके निश्चय अनुसार संसार में तीन अनादि तत्व अस्तित्व वाले हुये हैं वे हैं - चेतन तत्व, जीव तथा प्रकृति। इन चिन्तकों ने प्रभु सत्ता से त्रिगुणी माया में हुई उथल पुथल को सृष्टि की रचना का कारण बताया है, इन्हीं आचार्यों ने दुख की निवृत्ति के लिये अनेक मार्ग प्रचलित किये हैं। सैंकड़ों प्रकार के योग, शबद सुरत योग, बुद्ध योग; सम योग, ज्ञान योग, भक्ति योग लय योग आदि इनमें से पातंजलि का बताया हुआ योग जिसका उद्देश्य था, 'योगास

चित वृत्ति निरोधार्य,' यह इसकी सुरत है। जो पाँच प्रकार की वृत्तियां हैं – प्रमाण, विपरजा, निद्रा, विकल्प और स्मृति; इन्हें रोक कर पाँच क्लेश अविद्या, अभिनिवेश, अस्मिता, राग, द्वैष की निवृत्ति करके दसवें द्वार में से प्राणों को निकाल कर ब्रह्म लोक को प्राप्त करना ही मुक्ति मानता है। इस प्रकार यह दुखों से छुटकारा पा लेता है पर यह प्रकृति, जीव तथा चेतन तत्व को सत्य मानता है। गुरू महाराज जी ने जो सिद्धान्त दिया है –

आदि सचु जुगादि सचु।
है भी सचु नानक होसी भी सचु॥ *पृष्ठ – 1*

गुरमत अनुसार संसार में केवल एक ही प्रभु है जो स्वंय ही अपनी खेल रचता हुआ अनेक रूपों, रंगों यौनियों में प्रकट होकर अपने आप ही अपनी माया रचकर कहीं अज्ञानी, कहीं ज्ञानी होकर अपनी मौज अनुसार खेल-खेल रहा है। जैसा कि –

ब्रहमु दीसै ब्रहमु सुणीऐ एकु एकु वखाणीऐ।
आतम पसारा करणहारा प्रभ बिना नही जाणीऐ॥ *पृष्ठ – 846*

गुरू दशमेश पिता जी फ़रमान करते हैं –

एक मूरति अनेक दरसन कीन रूप अनेक।
खेल खेल अखेल खेलन अंत को फिरि एक॥ *जाप साहिब*

गुरमत दुख का कारण प्रकृति में नहीं मानता क्योंकि प्रकृति तत्व अनादि नहीं है, यह भी वाहिगुरू की रज़ा में रची गई है जिसे कुदरत भी कहा गया है जैसे कि –

आपीन्है आपु साजिओ आपीन्है रचिओ नाउ।
दुयी कुदरति साजीऐ करि आसणु डिठो चाउ।
दाता करता आपि तूं तुसि देवहि करहि पसाउ।
तूं जाणोई सभसै दे लैसहि जिंदु कवाउ॥ *पृष्ठ – 463*

गुरू महाराज जी ने गोरख नाथ को बताया था कि गोरख नाथ! दुख प्रकृति में से पैदा नहीं होता और न ही संसार का कोई अलग अस्तित्व है। यह दुख हउमै तत्व के कारण हुआ करता है। जिसके प्रभाव से अखण्ड चेतन तीनों रूपों में नज़र आता है। एक चेतन तत्व है, जिसका नाम अपने मतानुसार किसी ने राम, रहीम, नारायण, गोबिन्द, वाहिगुरू आदि बेअन्त कृत्रिम नामों से सम्बोधन करके उसे जानने का प्रयास किया है। वाहिगुरू जी ने इस सृष्टि को प्रकृति माया के रहम पर नहीं छोड़ा, वह अपने आप पैदा नहीं हुई; किसी नियम के आधीन चल रही है। वाहिगुरू जी ने अपना प्रसार स्वंय ही किया हुआ है जिसे अनेक विधियों से गुरबाणी में बताया गया है। कहीं तो संक्षेप में यह बताया गया है कि –

साचे ते पवना भइआ पवनै ते जलु होइ।

जल ते त्रिभवणु साजिआ घटि घटि जोति समोइ। पृष्ठ - 19

कहीं इसकी और व्याख्या करते हुये बताया गया है कि इस प्रकृति की उपज शब्द ब्रह्म से हुई है जैसे कि -

कीता पसाउ एको कवाउ। तिस ते होए लख दरीआउ। पृष्ठ - 3

एक कवावै ते सभि होआ॥ पृष्ठ - 1003

भाई गुरदास जी इसी सम्बंध में बताते हैं -

निरंकारु आकारु होइ एकंकारु अपारु सदाइआ।
एकंकारहु सबद धुनि ओअंकारि अकारु बणाइआ।
भाई गुरदास जी, वार 26/2

गुरू दशमेश पिता जी ने भी ऐसा ही कहा है -

प्रथम ओअंकार तिन कहा। सो धुन पूर जगत मोह रहा।

तथा ऐसा भी फ़रमान आता है -

अपनी माइआ आपि पसारी आपहि देखन हारा।
नाना रूप धरे बहुरंगी सभ ते रहै निआरा॥ पृष्ठ - 537

हैरानी की बात यह है कि चेतन स्वरूप वाहिगुरू इतने रूपों में कैसे प्रकट हो गया तथा अनेक रूपों में होता हुआ फिर भी वह अपने आप ही है। इस बात का भ्रम गोरख नाथ को पड़ा हुआ था। उसने सांख्य के सिद्धान्त के अनुसार प्रकृति जीव अनादि माने हुये थे तथा पातंजलि के अनुसार वह चेतन तत्व को भी मानता था पर तीनों की हस्ती अलग-अलग मानता था। यही प्रश्न उसने गुरू नानक पातशाह से किया था कि यदि वाहिगुरू जी में से ही उसकी सत्ता तथा उसके अस्तित्व ने अनेक रूप धारण करके अपने आप को दृष्टिमान किया है तो फिर उससे अलग अस्तित्व 'संसार' कैसे बन गया तथा दुख कहाँ से आ गया? गुरू महाराज जी ने बताया कि वास्तव में दुख का अपना कोई स्वरूप नहीं है, यह हउमै में से उत्पन्न एक अवस्था है। वह यह है कि हउमै के प्रभाव के कारण अनेक चिन्ताओं में प्रकट हुई चेतन ज्योति ने हउमै के प्रभाव के कारण अपने आप को सर्व ज्योति से अलग मान लिया है इसी तरह इस संसार में जड़ तत्व का कोई अस्तित्व नहीं है। जिसे हम जड़ तत्व कहते हैं वह भी चेतन का एक रूप है पर उसमें चेतनता इतनी कम डिग्री की है कि आम व्यक्ति को पता ही नहीं चलता। जड़ भी चेतन का ही रूप है तथा नाम शक्ति के कारण उसका अस्तित्व कायम है। जब सारे दृष्टिमान तथा अदृश्य में अनेक रंगों की सृष्टियां हैं जिनके बारे में कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता क्योंकि प्रभु के हर कार्य में अनन्तता है। महाराज जी कहने लगे कि गोरख नाथ! प्रभु ने हउमै तत्व को पैदा किया जिस

के फलस्वरूप अलगाव (अलगपन) आया। अलगाव आने से जो चेतन अंश जीवों में था उसका सम्बंध परम अपनत्व से टूट गया। वह छोटे अपनत्व में प्रकट हुआ, परम आपा सर्व समरथ, सर्व शक्तिमान, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण ज्योति है पर इसके विपरीत हउमै के अधीन होकर प्रभु ज्योति से उत्पन्न हुआ ज्ञान प्रभु से टूट कर जीव रूप में प्रकट हुआ जीव ने ही प्रभु के प्रसार को प्रभु से अलग समझ कर इस दृष्टिमान को संसार कहा। वास्तव में न तो संसार है न कोई जीव है यह समय का प्रभाव है जिसकी वजह से अनेकता प्रतीत हो रही है। पर –

सोधत सोधत सोधत सीझिआ। गुर प्रसादि ततु सभु बूझिआ।
जब देखउ तब सभु किछु मूलु। नानक सो सूखमु सोई असथूलु॥

पृष्ठ - 281

ईघै निरगुन ऊघै सरगुन केल करत बिचि सुआमी मेरा॥

पृष्ठ - 827

सो वास्तविक बात यह है कि नाम शक्ति से हउमै के प्रभाव में आकर इस सुरत ने अपना अलग अस्तित्व कायम कर लिया और हउमै में से उठ रही दुख की लहर ने इसे एक छोटे से निजित्व में घेर लिया। इसलिये दुख का आभास होना इस बात में है कि यह जीव परम अपनत्व से टूटा हुआ है तथा बलहीन, ज्ञानहीन होकर अपने आपको अलग महसूस करता है जो हउमै के प्रभाव के कारण इस जीव को परम अपनत्व से मिलाने के लिये केवल 'नाम' ही समरथ है। और कोई क्रिया कर्म कोई भेष, कोई साम्प्रदायिक नियम इसे किसी भी तरीके से परम निजित्व से नहीं मिला सकते। इस दृश्य तथा अदृश्य संसार में हउमै तथा नाम दो विरोधी धारायें बह रही हैं। दो प्रकार की ऊर्जा (Energy) में बहाव (flow) चल रहा है जिनका उदगम हुक्म में से हो रहा है। जब नाम शक्ति इस जीव को प्रकाश देकर वास्तविकता का भेद खोल दे तो फिर हउमै का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता। सभी दुखों का अन्त हो जाया करता है। सो नाम का ज्ञान न होने के कारण जीव की दृष्टि तथा सूझ, होश (ज्ञान) दूषित हो गई है। जैसे किसी की आँख में दोष हो तो उसे एक वस्तु होते हुये भी दो रूप नज़र आया करते है। एक चन्द्रमा दो रूपों में दिखाई दिया करता है। चन्द्रमा एक ही है पर दृष्टि दोष के कारण दो दिखाई दे रहे हैं। इसी तरह से गोरख नाथ! यह संसार वाहिगुरू जी का अपना ही रूप है, वह स्वंय ही मालिक अपनी मौज में खेल रहा है जैसा कि बाणी में फ़रमान आता है उसे विचार कर हमें यह बात और भी अधिक अच्छी तरह समझ आ जायेगी।

बाजीगरि जैसे बाजी पाई। नाना रूप भेख दिखलाई।

सांगु उतारि थंम्हिओ पासारा। तब एको एकंकारा॥
कवन रूप द्रिसटिओ बिनसाइओ।
कतहि गइओ उहु कत ते आइओ॥
जल ते ऊठहि अनिक तरंगा।
कनिक भूखन कीने बहु रंगा।
बीजु बीजि देखिओ बहु परकारा।
फल पाके ते एकंकारा॥
सहस घटा महि एकु आकासु।
घट फूटे ते ओही प्रगासु।
भरम लोभ मोह माइआ विकार।
भ्रम छूटे ते एकंकार॥
ओहु अबिनासी बिनसत नाही।
ना को आवै ना को जाही।
गुरि पूरे हउमै मलु धोई।
कहु नानक मेरी परम गति होई॥ *पृष्ठ - 736*

हउमै के कारण वास्तविकता अनहुई (अघटित) चीज़ में दृष्टिमान हो रही है। सो महाराज जी ने फ़रमान किया, प्रश्न था –

कितु कितु बिधि जगु उपजै पुरखा
कितु कितु दुखि बिनसि जाई। *पृष्ठ - 946*

फ़रमान हुआ –

हउमै विचि जगु उपजै पुरखा नामि विसरिऐ दुखु पाई। पृष्ठ -946

एक और जगह पर बाणी में आता है –

दुखु तदे जा विसरि जावै। भुख विआपै बहु बिधि धावै।
सिमरत नामु सदा सुहेला जिसु देवै दीन दइआला जीउ॥
पृष्ठ - 98

दुख का कारण प्रभु को भूलना ही है जब प्रभु पूर्ण रूप में याद में बस जाये तो दु:ख की परिभाषा बदल जाती है फिर नाम के सहारे हम उस द्वार तक पहुँच जाते हैं जिस का नाम **'दुख दरवाजा'** रखा गया है। गुरू का शबद नाम की दृढ़ अवस्था पाँच चोरों का नामों निशान इस तरह मिटा देती है जैसे बहुत शक्तिशाली एटम बम्ब दृष्टिमान को तहस-नहस, टुकड़े-टुकड़े कर विखंडित कर देता है। सो इसी प्रकार हम प्रभु के दर पर दु:ख तथा रोह को जीत कर आगे कदम रखते हैं। अब हमारा पाला आशा तथा अन्देशा के रूपमान हुये बज्र कपाटों से पड़ता है।

महात्मा बुद्ध ने तो पूरी तरह निर्णय दिया हुआ है कि संसार दु:खों का घर है इसके इलाज के लिये उन्होंने घोर तप करके वह अवस्था प्राप्त कर ली जिसे निर्वाण कहते हैं जहाँ दु:ख की कोई ताकत नहीं कि वह

वहाँ पहुँच सके। गुरू महाराज जी ने बहुत बड़े-बड़े उदाहरण दिये हैं कि संसार में दुःख इस वजह से है कि वह माया के मण्डल में से बाहर न निकल सका और नाम मण्डल में प्रवेश न होने से दुःखों की प्राप्ति होना स्वाभाविक ही है, बाबा फरीद जी ने भी फरमाया है -

फरीदा मै जानिआ दुखु मुझ कू दुखु सबाइऐ जगि।
ऊचे चड़ि कै देखिआ तां घरि घरि एहा अगि॥ *पृष्ठ - 1382*

गुरू पातशाह जी ने गुरू ग्रन्थ साहिब जी के अन्दर बड़ी-बड़ी ऐतिहासिक तथा मिथ्यात्मक हस्तियों का जिक्र करते हुये फरमान किया है कि दुःख का कारण नाम की प्राप्ति न होने से है, जिसके हृदय में नाम की प्राप्ति हो गई वह दुख से ऊपर निकल जाया करता है जैसा कि -

गुरमुखि अंतरि सहजु है मनु चड़िआ दसवै आकासि।
तिथै ऊंघ न भुख है हरि अंम्रित नामु सुख वासु।
नानक दुखु सुखु विआपत नही जिथै आतमराम प्रगासु॥
पृष्ठ - 1414

जहाँ नाम का प्रकाश हो गया वहाँ सुख दुःख समान हो जाया करते हैं। अन्दर ऐसी शक्ति पैदा हो जाया करती है कि दुःख का अहसास होना बन्द हो जाया करता है क्योंकि नाम शक्ति इतनी प्रबल है कि दुःख को निकट नहीं आने देती और इतिहास में ऐसे उदाहरण आते हैं कि गुरू महाराज गुरू अर्जुन पातशाह जी को पानी में उबाला गया, गर्म-गर्म तवे पर बिठाया गया, शीश पर गर्म रेता डाला गया इसलिये कि कहीं दशम द्वार में वास न कर लें पर गुरू महाराज जी ने सारे शारीरिक दुःख रज़ा में रहते हुये उसी प्रकार सहन किये जैसे सुख हुआ करते हैं। उन्हें दुःख विचलित न कर सका। जब गोरख नाथ इस महान दुःखों से भरे torture को देख, गुरू महाराज जी के हजूर में हाजिर हुआ तो उसने कहा कि महाराज, "इन्हें आप श्राप दे दो यदि तुम नहीं देते तो मैं अभी ही लाहौर को तहस-नहस कर देता हूँ। इसी प्रकार गुरू महाराज जी ने महान उच्च कोटि के पीर मीयां मीर जी को जिन्होंने हमारे धर्म मन्दिर की नींव रखी थी ने गुरू महाराज जी के चरणों में प्रार्थना की कि आप इन्हें श्राप दे दो नहीं तो मैं सब कुछ बर्बाद कर दूँगा। महाराज कहने लगे कि पीर जी! याद करो, आपने एक बार हमारे साथ विचार विमर्श करते हुये कहा था कि ब्रह्मज्ञानी धैर्य रख सकता है। एक समान रह सकता है। जब उसके साथ कष्टपूर्ण व्यवहार द्वारा उसे अत्याधिक दुखी किया जाये? इस समय हम इसका अर्थ व्यवहारिक (Practically) रूप में करके दिखा रहे हैं। ऐसा ज़िक्र इतिहास में आता है गुरू महाराज जी ने कहा कि पीर जी! गुरू महाराज का सिद्धान्त जो पूर्ण रूप से सत्य पर आधारित है वह है

–

आदि सचु जुगादि सचु।
है भी सचु नानक होसी भी सचु॥ *पृष्ठ - 1*

सुखमनी साहिब में तुमने भी पढ़ा था इसी सिद्धान्त को मुख रखते हुये प्रकट किया था –

सोधत सोधत सोधत सीझिआ। गुर प्रसादि ततु सभु बूझिआ।
जब देखउ तब सभु किछु मूलु। नानक सो सूखमु सोई असथूलु॥
पृष्ठ - 281

और ऐसे भी श्लोक आये थे कि –

सरगुन निरगुन निरंकार सुंन समाधी आपि।
आपन कीआ नानका आपे ही फिरि जापि॥ *पृष्ठ - 290*

जब वाहिगुरू के बिना यहाँ है ही कोई नहीं प्रत्येक शरीर में वाहिगुरू जी स्वंय गुप्त प्रकट होकर खेल कर रहे हैं तो फिर श्राप किसे दिया जाये, किसे बुरा कहा जाये? जिसके हृदय में से पाँचों भ्रमों का नाश हो चुका हो, उसका व्यक्तित्व 'परम आपे' में ऐसे लीन हो गया जैसे घड़े में पड़ता प्रतिबिम्ब अपने बिम्ब चन्द्रमा में समा जाया करता है। पानी की उपाधि के कारण आसमान में चमक रहा चन्द्रमा बर्तन में प्रतिबिम्बत होकर अलग दिखाई दे रहा था पर यथार्थ में चन्द्रमा एक ही था। यह क्रिया मायिक क्रिया थी जो एक चन्द्रमा को पानी से भरे बर्तनों में अनेकता में दिखाई दे रही थी। जब बर्तनों में से पानी बिखेर दिया गया तो वह प्रतिबिम्बित चन्द्रमा अपने बिम्ब में समा गया तथा सत्य अवस्था जो एक ही चन्द्रमा था वह प्रतिबिम्ब के नाश होने के साथ जैसे की तैसी रह गई। सो पीर जी! यहाँ कोई भुलक्कड़ हुआ ही नहीं। जिसने अपना भ्रम गवाँ दिया है उसे हर स्थान पर अपने आप ही दृष्टिमान हो रहा है। सो अपने आप को कौन श्राप देता है –

मन मेरे जिनि अपुना भरमु गवाता।
तिस कै भाणै कोइ न भूला जिनि सगलो ब्रहमु पछाता॥
पृष्ठ - 610

दुःख तब तक ही है जब तक हुक्म की क्रिया को जान कर झूठ की दीवार नहीं तोड़ देता –

जब लगु हुकमु न बूझता तब ही लउ दुखीआ।
गुर मिलि हुकमु पछाणिआ तब ही ते सुखीआ॥ *पृष्ठ - 400*

दुःख को खत्म करने के लिये कठिन परिश्रम की आवश्यकता है, पूर्ण सतगुरू की बख़्शीश की ज़रूरत है। पूरा सतगुरू इस जीव को माया मण्डल में से निकाल कर हउमै का अन्धेरा दूर करता है तथा उसे आत्म

मण्डल में पहुँचा कर तत्व ज्ञान प्रदान करता है। उसे कठिन परिश्रम करके दु:खों की आग को दु:ख से मार कर दु:ख दारू (औषधि) बन जाया करता है फ़रमान है -

दुख विचि जंमणु दुखि मरणु दुखि वरतणु संसारि।
दुखु दुखु अगै आखीऐ पढ़ि पढ़ि करहि पुकार।
दुख कीआ पंडा खुल्हीआ सुखु न निकलिओ कोइ।
दुख विचि जीउ जलाइआ दुखीआ चलिआ रोइ।
नानक सिफती रतिआ मनु तनु हरिआ होइ। *पृष्ठ - 1240*

सो गुरू महाराज जी ने दु:ख क्यों आता है इस का भरपूर विचार गुरबाणी में दिया है, उसका कारण बताया है कि जब हम नाम से बिछुड़ जाते हैं और शारीरिक रसों-कशों में प्रवृत्त हो जाते हैं तो दु:ख स्वाभाविक ही रूपमान हो जाया करता है। जैसा कि फ़रमान है -

दुखी दुनी सहेड़ीऐ जाइ त लगहि दुख।
नानक सचे नाम बिनु किसै न लथी भुख।
रूपी भुख न उतरै जां देखां तां भुख।
जेते रस सरीर के तेते लगहि दुख॥ *पृष्ठ - 1287*

जिसे और अधिक स्पष्ट करते हुये बड़ी-बड़ी ऐतिहासिक तथा मिथ्यात्मिक हस्तियों का जिक्र करते हुये फ़रमान आया है -

सहंसर दान दे इंद्रु रोआइआ। परसरामु रोवै घरि आइआ।
अजै सु रोवै भीखिआ खाइ। ऐसी दरगह मिलै सजाइ।
रोवै रामु निकाला भइआ। सीता लखमणु विछुड़ि गइआ।
रोवै दहसिरु लंक गवाइ। जिनि सीता आदी डउरू वाइ।
रोवहि पांडव भए मजूर। जिन कै सुआमी रहत हदूरि।
रोवै जनमेजा खुइ गइआ। एकी कारणि पापी भइआ।
रोवहि सेख समाइक पीर। अंति कालि मतु लागै भीड़।
रोवहि राजे कंन पड़ाइ। घरि घरि मागहि भीखिआ जाइ।
रोवहि किरपन संचहि धनु जाइ। पंडित रोवहि गिआनु गवाइ।
बाली रोवै नाहि भतारु। नानक दुखीआ सभु संसारु।
मंने नाउ सोई जिणि जाइ। अउरी करम न लेखै लाइ॥

पृष्ठ - 954

सो दु:ख का इलाज सतगुरू जी की सेवा करके तत्व ज्ञान की प्राप्ति होने से हुआ करता है -

काम करोधु सबल संसारा।
बहु करम कमावहि सभ दुख का पसारा।
सतिगुर सेवहि से सुखु पावहि सचै सबदि मिलाइदा॥

पृष्ठ - 1060

इस प्रकार सतगुरू की कृपा से जब हम नाम मण्डल में प्रवेश कर जाते हैं तो दु:खों का अन्त हो जाया करता है। संसार दु:खों का छुटकारा प्राकृतिक वस्तुओं की प्राप्ति होने में समझता है, पर यह कभी भी सफल नहीं होता क्योंकि रेत में से कभी भी किसी ने तेल के भण्डार नहीं प्राप्त किये। रेत को निचोड़ने से तो कुछ भी हाथ नहीं आता। सो यही हाल संसार का है कि परमेश्वर को भूल कर दु:खों से छूट जाने की लालसा करता है। फ़रमान है –

ऐसा जगु देखिआ जूआरी। सभि सुख मागै नामु बिसारी॥

पृष्ठ - 22

इस पर आध्यात्मिक मण्डल में एक कथा आती है कि जो प्रमाण के रूप में है जिससे बात अच्छी तरह समझ में आ जाती है। इस प्रकार है कि एक राजा की लड़की ने बहुत कीमती हार बनवाया। उसमें हीरे, लाल, मणियां आदि जड़वा दीं उस हार को नौलखा हार कहा जाता है। राजाओं रानियों के पास ऐसे 'नौलखे' हार आम हुआ करते थे इनके बारे में अनेक कथायें महापुरुष सुनाया करते हैं क्योंकि इन कथाओं को प्रतीक बना कर नाम की ओर रूचि बढ़ाते हैं। एक दिन ऐसा हुआ कि राजकुमारी अपनी सहेलियों के साथ नदी में स्नान करने गई। अनेक प्रकार की जल क्रीड़ायें, खेल पानी में किये। कभी नाव चलाती, कभी ऊँचे स्थान पर खड़े होकर छलांगे लगाती, कभी गहरे गोते लगाये जाते। ऐसा करते हुये काफी समय बीत गया। गर्मी के दिन थे जब किनारे पर आकर वस्त्र पहनने शुरू किये तो बहुत हैरानी हुई कि राजकुमारी का नौलखा हार वहाँ पर नहीं था। उसकी तलाश की गई पर कुछ भी पता न चला। राजा के पास खबर पहुँची उसने भी ढुंढवाने का बहुत प्रयास किया। नदी में जाल फैंके गये कि हो सकता है कोई मच्छ इत्यादि बाहर निकल कर हार को निगल गया हो पर निराशा ही पल्ले पड़ी। बहुत प्रयास करने के बाद भी जब हार का कुछ भी पता न चला तो राजा ने घोषणा कर दी कि जो उस हार को ढूँढ कर लायेगा उसे आधी कीमत इनाम के रूप में दी जायेगी जो व्यक्ति उसका पता भी बता देगा उसे भी आधी कीमत दी जायेगी। जनता ने भी बहुत ढूँढा पर हार कहीं से भी न मिला। सौभाग्य वश एक लकड़हारा गर्मी के महीने में प्यास बुझाने के लिये जंगल में बहती हुई निर्मल जल की नदी के पास आया। थोड़ी देर आराम करने के बाद हाथ मुँह धोने लगा तो उसकी दृष्टि अचानक ही पानी के तल पर चली गई। देख कर हैरान हो गया कि जिस हार की तलाश की जा रही थी वह पानी में पड़ा है। यह सोच कर उसकी प्यास तो अपने आप ही बुझ गई, उसने पानी

में डुबकी लगाई, पानी बहुत गहरा था लम्बा सांस लेकर पानी के तल तक पहुँच गया, आँखें खुली हुई थीं, पानी बहुत निर्मल है, हार दिखाई दे रहा है पर जब उस स्थान पर हाथ मारा तो हार की जगह कीचड़ उसके हाथ में आ गया। बहुत हैरान हो गया कि हार दिखाई देता है पर हर बार गोता लगा कर जब मैं हार को उठाने के लिये हाथ लगाता हूँ तो कीचड़ मेरे हाथ में आती है? कभी यह विचार आता है कि कोई जादू होगा, कोई छलिया होगा जो ऐसा खेल कर रहा है। फिर निर्णय किया कि चलो, बादशाह को बता ही देते हैं, उसका इनाम भी तो आधा ही है। उसने बादशाह को सूचना दे दी कि गोताखोर ले जाकर शीघ्र ही हार निकलवा लो क्योंकि मैंने तो बहुत गोते लगाये हैं पर मेरे हाथों में हार नहीं आया, पता नहीं क्या बात है? राजा नदी के पास आकर गोताखोरों से गोते लगवाता है पर किसी के हाथ भी हार नहीं आता। इतनी देर में कोई महात्मा उस स्थान पर पहुँच जाते हैं। राजा से पूछने पर पता चला कि हार की तलाश कर रहे हैं। उस समय महापुरुष ने पानी के तल पर पड़े हार को देखा तथा जो वृक्ष उस नदी के किनारे पर था उसकी टहनी की ओर भी नज़र डाली तो एक दम देख लिया कि हार चील के घौंसले में लटक रहा है। उसका प्रतिबिम्ब पानी में पड़ रहा है। महापुरुषों ने कहा कि राजन! कोई होशियार सा व्यक्ति दो जो वृक्ष पर चढ़ना जानता हो। राजा ने एक आदमी दे दिया और महापुरुष बोले कि प्रेमी! इस पेड़ पर चढ़ जा उस टहनी की ओर नज़र कर, जिस पर चील का घौंसला है, उसमें हार लटक रहा है, वह उतार कर ला। सारे हैरान हो गये, वह हार उतार कर ले आया। सो यह एक दृष्टान्त की बात है जिसका समाधान इस प्रकार होता है कि संसार सांसारिक विषयों, वासनाओं में सुख की प्राप्ति की इच्छा करता है पर इन शारीरिक रसो-कशों में सुख प्राप्त नहीं होता और सुख मांगते समय दुख ही आगे आ जाता है। इसके सारे साधन विचारहीन होने के कारण दुःख की सीमा तक ही पहुँचते हैं। गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं -

सुखु नाही बहुतै धनि खाटे। सुखु नाही पेखे निरति नाटे।
सुखु नाही बहु देस कमाए। सरब सुखा हरि हरि गुण गाए॥

पृष्ठ - 1147

करि किरपा संतन सचु कहिआ। सरब सूख इहु आनंदु लहिआ।
साधसंगि हरि कीरतनु गाईऐ। कहु नानक वडभागी पाईऐ॥

पृष्ठ - 179

सो दुखों का अन्त प्रभु नाम की प्राप्ति होने पर होता है, वाहिगुरू जी की सदीवी याद हृदय में बसाने से होता है -

खोजत खोजत ततु बीचारिओ दास गोविंद पराइण।
अबिनासी खेम चाहहि जे नानक सदा सिमरि नाराइण॥
पृष्ठ - 714

सो महाराज जी संसार को बताते हैं कि सारे संसार में खोज करके देख लिया गया है कि पदार्थों की प्राप्ति से कभी भी दुखों का अन्त नहीं हुआ करता। दुखों का नाश तभी होता है जब पूर्ण सुख प्राप्त हो जाये पूर्ण सुख नाम मण्डल में प्रवेश करने से होता है। फ़रमान आया है –

डिठा सभु संसारु सुखु न नाम बिनु।
तनु धनु होसी छारु जाणै कोइ जनु। *पृष्ठ - 322*

काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार तथा शब्द, स्पर्श, रूप रस, गन्ध के विषयों को जानने में सुख की प्राप्ति कभी हो ही नहीं सकती। न ही रिश्तेदारों के झुरमुट न ही माया के अम्बार दुःख दूर करने में समर्थ हैं। फ़रमान है –

पुत्र कलत्र लछमी माइआ। इन ते कहु कवनै सुखु पाइआ॥
पृष्ठ - 692

हरि का सुमिरन करने से सारे दुखों का अन्त हो जाया करता है और हर जगह सुख ही सुख प्राप्त हुआ करता है –

घर महि सूख बाहरि फुनि सूखा।
हरि सिमरत सगल बिनासे दूखा॥
सगल सूख जां तूं चिति आवैं।
सो नामु जपै जो जनु तुधु भावै॥
तनु मनु सीतलु जपि नामु तेरा।
हरि हरि जपत ढहै दुख डेरा॥
हुकमु बूझै सोई परवानु।
साचु सबदु जा का नीसानु॥
गुरि पूरै हरि नामु द्रिड़ाइआ।
भनति नानकु मेरै मनि सुखु पाइआ। *पृष्ठ - 385*

और ऐसा भी फ़रमान आता है –

कबीर सूखु न एंह जुग करहि जु बहुतै मीत।
जो चितु राखहि एक सिउ ते सुखु पावहि नीत॥ *पृष्ठ - 1365*

सो हमें इस बात का विवरण सहित ज्ञान हो गया कि सुख प्राप्त करने के लिये हमें नाम की ओर कदम बढ़ाने पड़ेंगे। जैसे जैसे नाम अन्दर प्रकट होता जायेगा वैसे वैसे दुखों को हम पैरों के नीचे कुचलते चले जायेंगे। सो इसलिये सत्य के आसन तक पहुँचने के लिये दुःख का जो दरवाज़ा है वह नाम मण्डल में प्रवेश करने से पार किया जा सकता है। जो क्रोध है जिसे महाराज जी ने रोह कहा है गुरू शबद जब प्राप्त हो

गया तो उस समय अकेला क्रोध ही क्या इसके साथी काम, लोभ सभी का अन्त हो जाया करता है क्योंकि क्रोध का विरोधी तत्व नाम है, नाम से शान्ति प्राप्त होती है जब नाम मन में समा गया तो शान्ति प्राप्त हो जाती है। शान्ति के सामने क्रोध का वश नहीं चलता। शान्ति श्रद्धा की बेटी है। इसकी सहायता करने के लिये भक्ति है। जब भक्ति, श्रद्धा और शान्ति की प्राप्ति हो जाये तो क्रोध का नामों निशां, मिट जाया करता है। इस प्रकार क्रोध को वशीभूत करके हम आशा तथा अन्देशों के बज्र कपाट खोलने के लिये उत्सुक होते हैं।

अब जिज्ञासु को आशा तथा अन्देशों के दो दरवाज़ों में से पार होकर प्रभु तक पहुँचने की जरूरत है। दु:ख तथा क्रोध (रोह) का विवरण पीछे बता चुके हैं। दु:ख का इलाज प्रभु से मिलना है। लगातार मन में याद बसा कर हमारे तथा वाहिगुरू के मध्य जो पर्दा पड़ा हुआ है वह दूर हो जाया करता है क्योंकि अनवरत याद से दु:ख निकट आता ही नहीं तथा न ही नाम से उत्पन्न हुई शान्ति के मुकाबले पर और किसी की पेश चलती है। माया ने जीव के आस पास ऐसा जाल फैलाया हुआ है जिसमें से निकलना इनके लिये अति कठिन है, क्योंकि वाहिगुरू के बिना जिस जिस से भी पाला पड़ता है चाहे वे जड़ चीज़े हों, चाहे वे सूक्ष्म हों, वे सभी बन्धन रूप हुआ करती हैं, जिनमें आशा तथा अन्देशा का बन्धन बहुत ही कठिन है जिसके फल स्वरूप जैसी आशा, मन्शा अन्तिम समय में इसके मन में होगी वैसे ही स्थान पर इसे पुर्नजन्म लेना पड़ता है। सबसे पहले हमें उन बातों की ओर देखना पड़ता है जो इस जीव को परमेश्वर के साथ मिलने में रुकावटें पैदा करती हैं। मन राजा की अति भयानक फौजों के साथ जीव का वासता पड़ता है, मन राजा के अजेय शूरमा जीव की पेश नहीं चलने देते। बाणी में ऐसा फ़रमान है –

कबीर हरना दूबला इहु हरीआरा तालु।
लाख अहेरी एकु जीउ केता बंचउ कालु॥ ***पृष्ठ - 1367***

सरवर पंखी हेकड़ो फाहीवाल पचास।
इहु तनु लहरी गडु थिआ सचे तेरी आस॥ ***पृष्ठ - 1384***

सबसे पहला बन्धन माया का है, जिस ने इस जीव को भ्रम में डाल कर राम अंश की जगह प्रकृति की अंश को पूरी तरह से दृढ़ करवा दिया है और यह जीव चाहे करोड़ों शरीर धारण करता है पर यह हर प्रकार के धारण किये हुये शरीर को गलती से माया के अधीन 'मैं' कहता है इसे अपने स्वरूप का कोई ज्ञान नहीं होता। यदि गुरू इसे बताते भी हैं कि तू राम का अंश है तू अपने आप को पहचान तो सही जैसा कि –

मन तू जोति सरूपु है आपणा मूलु पछाणु।

इसकी समझ में नहीं आता कि मैं ज्योति स्वरूप क्या हुआ क्योंकि इसे शीशे के सामने पाँच तत्वों का बना हुआ जो इसका वाहन है, दिखाई देता है उसे यह अपना आपा कहता रहता है, कितनी बड़ी भूल हो रही है। गुरू महाराज जी बार बार बताते हैं कि तू ज्योति स्वरूप है। पर इसने ठगमूरी बूटी सूंघने के कारण उलटी सुरत धारण की हुई है। जिसे 'हउमै' की सुरत कहा जाता है। महापुरुष एक दृष्टान्त के साथ समझाने का यत्न करते हैं कि एक राजा किसी पड़ौसी राजा के निमन्त्रण पत्र पर उसके द्वारा तैयार किये गये भोजन पर गया, वहाँ शराब का दौर चल रहा था। बड़ी तीखी शराब थी। इस राजा ने कुछ अधिक शराब पी ली और ऐसी हरकतें करने लग पड़ा जिससे उसके वज़ीरों को सन्देह पड़ गया कि यदि हमारे महाराज ऐसे ही करते रहें तो सभी मेहमानों के बीच में हमारी बेइज्जती हो जायेगी और host (यजमान) भी नाराज़ हो जायेगा। दोनों राजाओं के आपसी सम्बन्ध भी बिगड़ सकते हैं ऐसा न हो कि हालात बिगड़ जाये। वे वज़ीर लायक थे वे अपने राजा को बग्घी में बैठा कर वापिस उसके महलों में ही ले गये। जब उसके महलों में पहुँचे तो क्या देखते हैं कि राजा का नशा अभी तक भी कम नहीं हुआ था, महलों के सामने जाकर बग्घी रोक दी गई। अंगरक्षक सिपाही जो वहाँ तैनात थे वे अपनी अपनी बीटों पर घूम घूम कर पहरा दे रहे थे और एक मिनट की भी कोताही नहीं की जा रही थी। राजा ने बग्घी में से यह सब कुछ देखा और ज़ोर ज़ोर से बोलना शुरू कर दिया कि तुम कौन हो, मुझे बग्घी में कहाँ लेकर जा रहे हो, वह अपने आप को भी पूरी तरह भूल चुका था। कहने लगा, "बग्घी में से मुझे उतार दो, मैंने भी पहरा देना है, मेरी वर्दी कहाँ है? जब शोर शराबा हुआ तो day officer भी आ गया सभी ने सोच विचार कर, राजा को सिपाही की वर्दी पहना दी, बन्डोलीयर उसके कन्धे पर रख दिया तथा फौजी, जूते, बिरजिस पहना दी। राजा भी एक बीट (beat) पर पहरा देने लग गया। योग्य मन्त्री एक तरफ होकर छिप कर बैठ गये जब दो एक घंटे बीत गये तो राजा वर्दी की तरफ देखने लगा। कुछ कुछ होश आई, अपने बन्डोलीयर की ओर देखा, राईफल की ओर देखा, अपने चौगिर्दे भी देखा। वजीर समझ गये कि इसे कुछ होश आ गई है। एक दम इसके पास पहुँचे बड़े सम्मान पूर्वक कहने लगे कि महाराज! क्या हुक्म है? राजा कहने लगा, "मैं तो राजा हूँ, यह मेरा महल है मैं यह क्या करने लग पड़ा हूँ। रक्षा तो मेरी इन सिपाहियों ने करनी थी मेरे हाथों में यह राईफल कैसे आ गई और यह पेटी, बिरजिस कैसे पहन

लीं। बन्डोलियर वगैरा मेरे गले में कैसे आ गया? इस पर योग्य वज़ीर ने अधीनगी सहित प्रार्थना की कि महाराज! माफ करना, आज आप को dinner पर अधिक तेज़ शराब पीने से एक दम नशा हो जाने से शराब ने बेहोशी की हालत में पहुँचा दिया। उस समय हमने यही उचित समझा कि कोई महाराज की बेइज्जती न कर दे और जल्दी से जल्दी अपनी राजधानी ले चलें। जब यहाँ पहुँचे तो आप ने कहा कि मैंने भी राजा की रक्षा करनी है। आपने सिपाही वाली वर्दी पहन ली, बीट पर घूम घूम कर पहरा देने लगे। हमारे लाख बार समझाने के बाद भी आप यही कहे जाते थे कि मैंने पहरा देना है। मैंने पहरा देना है, मैं राजा नहीं हूँ, सिपाही हूँ, मेरी वर्दी लाओ। सो हजूर आप जी को वर्दी दे दी गई अब आप जी को होश आई है। उस समय पास ही निकट के बाथरूप में जाकर राजा ने अपनी वर्दी बदल ली तथा इस बात का बड़ा अफसोस करने लगा कि नशे में बहुत ताकत है उसने मुझे पूरी तरह भुला दिया। मेरे योग्य वज़ीर मुझे समझाते रहे पर फिर भी मैंने यही कहा कि मैं राजा नहीं हूँ। कितनी बड़ी भूल हो गई मुझ से। इसी तरह माया के नशे ने जीव को पूरी तरह भुला दिया है कि मैं कौन हूँ। यह नहीं जानता कि मैं राम का अंश हूँ और न ही इसे पता है कि मैं ज्योति स्वरूप हूँ। यह अपने आप को पाँच तत्वों की बनी देह जो क्षण भंगुर है एक प्रकार से garbage bag (गन्दगी का थैला) है। जिसके रोम रोम में से प्रत्येक क्षण ज़हरीली मैल निकलती रहती है। नाक, कान, आँख, मुँह तथा मल मूत्र की इन्द्रियों में से बहुत ही बुरी गन्दगी निकलती रहती है जिसे हम देखना भी पसन्द नहीं करते। इसे जीव अपना आपा कहता है, कितनी बड़ी भूल है? गुरू महाराज जी कहते हैं कि तू तो वाहिगुरू जी का अंश है, अपने मूल को पहचान पर यह मूल पहचानते समय अपने आप को शरीर ही समझता है कि मैं तो पाँच तत्वों की देही ही हूँ। यह देह क्षण भंगुर है पर यह माया की ठगमूरी जड़ी सूँघ कर अपने आप को जानने की कोशिश ही नहीं करता। इस जीव के आस पास बहुत से पर्दे पड़े हुये हैं जो इसे पूरी होश में नहीं आने देते, जीव का मूल, तीनों गुणों के प्रभाव से ऊपर है। माया की वहाँ कोई पहुँच नहीं है पर माया के अधीन पर्दा-दर-पर्दा इस जीव के चारों ओर लिपटा पड़ा है। इसे कुछ भी नहीं सूझ रहा कि मैं कोई बहुत स्वच्छ अस्तित्व हूँ, अब आप ही सोचो कि मैं, तुम तथा अन्य सभी अपने आप को पाँच तत्वों की बनी हुई देह ही समझते हैं। बातें करने में हम बड़े ज्ञानी हैं कहते हैं कि हम देह नहीं हैं पर यह वाक्य तो मुख से किया गया है, पर हमारी सुरत इस बात को कभी भी नहीं मानती। वह इसी शरीर को 'मैं' कहेगी चाहे कितना भी ज्ञान क्यों न दे दो। ज्ञान की बातें

क्योंकि बुद्धि मण्डल में से निकल रही हैं। बुद्धि में जड़ता का अंश अधिक होने से इसकी निर्णय शक्ति सीमित है। यह हमारी होश अपने आप को पाँच तत्वों का शरीर ही मानती रहेगी, ज्ञान की बातें कहने से कोई फर्क नहीं पड़ता। ये बुद्धि मण्डल की भूल भुलैया है, अपने आप ही अपने को ज्ञानी मान कर बैठा है। महाराज कहते हैं कि जिसने अपने आप को नहीं पहचाना, वह पशु है, ढोर और गँवार हैं –

आवन आये स्रिसटि महि बिनु बूझे पसु ढोर।
नानक गुरमुखि सो बुझै जा कै भाग मथोर॥ *पृष्ठ - 251*

अपने आप को देह समझना, यह हमारे पतन की निशानी है। हमारे चारों ओर बेअन्त पर्दे हैं जो हमें रूप से कुरूप कर रहे हैं। हमें नहीं पता चलता कि यह क्यों हो गया, क्योंकि जिन्होंने देखा है वे बताते हैं कि तू सारी इन्द्रियों के स्वभाव के अनुसार किये गये कर्मों को देखने वाला हैं, तू सत-चित्त-आनन्द है; तू अचाह है, तू अनावश्यक है, तू दाता है, तू अन्तसकरण की उनमनी अवस्था में प्रत्यक्ष है, तू धूप नहीं, धूप का प्रकाशक है, सूरज का प्रकाश है, तू स्वंय ही प्यार रूप है, तू स्वयं पूर्ण ज्ञान स्वरूप है, तेरा साथी निरंकार हर समय तेरे साथ है, उसका माया पर पड़ता प्रतिबिम्ब जीव भाव पैदा करता है पर तू शुद्ध चेतन आप ही हैं। गुरू महाराज जी इस प्रकार बताते हैं –

अचरज कथा महा अनूप। प्रातमा पारब्रहम का रूपु।
ना इहु बूढ़ा ना इहु बाला। ना इसु दूखु नही जम जाला।
ना इहु बिनसै ना इहु जाइ। आदि जुगादी रहिआ समाइ।
ना इसु उसनु नही इसु सीतु। ना इसु दुसमनु ना इसु मीतु।
ना इसु हरखु नही इसु सोगु। सभु किछु इस का इहु करनै जोगु।
ना इसु बापु नही इसु माइआ। इहु अपरंपरु होता आइआ।
पाप पुंन का इसु लेपु न लागै। घट घट अंतरि सद ही जागै।
तीनि गुणा इक सकति उपाइआ। महा माइआ ता की है छाइआ।
अछल अछेद अभेद दइआल। दीन दइआल सदा किरपाल।
ता की गति मिति कछू न पाइ। नानक ता कै बलि बलि जाइ॥
पृष्ठ - 868

जीव, ईश्वर का भेद केवल मायिक उपाधि के कारण ही प्रतीत होता है। माया का जो मलिन अंश है उसमें पड़ा हुआ प्रतिबिम्ब जीव कहलाने लग जाता है तथा शुद्ध अंश ईश्वर है। दोनों ही बिम्ब का प्रतिबिम्ब हैं तथा प्रतीत देते हैं। पर तू इनका भी दृष्टा है, तू आप निरंकार ही है।

कितना महान पतन हुआ कि यह महान चेतन अंश प्रकृति में मिलकर

अपनी होश हवास खो बैठी तथा इतना ज्यादा भूल गई कि यह अपने आप को पाँच तत्वों की बनी हुई अति मलीन देह मानने से कभी नहीं हटता। सदा जीव ही बना रहना चाहती है। वह तो फिर भी कुछ भाग्यशाली मनुष्य है जिन्हें यह बात समझ में आ जाये कि मैं शरीर नहीं हूँ। मैं तो इसमें बसने वाला जीअरा (जीव) हूँ, मैं पैदा होता हूँ, मरता हूँ तब तक जन्म मरण का चक्कर गले से नहीं उतरना जब तक हमें अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं हो जाता। यह चेतन अंश अपने आप को भूलता भूलता इतना भूल गया कि इस मलीन देह को अपना आपा (निजित्व) समझ बैठा। इस पर सूक्ष्म पर्दे कर्मों, धर्मों के पर्दे, द्वैत के पर्दे तथा अन्य अनेक प्रकार के पर्दे पड़ने के कारण पूर्ण रूप से यह चेतन ज्योति मूर्च्छित हुई प्रतीत देने लगी। बेअन्त महात्मा ऊँचे ऊँचे बोल बोल कर, कीर्तन करके इसे समझाते हैं, पर यह जीव होश में नहीं आता, न ही अपनी निष्ठा को छोड़ने के लिये तैयार होता है –

कबीर निरमल बूंद अकास की परि गई भूमि बिकार।
बिनु संगति इउ मांनई होइ गई भठ छार॥ *पृष्ठ – 1375*

हैरानी की बात है कि चेतन अंश महा मलीन माया अंश के साथ और शरीर के साथ मिल कर अपने आप को शरीर कहे जा रही है जिस प्रकार वह राजा नशा करके इतना भूल गया था, कि उसे अपने आप का ज्ञान ही भूल गया तथा अपनी राजा पदवी छोड़कर सिपाही पदवी ही मानता रहा। इसी तरह से यह चेतन अंश अपने परमात्मा पद को छोड़कर जीव उपाधि में से होती हुई शरीर ही मानने लगी। पढ़ता है, लिखता है, डिग्रियाँ लेता है पर ये सब मूर्खों की बातें हैं यदि अपने स्वरूप का ज्ञान न हुआ। इस चेतन अंश को भुलाने वाले हैं, स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीर, पाँच कोश आनन्दमयी कोश, विज्ञानमयी कोश, मनोमय कोश, प्राणमय कोश तथा अन्नमय कोश। यह चेतन अस्तित्व नीचे फिसलनी शुरू हुई तथा प्रकृति के साथ मिलकर तीनों शरीरों में से होती हुई पाँच कोशों में से फिसलती हुई अन्नमय कोश में आकर पूरी तरह से अपने आप को भूल गई तथा इसके चौगिर्दे चतुष्टे अन्तसकरण ने घेरा डाल लिया, जिसमें मन, बुद्धि, चित्त तथा अहमभाव शामिल है। इसे बेहोश करने वाले प्राण, उपान, उदान, बिआन, समान आदि पाँच प्राण; पाँच कर्मेन्द्रिया – हाथ, पैर आदि; पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ नाक, रूप, रसना, आँख, त्वचा; पाँच स्थूल भूत – आकाश, हवा, अग्नि, पानी तथा मिट्टी। 25 प्रकृतियाँ जिनसे पाँच ज्ञानेद्रियों की उत्पति हुई है। ये सभी उस निर्मल ज्योति को उसका मूल भुलाने में सदा तत्पर हैं। पाँच चोर काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार; राज, माल, रूप जात यौवन, पाँच ठग, अनेक प्रकार के अभिमान, दम्भ ईर्ष्या, निन्दा,

चुगली, कुबुद्धि, अज्ञान, तृष्णा तथा हिंसा आदि घातक अस्तित्व इस जीव को सदा ही भुलाये रखते हैं। इसके अतिरिक्त मिथ्या दृष्टि जैसे कि संसार को सत्य मानना तथा वाहिगुरू के अस्तित्व को स्वीकार न करना, अपने आप को पाँच तत्वों की देह मानना यह मिथ्या दृष्टि हुआ करती है। विभ्रमति यह एक होश हुआ करती है जो सदा ही भ्रम में डाले रखती है। मिथ्या दृष्टि किसे कहते हैं इसके बारे में विचारवान लोग बताते हैं जो आदि से अन्त तक सत्य न हो और मध्य में सत्य भासित हो जैसे कि धूएं के पहाड़ सपनों के पहाड़ हुआ करते हैं, उसे सत्य करके बताने वाली दृष्टि को मिथ्या दृष्टि कहते हैं। यह भ्रामक बुद्धि ही मिथ्या को सत्य प्रकट करवाती है, इस भ्रामक बुद्धि को ही विभ्रमति कहा जाता है। इनके अतिरिक्त कर्म धर्म, पूजा, तीर्थ यात्रा, दान-पुण्य, प्रभुता, आशा तथा अन्देशों के पर्दो से इस जीव को पूरी तरह से ढका हुआ है। अनेक प्रकार की वासनाएं, जैसे कि देह वासना, पुत्र वासना, कारोबार वासना, सम्बन्धी वासना, राजसी शक्ति प्राप्त करने की वासनायें पर धन की प्राप्ति अनेक प्रकार की बुरी चितवनाएं, अनेक प्रकार के रसों को भोगने की रुचि, अनेक प्रकार के रसों को मानने की रुचि, अनेक प्रकार के भोगों में प्रवृत्त होने की रुचि, पर स्त्री गमन, पर धन की प्राप्ति अनेक प्रकार की लालसा तथा विरोधियों का बुरा सोचना, वैर भाव की लहरों में डूबना, शास्त्र वासना, अनुष्ठान वासना, ये सभी लहरें इस जीव को होश में नहीं आने देतीं। पाँच क्लेश अविद्या, अस्मिता, अभिनिवेश, राग, द्वैष; पाखंड, अश्रद्धा, कुसंग, कुविचार, मिथ्या सोच, संशय, पाँच प्रकार के भ्रम जैसे कि भेद भ्रम, संग भ्रम, कृतत्व भ्रम, संसार तथा वाहिगुरू का अलग अलग होने का भ्रम तथा संसार को परमेश्वर का विकार रूप मानने का भ्रम; ये सभी अज्ञान की काली घनी अन्धेरियों को चलाकर सारे प्रकाश को खत्म करने की समर्थ रखते हैं। नौं रसों की लालसा मन में बने रहना, ग्रहों से डर लगा रहना, 16 प्रकार के श्रृंगार लगाकर देह को सजाने की लालसा, 36 प्रकार के भोजन खाने की तीव्र लालसा, डर, वैर, जात पात, कुल, आधि, विआधि, उपाधि, आलस, नशई हो जाना, रोना, हंसना, सुख की इच्छा, देखने वाली वस्तुओं को परमेश्वर से अलग देखना, मन में उठने वाले अनेक फुरने इस जीव को सदा ही बान्धे रखते हैं इसलिये इस जीव की बुद्धि भ्रष्ट हो गई है, यह किसी की सुनता ही नहीं तथा महापुरुषों को कहना पड़ गया है –

फरीदा कूकेदिआ चांगेदिआ मती देदिआ नित।
जो सैतानि वंञाइआ से कित फेरहि चित॥ *पृष्ठ - 1378*

इन सभी बन्धनों का विवरण जो ऊपर अंकित किया गया है यह

सारा हउमै का परिवार है, इस तरह यह हउमै जीव को बान्ध लिया करती है। महापुरुष इन बन्धनों की संक्षेप में व्याख्या करते हुये बताते हैं कि आठ बन्धन बहुत ही भयानक हैं जिनमें से 1. अविद्या 2. अपने आप को शरीर मानना या थोड़ा बहुत ज्ञान प्राप्त करके अपने आपको जीव मानना 3. अपने आप को अलग हस्ती प्रत्यक्ष रूप में अनुभव करके हउमै अधीन होकर अलग मानना इसे अहमभाव कहते हैं। 4. इससे अगला बन्धन जो बहुत ही विकराल रूप धारण करता है - न तीर्थ भ्रमण से और न ही बहुत अधिक दान पुण्य करने से खत्म होता है वह महा मलीन बन्धन संशय का है। संशय के कारण ही ब्रह्म, संसार रूप, में नज़र आता है। गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं -

करमी सहजु न ऊपजै विणु सहजै सहसा न जाइ।
नह जाइ सहसा कितै संजमि रहे करम कमाए।
सहसै जीउ मलीणु है कितु संजमि धोता जाए।
मंनु धोवहु सबदि लागहु हरि सिउ रहहु चितु लाइ।
कहै नानकु गुरपरसादी सहजु उपजै इहु सहसा इव जाइ।

पृष्ठ - 919

सो यह संशय किसी प्रकार भी नहीं टूटता जब तक पूरे गुरू की कृपा इस पर न हो जाये। शरीरधारी होकर यह अनेक प्रकार के कर्म करता है जिनमें शुभ अशुभ कायिक कर्म, प्रायश्चित कर्म, कामुक कर्म भी हैं, प्रालब्ध कर्म हैं, संचित कर्म हैं, क्रियामान कर्म हैं इन कर्मों में बन्धा हुआ यह जीव सदा ही जन्मता और मरता रहता है और कर्म गति के प्रभावाधीन हुआ दुःख सुख भोगता रहता है -

भोगे बिन भागे नही करम गती बलवान।

यह महापुरुषों का आम फ़रमान है। गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं -

लेखु न मिटई हे सखी जो लिखिआ करतारि। पृष्ठ - 937

इन लेखों को मिटाने के लिये कोई भी समरथ नहीं है क्योंकि यह भोगने ही पड़ते हैं। इस पर एक अति विचित्र कथा गुरू इतिहास में आती है -

गुरू पाँचवें पातशाह के समय एक बहुत ही प्रवान नाम रसिये ज्ञानवान पूर्ण रूप में बख्शीश प्राप्त किए भाई कलिआणा जी हुये हैं जिन्हें समर्थता प्रदान करके गुरू पाँचवे पातशाह जी ने मन्डी सकेत के साथ लगते हुये सारे इलाके में सच सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिये बख्शीश देकर भेजा और अपने दस्ते-मुबारक (कर कमलों) से एक रूमाल दिया। भाई कलिआणा जी पहाड़ों में चले गये वहाँ जाकर देखा कि लोग वाहिगुरू जी को पूरी तरह से भूल चुके हैं तथा उसकी अनेक शक्तियों में से कुछ शक्तियों को पत्थर

रूप में पूज रहे हैं और ठाकुर को इतना नीचा ले आए कि उसे जन्म मरण वाला मान लिया। वाहिगुरू जी जो करोड़ों शक्तियों का मालिक है, जो कभी भी जन्म मरण के बन्धन में नहीं आया करता उसे कई प्रतीकों में इतना छोटा कर दिया कि उसे शरीरधारी मानकर उसकी परिपूर्णता एक प्रकार से समाप्त ही कर दी। भाई कलिआणा जी ने सच का सिद्धान्त दृढ़ करवाया। उस स्थान से लोगों को मूत पूजा से हटा कर उस अमूर्त वाहिगुरू का ज्ञान बख्शा जो हर घट, हर जगह परिपूर्ण है। जैसा कि फ़रमान है –

जह जह पेखउ तह जहूरि दूरि कतहु न जाई।
रवि रहिआ सरबत्र मै मन सदा धिआई॥
ईत ऊत नही बीछुड़ै सो संगी गनीऐ।
बिनसि जाइ जो निमख महि सो अलप सुखु भनीऐ॥
प्रतिपालै अपिआउ देइ कछु ऊन न होई।
सासि सासि संमालता मेरा प्रभु सोई॥
अछल अछेद अपार प्रभ ऊचा जाका रूपु।
जपि जपि करहि अनंदु जन अचरज आनूपु॥
सा मति देहु दइआल प्रभ जितु तुमहि अराधा।
नानकु मंगै दानु प्रभ रेन पग साधा। *पृष्ठ - 678*

उन्हें निरर्थक कर्मों में से निकाल कर शबद का ज्ञान कराया और शबद की आराधना करने की युक्ति बताई। उच्च रसों के साथ मिलाप के लिये हरि कीर्तन के साथ जोड़ा, तत्व बाणी समझा कर उसके साथ मिलाया। धीरे धीरे काफी संगत इकट्ठी होने लगी। पर्वतों में एक और निखिद्ध कर्म था उनमें से बहुत से लोग तन्त्र, मन्त्र, द्वारा काली शक्तियों को वश में करने का यत्न करते थे। भूत प्रेत तथा और अनेक ऐसी शक्तियों को वश में करके अपना जीवन बर्बाद कर रहे थे। प्रभु के साथ कोई सम्बन्ध नहीं था। तन्त्र, मन्त्र, जन्त्र आम प्रचलित था। भाई कलिआणा जी ने गुरू महाराज जी का सन्देश दिया कि जिसके हृदय में नाम प्रवेश कर जाये वहाँ नाम उसकी पूरी तरह रक्षा करता है। किसी जन्त्र, मन्त्र, तन्त्र में यह ताकत नहीं कि वह नाम शक्ति का मुकाबला कर सके। नाम जाप किया हुआ शक्ति भी प्रदान करता है जब हृदय में बस जाये तो सारी रिद्धियां-सिद्धियां हाथ जोड़े पीछे लगी रहती हैं पर प्रभु प्यारा वाहिगुरू जी को छोड़कर इन नाटकों चेटकों में नहीं पड़ता। महाराज जी फ़रमान करते हैं –

ब्रहम बिंदै तिसदा ब्रहमतु रहै एक सबदि लिव लाइ।
नवनिधी अठारह सिधी पिछै लगीआ फिरहि
जो हरि हिरदै सदा वसाइ। *पृष्ठ - 649*

जिसकी लिव वाहिगुरू जी के साथ लग जाये उसे ये काली शक्तियाँ गिरा नहीं सकतीं। इसके विपरीत यहाँ तक है कि यमदूत भी डर कर भाग जाते हैं जैसा कि फ़रमान है -

मनि तनि प्रभु आराधीऐ मिलि साध समागै।
उचरत गुन गोपाल जसु दूर ते जमु भागै॥
राम नामु जो जनु जपै अनदिनु सदु जागै।
तंतु मंतु नह जोहई तितु चाखु न लागै॥
काम क्रोध मद मान मोह बिनसे अनरागै।
आनंद मगन रसि राम रंगि नानक सरनागै॥ *पृष्ठ - 817-18*

वाहिगुरू को याद करने से दुखों का भी खातमा हो जाया करता है तथा यमदूत भी निकट नहीं आते क्योंकि वाहिगुरू जी सर्व कला समरथ हैं, वाहिगुरू जी का बल अमित है, जैसा कि -

दूखु न लागै कदे तुधु पारब्रहमु चितारे।
जम कंकरु नेड़ि न आवई गुरसिख पिआरे॥
करण कारण समरथु है तिसु बिनु नही होरु।
नानक प्रभ सरणागती साचा मनि जोरु॥ *पृष्ठ - 818*

इस प्रकार जन्त्र-मन्त्र की नाम के आगे कोई पेश नहीं चला करती। जन्म साखियों में ऐसी अनेक साखियाँ आती हैं जैसे कि आसाम की नूरशाह की साखी आती है जिसने मरदाना को भेडू बना लिया था। उसने इतने ज़ोर से hypnotize किया कि मरदाना अपने आप को भेडू समझने लग गया। जब गुरू नानक साहिब अपने सेवक की रक्षा करने के लिये नूरशाह के जादुई महल में प्रवेश करते हैं तो सारे तान्त्रिकों ने पूरा ज़ोर लगा दिया, त्राटक करने का यत्न किया। नूरशाह का बल हार गया तथा गुरू नानक की चरण शरण में आकर अपने किये पर बहुत पछताई। मरदाना को सुचेत किया तथा इस देश में से तन्त्र मन्त्र, की बुरी आदत निकाल कर नाम के साथ जोड़ा। कई प्रेमी इस साखी को सुनकर शंका करेंगे कि मरदाना भी तो हर समय नाम जपता था उस पर प्रभाव क्यों हुआ। भाई साहिब भाई डा. वीर सिंह जी ने श्री गुरू नानक चमत्कार में इस बात का बहुत विस्तार से वर्णन किया है, जिसके अनुसार यह बताया गया है कि नूरशाह का मरदाना पर जब कोई प्रभाव न हुआ तो उसने मन में समझ लिया कि इसे राग मस्त किया जा सकता है। तो उसने राग की ऐसी सुरतानें बजाई कि मरदाना की लिव प्रभु से टूट कर राग की सुरताल में फंस गई, जब वह पूरी तरह से मस्त हो गया तब उसने अपना त्राटक उस पर कर दिया। जन्त्र मन्त्र, त्राटक आदि एक विद्या के अधीन हैं। भारत वर्ष का, महाभारत के महान युद्ध के बाद पतन होना शुरू हो गया।

उस समय वेदों का ज्ञान मद्धम पड़ गया और समाज में बेअन्त कुरीतियां आ गई। जिनमें से ऐसे निश्चय पैदा हुये जिन्हें पूरी तरह से निरर्थक निश्चय कहा जा सकता है। वाम मार्ग, घोरी पंथ, चार वाकिए तथा और अनेक ऐसे तन्त्र-मन्त्र करने वाले, भोगों में पूरी तरह से गर्क होकर विषयानन्द को ही सबसे ऊँचा जानने वाले तन्त्री, मन्त्री, जन्त्री पैदा हुये। उसी समय के दौरान मनुष्य बलि तथा पशुओं की बलि शुरू हो गई तथा वाहिगुरू जी को पूरी तरह भूल गये। सो गुरू महाराज जी ने नाम का प्रचार किया। प्रभु की परिपूर्णता का ज्ञान संसार को बख्शा। सो विचार कर रहे थे कि जिसके अन्दर नाम शक्ति का प्रवेश हो गया उसे जन्त्र, मन्त्र, तन्त्र, मोह नहीं सकता। गुरू महाराज जी ने मसाण आदि जलाने वालों को, भूतों प्रेतों की रूहों को काबू करने वालों को मनमुख कहकर फ़रमान किया है -

मनमुखि भुलै जन की काणि। पर घरु जोहै हाणे हाणि।
मनमुखि भरमि भवै बेबाणि। वेमारगि मूसै मंत्रि मसाणि।
सबदु न चीनै लवै कुबाणि। नानक साचि रते सुखु जाणि॥
पृष्ठ - 941

सारी बलाओं से बड़ा जो मन्त्र है जिसे महा मन्त्र कहा जाता है, उसका जाप करने से कोई भूत प्रेत, खवीस भैरों आदि निकट नहीं आते-

सुनत जपत हरि नाम जसु ता की दूरि बलाई।
महा मंत्रु नानकु कथै हरि के गुण गाई। *पृष्ठ - 814*

सो इस प्रकार भाई कलिआणा जी ने वाहिगुरू जी की भक्ति मन्डी सकेत के साथ लगते सारे क्षेत्रों में दृढ़ करवाई। काफी संगतें अमृत बेला में श्री आसा जी की वार के कीर्तन के समय आने लग गईं। कीर्तन उपरान्त, कड़ाह प्रसाद की देग बनाकर संगत में बांटी जाती। बहुत सारे मन्दिरों के पुजारी जो जन्त्र मन्त्र में विश्वास रखते थे तथा यह भी समझते थे कि यह ठाकुर पैदा होता है वे भाई कलिआणा जी के इस प्रचार से बहुत ईर्ष्या करते थे और मौके की तलाश में रहते थे कि कब मौका मिले और जाकर राजा के पास शिकायत करके इसे दण्डित करवायें।

इस प्रकार समय बीतता गया, जनमाष्टमी का दिन आ गया, उधर राजा ने ऐलान कर दिया कि कल को ठाकुर जी ने जन्म लेना है कोई आदमी चूल्हे में आग न जलाये, किसी प्रकार की कोई भी आग न जलाई जाये। यह हुक्म भाई कलिआणा जी ने भी सुना। पर आपने अपने नितनेम के अनुसार अमृत बेला में श्री आसा जी की वार का कीर्तन किया, इसके बाद कड़ाह प्रसाद बना कर संगत में बांटा। इस क्रिया को कट्टरवादियों ने राजा के हुक्म के खिलाफ एक बगावत ही समझा। सो उन्होंने राजा के

पास बहुत बातें बढ़ा चढ़ा कर शिकायत कर दी। राजा ने सिपाहियों को हुक्म देकर भाई कलिआणा जी को पकड़वा दिया और पूछा तो भाई कलिआणा जी ने कहा कि राजन! यह तुम्हें गलत फहमी हुई है कि ठाकुर जन्म मरण में आता है। वाहिगुरू जी जो करोड़ों ब्रह्मडों का मालिक है वह कभी भी जन्म मरण में नहीं आया करता। सारी सृष्टि उसकी एक खेल है वह स्वंय ही संसार में अनेक रूप धारण करके अपनी लीला कर रहा है। हमारे गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं कि जो यह कहता है कि ठाकुर जन्म लेता है, यदि जन्म लेता है तो वह मरता भी जरूर है। गुरू महाराज जी का फ़रमान है कि हमारा ठाकुर सदा ही बोलता है। सारे संसार का पालन कर रहा है वह अजूनी है, जन्म मरण से रहित है, आप ताड़ना करते हुये फ़रमान करते हैं कि वह मुख जल जाना चाहिये जो कहता है कि ठाकुर पैदा होता है और मरता है। भाई कलिआणा जी कहने लगे कि राजन! यदि आप यह भी निश्चय रखो कि श्री कृष्ण जी महाराज का जन्म अवतार अष्टमी वाले दिन हुआ था, इसी तिथि को आपने श्री पूर्ण परमात्मा का जन्म दिन मान लिया। पर हम इस निश्चय से सम्बन्ध रखते हैं कि ठाकुर सदा-सदा है, उसका कभी अभाव नहीं होता उसे कभी मृत्यु नहीं आती है। सभी शरीर उसके अपने ही हैं उन्हीं में रहकर ही वह अपने रूप दर्शाता है। कृष्ण महाराज जी में प्रभु की शक्ति प्रकट थी। सो हम उनके बारे में कोई गलत निश्चय नहीं रखते, वह महान ज्ञानवान थे, भगवान थे, प्रभु थे, शारीरिक तौर पर वे सीमित थे, प्रभु सभी जगह परिपूर्ण होता है। सो हम उस प्रभु के साथ अमृत बेला में जुड़ते हैं, उसकी याद में बैठते हैं। इन निरर्थक निश्चयों को हम नहीं अपनाते हमारा ठाकुर सदा ही जीवित है प्रभु न कभी आता है न कभी जाता है। वह हर स्थान, हर घट में समाई गई परम ज्योति है, मेरे सतगुरू जी इसके बारे में फ़रमान करते हैं -

सगली थीति पासि डारि राखी। असटम थीति गोविंद जनमासी।
भरमि भूले नर करत कचराइण। जनम मरण ते रहत नाराइण॥
करि पंजीरु खवाइओ चोर। ओहु जनमि न मरै रे साकत ढोर॥
सगल पराध देरि लोरोनी। सो मुखु जलउ जितु कहहि ठाकुरु जोनी॥
जनमि न मरै न आवै न जाइ। नानक का प्रभु रहिओ समाइ॥

पृष्ठ - 1136

राजा ने भाई कलिआणा जी के वचन सुनकर बहुत ही बुरा मनाया। हुक्म दिया कि इस नास्तिक पुरुष की एक टांग काट दी जाये, भाई कलिआणा जी से जो सत्य उपदेश सुनकर प्रभु के पीछे लगे थे वे बहुत

हैरान हुये कि बिना किसी कारण से भाई कलिआणा जी को राजा सजा देने पर तुला हुआ है, उन्होंने राजा के पास प्रार्थना की पर वह अपनी ज़िद पर अड़ा रहा । उस समय भाई कलिआणा जी ने गुरू महाराज जी के चरणों में प्रार्थना की तो अन्दर से आवाज़ आई कि तेरा रक्षक अकाल पुरुष है जिसके तू पीछे लगा है वह तेरी रक्षा करेगा क्योंकि उसका बिरद (duty) है अपने प्यारों की रक्षा करना। जिस प्रकार प्रहलाद की रक्षा स्वंय प्रभु ने की। गुरू महाराज जी का फ़रमान है –

आपै दैत लाइ दिते सन्त जना कउ आपे राखा सोई।
जो तेरी सदा सरणाई तिन मनि दुखु न होई॥
जुगि जुगि भगता की रखदा आइआ।
दैत पुत्रु प्रहलादु गाइत्री तरपणु
किछू न जाणै सबदे मेलि मिलाइआ॥

....

प्रहलादु दुबिधा न पड़ै हरि नामु न छोड़ै
डरै न किसै दा डराइआ॥
सन्त जना का हरि जीउ राखा
दैतै कालु नेड़ै आइआ॥
आपणी पैज आपे राखै भगतां देइ वडिआई।
नानक हरणाखसु नखी बिदारिआ
अंधै दर की खबरि न पाई॥ *पृष्ठ - 1133*

ये वचन जब हृदय में प्रकट हुये, उस समय भाई कलिआणा जी को पूर्ण विश्वास हो गया कि मेरे सतगुरू जी ने आकाश बाणी द्वारा मुझे सब कुछ बता दिया है, वाहिगुरू जी मेरी रक्षा करेंगे उस समय भाई कलिआणा जी ने राजा को कहा कि राजन! तुम्हें यह नहीं चाहिये था कि यदि किसी का निश्चय (मत) आपके साथ मेल न खाता हो तो उसे जान से मारने की बात सोची जाये। मैंने आपको सत्य का ज्ञान दिया है, आप उस पर विचार करो। क्रोध में आकर आप ऐसा निन्दनीय कर्म मत करो क्योंकि यह अन्याय है, अन्याय करने से तप हार जाता है। उस प्रभु से डरो, उस ठाकुर की ओर देखो, वह सब का रखवाला है, आप सत्य को ग्रहण करो, उस ठाकुर की शरण में आओ जिसकी शरण में जाने से कोई भी दु:ख सुख नहीं रहता। मेरा ठाकुर निरभउ है, निरवैर है, हम उस निरभउ को जपते हैं तथा हमारे गुरू महाराज जी का फ़रमान है –

तिस ते दूरि कहा को जाइ। उबरै राखनहारु धिआइ।
निरभउ जपै सगल भउ मिटै। प्रभ किरपा ते प्राणी छुटै।
जिसु प्रभु राखै तिसु नाही दूख। नामु जपत मनि होवत सूख।
चिंता जाइ मिटै अहंकारु। तिसु जन कउ कोइ न पहुचनहारु।
सिर ऊपरि ठाढा गुर सूरा। नानक ता के कारज पूरा।

पृष्ठ - 293

धर्म कमाने के लिये जीव को धा्मक होना चाहिये। सत्य विचार सुनने में कोई दोष नहीं हुआ करता पर तू हमें नास्तिक ही कहता है अच्छा तेरी मर्जी यदि तू मुझे सजा देना चाहता है, अपना दिल खुश कर ले। हमारा तो निश्चय है -

कहु कबीर अखर दुइ भाखि। होइगा खसमु त लेइगा राखि॥

पृष्ठ - 329

राजा ने जल्लाद को हुक्म दे दिया। जल्लाद शस्त्र लेकर हाजिर हुआ तथा भाई कलिआणा जी की टाँग पर जब वार करने लगा तो बड़े वज़ीर की आवाज आई कि 'रुक जाओ' क्योंकि उस समय राजा को गश (मूर्च्छा) आ गई। एक दम हकीमों ने कह दिया कि राजा के बचने की कोई उम्मीद नहीं है तथा साथ ही यह भी कह दिया कि एक निर्दोष परदेसी को कितना भयानक दण्ड दिया जा रहा है। इसका जो ठाकुर है वह आ पहुँचा है। अब राजा की जान तभी बच सकती है यदि यह परदेसी प्रभु के पास अरदास करे और कृपा करे। भाई कलिआणा जी को छोड़ दिया गया। अमीर, वज़ीर तथा दरबारी रानियों सहित भाई कलिआणा जी के सामने हाथ जोड़े खड़े हैं और प्रार्थना कर रहे हैं कि हमारे नरेश की गलती माफ कर दो। तुम्हारा ठाकुर सर्व शक्तिमान है, सब कुछ सुनता है, हर जगह पर हाज़िर-नाज़िर, रक्षा करने वाला है। उसने हमारे राजा को सजा दी है। भाई कलिआणा जी ने सभी की प्रार्थना सुनकर शुभ याचना की उन्होंने कृपा की तथा गुरमुख स्वभाव के अनुसार गुरू चरणों में राजा की जान बख्शने के लिये प्रार्थना की। गुरू महाराज जी का रूमाल जो इन्हें चलते समय बख्शा गया था जपुजी साहिब पढ़ कर उसे जल में भिगो कर, उस राजा के मुख में जल डाला गया। राजा को होश आई। पहला अक्षर मुख से निकला कि देखना! उस परदेसी की टाँग न काटी जाये, उसका ठाकुर सचमुच ही बहुत ऊँचा है। मैंने गलती की है, मुझे उसके पास ले चलो, मैं अपनी गलती की क्षमा मांगू। सो इस प्रकार राजा गुरू की सिखी में आया। अमृत बेला में प्रतिदिन कीर्तन में आने का नियम बना लिया। इसके मन में अथाह श्रद्धा की लहर उठी कि गुरू महाराज जी के दर्शन करूँ और उनसे नाम दान प्राप्त करके जीवन का लाभ प्राप्त करूँ। भाई कलिआणा जी के साथ सलाह करके यह नरेश अनेक प्रकार के उपहार लेकर परिवार सहित गुरू दर्शनों के लिये अमृतसर पहुँचा। उसने काफी सारा धन भेंट करने के लिये साथ ले लिया। जिस समय यह राजा गुरू पाँचवे पातशाह के चरणों में नमस्कार कर रहा था

उस समय गुरू महाराज जी दक्खणी ओंकार का पाठ कर रहे थे। राजा के कानों में यह वचन सुनाई दिया –

लेखु न मिटई हे सखी जो लिखिआ करतारि।
आपे कारणु जिनि कीआ करि किरपा पगु धारि।
करते हथि वडिआईआ बूझहु गुर बीचारि।
लिखिआ फेरि न सकीऐ जिउ भावी तिउ सारि।
नदरि तेरी सुखु पाइआ नानक सबदु वीचारि।   पृष्ठ – 937

राजा चरणों में शीश झुकाकर बैठ गया और पाठ श्रवण किया। उस समय इसके मन में एक बहुत बड़ी शंका पैदा हो गई कि जो मस्तक में लेख लिखे हुये हैं वे भोगने ही पड़ते हैं और कोई ऐसा नहीं जो उन्हें मिटा सके। उसके मन में विचार आया कि मैं गुरू महाराज जी को इसके बारे में पूछूँ कि सच्चे पातशाह! यदि लेख मिटने ही नहीं हैं और कोई भी मिटाने में समर्थ नहीं है तो गुरू चरणों में आने का क्या लाभ? उस समय हालात को देखते हुये उसने वही बात पूछनी शुरू की कि पातशाह! यदि लिखे हुए लेख जीव को भोगने ही पड़ते हैं तो गुरू के सिख बनने का और उसके चरणों में भेंटे देने का क्या लाभ प्राप्त होगा। गुरू महाराज जी ने संक्षेप में उत्तर दिया कि राजन! लिखा हुआ तो नहीं मिट सकता पर समरथ गुरू जीव का भला जरूर कर देते हैं। गुरू के पास प्रभु की Veeto Power (आरक्षित शक्ति) हुआ करती है भोगना भी पड़ता है पर समरथ गुरू संकट दूर कर देता है। सूली का सूल बना कर भुगतान करा देता है, गुरू की दया से खुशी प्राप्त होती है और उसकी समझ में जो गुरू महाराज ने गुप्त रहस्य (रमज़) बताया था, न आया। कहने लगा "पातशाह! दोनों बातें कैसे हो सकती हैं, लिखा हुआ लेख भी भोगे और फिर उस बुरे लेखों का प्रभाव भी न हो, भला भी न हो। यह बात समझ में नहीं आ रही।" गुरू महाराज जी ने फ़रमान किया कि राजन! वाहिगुरू अथाह शक्तियों का स्वामी हुआ करता है, वह आप निरंकार हुआ करता है जैसे कि –

समुंदु विरोलि सरीरु हम देखिआ इक वसतु अनूप दिखाई।
गुर गोविंदु गोविंदु गुरू है नानक भेदु न भाई॥   पृष्ठ – 442

गुरू सिख का भला कर देता है यह बात तुम्हारी समझ में प्रत्यक्ष रूप में आ सकती है यदि तुम दो चार दिन संगत के दर्शन करो और गुरू पर श्रद्धा रख कर उनके वचनों को श्रवण करो। बात बता देने से कुछ पता नहीं चलता पर जब मनुष्य पर स्वंय आ पड़ती है उस समय समझ आ जाया करती है क्योंकि प्रत्यक्ष से ही यथार्थ ज्ञान हुआ करता है। राजा को गुरू महाराज के वचनों पर श्रद्धा आ गई और मन ही मन कहने लगा कि मेरी समझ में बात आ नहीं रही। गुरू कृपा करें तो हो सकता है कि मैं इस संशय की निवृत्ति कर लूँ। इस प्रकार गुरू महाराज के चरणों में

छाती से चिपकने को कहता है पर राजा इसे दूर रहने के लिये कहता है पर हैरान हो रहा है कि यह क्या हो रहा है? ध्यान से देखा तो याद आ गया कि मैंने इसी गाँव में 40 साल की उम्र बिताई है। लड़के ने घर जाकर बता दिया कि बापू मरा नहीं है वह तो राजाओं जैसे वस्त्र पहन कर आया हुआ है, घोड़ा उसके पास है। यह सुनते ही घर वाली जो बहुत की शोक में बैठी थी, ने आकर पहचान लिया और ज़ोर ज़ोर से बोलने लगी तू कितना छलिया आदमी है, तू कितना बड़ा छल रच कर कल कब्र में चला गया था। तू घोड़ा कहाँ से लेकर आया है, ये कपड़े कहाँ से लिये हैं, लगता है तूने चोरी किये हैं, जब राजा को पता चल गया तो वह तुझे बहुत बुरी सजा देंगे। चल घर, राजा बना बैठा है। सारे परिवार में शोर मच गया। आस पास के लोगों को भी बड़ी हैरानी हुई कि मरा हुआ ज़िन्दा हो गया। सारे रिश्तेदार राजा के चारों ओर इकट्ठे हो गये तथा कह रहे हैं कि तू पाखंड छोड़ दे। अपने घर को देख, बच्चों को सम्भाल। हैरानी की बात है कि तू कब्र में से कैसे निकल आया। उनकी बातें सुन सुन कर राजा बहुत परेशान हो रहा था कि यह क्या घटित हो गया। यह परिवार तो मेरा ही है जिसे मैंने सपने में देखा था। ये परिवार के लोग तथा अन्य लोग उतावले थे कि तू घोड़ा छोड़ दे और ये वस्त्र जहाँ से तूने चोरी किये हैं उन्हें सम्भाल दे। घर चल, यदि नहीं जायेगा तो हम तुझे खींच कर ले जायेंगे। राजा बहुत परेशान है। वह कहता है कि मैं मण्डी सकेत का राजा हूँ, मैं गुरू दर्शनों के लिये आया था, यह सभी कुछ तो सपने में देखा है जहाँ मैं अब आया हूँ। उसकी बातों का कोई विश्वास नहीं कर रहा इसी परेशानी में बैठा था, इतनी देर में गुरू महाराज जी, सारे डेरे सहित उसी स्थान पर पहुँच जाते हैं। वे नगर वासी भी गुरू महाराज जी को जानते थे, उठ कर खड़े हो गये, सभी नमस्कार करने लग गये। पत्नी ने कहा, ''हे दाता! तू क्षमा कर देने वाला हैं, तू गरीबों का भला करने वाला हैं, तू हमारा न्याय कर। देखो, सारा परिवार भूखा मर रहा है। इसने अपने मरने का ड्रामा रच कर पता नहीं घोड़ा कहाँ से ले आया है, शाही वस्त्र कहाँ से लाया है?

गुरू महाराज जी ने सभी के वचन सुने और आज्ञा दी कि सभी चुप चाप बैठ जाओ। सारी बात हमें विस्तार पूर्वक बताओ। तो पंचो ने प्रार्थना की कि सच्चे पातशाह! यह इस गाँव का रहने वाला चण्डाल जाति में से है, यह मर गया था पर अब यह जीवित कैसे हो गया, यह बात हमारी समझ में नहीं आ रही। यह कहता है कि मैं राजा हूँ पर हमें अच्छी तरह याद है कि यह चण्डाल है। गुरू महाराज जी ने सारी बात सुन कर पूछा

कि तुम्हारा मुर्दा जलाया गया था या दफनाया गया था? तो पंचों ने कहा महाराज! उसे कब्र खोद कर दफनाया गया था। महाराज कहने लगे, "चलो, कब्र खुदवा कर देखते हैं यदि तुम्हारा आदमी कब्र में न हुआ तो फिर तुम कहना। हम इसे जानते हैं कि यह मण्डी सकेत का राजा है, गुरू दर्शनों के लिये आया था और हमारे साथ सैर-सपाटा करता हुआ एक हिरन का पीछा करते करते तुम्हारे इस नगर की ओर चला आया। सो सभी की सलाह के अनुसार कब्र खुदवाई गई तो उनके आदमी का मृत शरीर कब्र में उसी तरह पड़ा था। परिवार वाले तथा अन्य सभी लोग काफी शृमन्दा हुये तथा माफी माँग कर अपने घरों को चले गये। गुरू महाराज जी राजा को लेकर रहरास साहिब के समय डेरे पहुँचे। राजा ने वहाँ बैठकर पाठ सुना, गुरू महाराज जी के विचार श्रवण किये। राजा अपने डेरे में जाकर यह सभी कुछ सोचता हुआ सो गया। दूसरे दिन गुरू महाराज जी के पास समय लेकर पहुँचा। प्रश्न किया कि महाराज! मैं कल से ही हैरान हो रहा हूँ, यह मैंने सभी कुछ सपने में देखा था, जो कुछ अब घटित हुआ है। यह मेरा ही परिवार था, मेरे गाँव के ही लोग थे और मेरी ही पत्नी थी और मैंने ही अपने आप को देखा था। इधर भी मैं देख रहा था कि मैं मर गया और उस नगर में चण्डालों के घर में रह रहा हूँ और मर गया। सच्चे पातशाह! यह सपना था। फिर सपने द्वारा सारे क्लेश कैसे मिट गये।

गुरू महाराज जी ने फ़रमान किया कि राजन! तेरे मन में कल गुरबाणी सुन कर संशय पैदा हो गया कि गुरू के पास आने का क्या लाभ है यदि कर्मों का नाश ही नहीं होना। राजा ने कहा कि फिर आपने भी फ़रमान किया कि फल तो भुगतना ही पड़ता है। पर आपने एक रमज़ (रहस्य) बोली थी कि बख्शीश हो जाया करती है। उस समय गुरू महाराज जी ने वचन सुन कर फ़रमान किया कि इस जीवन के कर्म तेरे इतने बुरे हैं जिनका फल भुगतने के लिये तुझे चण्डाल होकर जन्म भोगना था। यह टल नहीं सकता था। पर तूने सपने में ही भोग लिया उसका दुःख तुझे परेशानी में सहना पड़ा पर जन्म लेकर दुःख नहीं भोगना पड़ा। यह जो लेख 40-45 साल में भोगना था, वह सपने में ही थोड़ी सी देर में ही भोग लिया। देख, लेख तो मिटा नहीं पर वह सपने में से होकर बीत गया। कुछ जागते हुये बीत गया जब तू अपने परिवार में बैठा था और तेरे अन्दर अपने बच्चों के प्रति प्यार उठ रहा था। पर इस जन्म के संस्कार प्रबल होने के कारण उनकी तरफ आकृषत नहीं हुआ। कुछ पल के अन्दर ही लिखा लेख बीत गया, मानो साफ हो गया। जो तूने यह बात की है कि यह लेख कैसे भुगतान किया गया। देख! हम तुझे बताते

हैं कि वाहिगुरू जी तथा गुरू की शरण में आकर कर्मों का नाश हो जाया करता है। वाहिगुरू से दूर रह कर यदि कोई ज़ोर लगाकर अपने कर्मों को मिटाना चाहे वह नहीं मिट सकता। इस पर हम तुम्हें एक कथा सुनाते हैं –

एक बार राजा जनक अपनी प्रजा के हालात देखने के लिए बीर यात्रा कर रहा था, क्या देखता है कि रास्ते में काफी सारे लोग झुरमुट बना कर खड़े हैं। उनके बीच में एक औरत मरी पड़ी है जिसका छह महीने का बच्चा दूध पीने के लिये कभी दायें स्तन को मुख से लगाता है कभी बायें स्तन को। सभी लोग अफसोस कर रहे हैं। उस समय एक लड़की जिसने सिर पर गागर उठाई हुई है, आकर भीड़ में खड़ी हो गई। राजा जनक उसके पास खड़ा था। सभी लोग शोकमय थे और सोच रहे थे कि देखो, इस बच्चे की किस्मत कितनी खराब है, पता नहीं कि यह कौन है, कहाँ की रहने वाली है, इस बच्चे को कौन पालेगा? यह लड़की सब कुछ देख कर खिल खिलाकर हंस पड़ी। राजा जनक बहुत हैरान हुआ कि सारे शोक में हैं और यह क्यों हंसी? वह लड़की एक दम भीड़ में से निकल कर नदी की ओर चली गई। उसे राजा जनक ने पूछा कि ''ऐ लड़की! जब सभी शोक ग्रस्त हैं तू क्यों हंसी?'' वह लड़की कहने लगी ऐ पुरुष! मैं प्रभु की भावी को देखकर हंसी थी क्योंकि इस औरत ने यहीं मरना था तथा अपने छह महीने के बच्चे को इसी हालत में छोड़ना था। राजा ने पूछा कि तुझे कैसे पता है यह मुझे बता? मैं राजा जनक हूँ, प्रजा का हाल देखने के लिये बीर यात्रा कर रहा हूँ। लड़की ने कहा, राजन! मेरे पास इतना समय नहीं है, मैं संक्षेप में बताती हूँ कि यह इसी तरह ही होना था। भावी किसी प्रकार भी टाली नहीं जा सकती। यह बात सुनकर उसने कहा कि किसी पर ऐसी भावी भी होने वाली है जिसमें यह ज़ोर हो कि उसे हटा सके? लड़की ने कहा कि रावण पर बहुत शीघ्र ही एक भावी घटित होने वाली है उसके घर एक लड़की ने जन्म लेना है उस लड़की का पति उसके घर में सफाई करने वाले चण्डाल का पुत्र होगा। उसके साथ उसका ब्याह होना है। जा, जाकर रावण को कह दो कि यह भावी मिटा दे। अब मेरे साथ इसके बाद कोई बात न करना क्योंकि मेरा अन्त समय आ गया है। मैंने स्नान करके, अपने पति का स्नान करवाना है। उसका स्नान करवा कर जब मैंने उसके लिये खाने पीने के लिये रसोई घर में जाना है तो उस समय छत गिर जानी है। सो मेरा अन्त समय निकट है जो कुछ समय मेरे पास बचा है उसमें मैंने सिमरन करके अपनी सुरत को हरि चरणों में जोड़ना है।

इस लड़की ने नदी में स्नान किया; पानी भर कर घर ले आई। पति के स्नान के बाद जब वह उसके लिये रसोई में से कुछ खाने के लिये लेने गई तो ऊपर से छत का शहतीर टूट गया और वह मर गई। राजा जनक सब कुछ देख रहा था। उसके मन में बहुत गहरा अफसोस था कि मैंने इस लड़की को गिरफ़्तार कर लेना था फिर भावी टल जानी थी। पर फिर समझ में आया कि भावी तो कभी टलती नहीं। चलो, रावण के पास जाकर उसे सारी बात बता देते हैं। सो समय रहते राजा जनक ने रावण के पास जाकर सारी बात उसे बता दी। रावण ने कहा कि ऐसा मैं कभी नहीं होने दूँगा। उसने ब्रह्मा जी का आवाहन किया तथा घर में आने वाले जीव के बारे में पूछा ब्रह्मा जी ने कहा कि रावण! तेरे घर में लड़की आ रही है उसका संयोग तेरे घर में जो 6 महीने का बालक चण्डाल पल रहा है, उसके साथ है। उसने कहा कि यह किसी से भी मिटाई नहीं जा सकती क्योंकि यह लेख मैं नहीं लिखता। यह तो धुर दरगाह से जीव के माथे पर कलम चलती है, वह अच्छे बुरे लेख लेकर जन्म लेता है। हमारे वश से बाहर की बात है। रावण ने कहा कि मैं अभी मिटा कर दिखा देता हूँ। उसने कहा कि इस लड़के के टुकड़े टुकड़े करके नदी में फैंक दो ताकि ''न रहेगा बाँस न बजेगी बांसुरी।'' पर यह हुक्म सुनते ही जब प्रजा को पता चला तो उन्होंने शोर मचा दिया कि निर्दोष को मारा नहीं जा सकता। फिर रावण ने हुक्म दिया कि इसे निर्जन जंगल में फिंकवा दिया जाये और इसके पैर की चार उंगलियां काट दी गई। दैव योग से वहाँ कोई साधु आ गये और वह उस बालक को अपने आश्रम में ले गये उसका पालन पोषण किया। इधर रावण के घर लड़की ने जन्म लिया। जब विधात्री माता कर्म लिखने के लिये आई तो रावण ने रास्ता रोक लिया कि तू क्या लिखने लगी है। तो उसने कहा कि मैं तो कुछ भी नहीं लिखती, न ही मेरी समर्थ है। रावण ने कहा तुझे विधात्री कहते हैं तू प्रत्येक के मस्तक के लेख लिखती हैं। बिहु माता ने कहा कि मैं स्वंय कुछ नहीं लिखती मैं तो सिर्फ अपनी कलम मस्तक पर रखती हूँ, उस समय जो कुछ प्रभु शक्ति द्वारा लिखा जाता है वे लेख धुर दरगाह के हुआ करते हैं, और वे जीव को भोगने पड़ते हैं। जब लेख लिखे गये तो रावण ने पूछा कि क्या लिखा है? तो उसने कहा कि यह लड़की बहुत भाग्यशाली होगी, सुन्दर होगी, सुशील होगी, पतिव्रता होगी, सारे गुणों में निपुण होगी, इसकी शादी तेरे घर में सफाई करने वाले लड़के के साथ होगी। रावण के कहा कि यह लेख काट दे। बिहु माता ने कहा कि लेख मिट नहीं सकते। जैसे कि –

सरब जीआ सिरि लेखु धुराहू बिनु लेखै नही कोई जीउ।
आपि अलेखु कुदरति करि देखै हुकमि चलाए सोई जीउ॥
पृष्ठ - 598

जैसी कलम वुड़ी है मसतकि तैसी जीअड़े पासि। *पृष्ठ - 74*

यह जीव अपने कर्मों के अनुसार सुख दुःख भोगने के लिये लेख लिखवा कर आया है जो इसे भोगने पड़ते हैं। समय बीतता गया, लड़की जवान हो गई, ब्याह के लायक हो गई। दूसरी तरफ वह चण्डाल का लड़का साधु के आश्रम में पलता रहा। 14 विद्याओं का ज्ञाता हो गया। सन्तों ने उसे कहा कि बेटा! तेरे मस्तक में राज करना लिखा है। जा तू अपनी किस्मत अजमा जाकर। वह जहाज में बैठ गया और किसी टापू में जा उतरा। उस टापू का राजा मर गया था और उसका कोई वारिस नहीं था। वज़ीरों ने कहा कि यदि हम में से कोई गद्दी पर बैठता है तो बड़ा घोर पाप है। निर्णय लिया गया है जो अमृत बेला में मुख्य द्वार के सामने पहले दिखाई देगा उसे गद्दी पर बिठा दिया जायेगा। इस प्रकार अमृत बेला में दरवाज़ा खुला तो सभी अमीर वज़ीर, आफिसर यह देखने के लिये हाज़िर थे कि कौन भाग्यशाली है जो इस राजगद्दी पर मालिक के रूप में बिठाया जायेगा। उस समय वह लड़का द्वार खुलने की प्रतीक्षा कर रहा था उसे देखते ही सभी ने उसे जय माला पहना दी और जलूस की शक्ल में ले जाकर राज गद्दी पर बिठा दिया।

इधर रावण के दूत वर की तलाश में उसी टापू पर पहुँचे। उन्होंने देखा कि लड़का सर्वगुण सम्पन्न सुशील, अनुभवी तथा तन्दरुस्त शरीर, रौबीला, पूरा सूरमा दिखाई दे रहा है। राजपाट करने की योग्यता रखता है देख कर वे वापिस चले गये और रावण को बताया कि अमुक टापू का राज कुमार अभी कुवांरा है। वह हर प्रकार से आपकी लड़की के लिये योग्य वर है। रावण ने लड़की से पूछा तो उसने भी कहा राजन! मैंने टापू के राजा के साथ ही ब्याह करवाना है। शादी हो गई। रावण ने सभी देवताओं को आवाहन करके बुलाया और बड़े अभिमान के साथ कहने लगा कि देखो, तुम्हारे से लेख न मिटा पर मैंने लेख बदल कर दिखा दिया। तो ब्रह्मा जी ने कहा कि राजन! लेख लिखने वाला निरंकार है उसके लिखे हुये को कोई नहीं टाल सकता। तूने उस लड़के को टुकड़े टुकड़े करके नदी में नहीं फैंका था, उसके पैर की चार उंगलियां कटवा कर जंगल में फिंकवा दिया था। पर विधाता ने तेरी सोची हुई बात अनहोनी बना दी। यह वही लड़का है जिसकी तूने चार उंगलियां

कटवा कर जंगल में फिंकवा दिया था। जुराबों में से पैर निकलवा कर देख ले। रावण ने निर्णय पूर्वक देखा तो यह वही लड़का था। सभी ने कहा कि राजन! भावी शक्तिशाली है जब यह बड़ों बड़ों पर आती है तो बुद्धि भ्रष्ट कर देती है और समझदारों का विनाश कर देती है, उसे कुछ भी नहीं सूझता। वह होकर ही रहता है जो लिखा हुआ है। गुरू महाराज जी भी संकेत देते हुये फ़रमान करते हैं –

इस का बलु नाही इसु हाथ। करन करावन सरब को नाथ।
आगिआकारी बपुरा जीउ। जो तिसु भावै सोई फुनि थीउ।

पृष्ठ - 277

इस प्रकार गुरू महाराज जी कहने लगे, ''देखो राजन! जितने कर्म जन्म धारण करके किये हैं, हउमै में होने के कारण वह कर्म हमारे साथ चिपक गये हैं उनका फल हमने भोगना ही है पर तू देख जिस कार्य का कोई आरम्भ है उसका अन्त भी हुआ करता है। तुम्हारे मत के अनुसार कर्म को अटल, अमर तथा अजली मानते हैं पर गुरमत में इसके विपरीत है। तुम्हारे मत के अनुसार जीव कर्म करके उनको भोगने के लिये दूसरा जन्म ले लेता है दूसरे से फिर तीसरा, फिर अगला जन्म धारण कर लेता है। इस प्रकार यह सिलसिला कभी खत्म नहीं होता। न ही यह समाप्त होने वाली बात है। कर्म करके कर्मों का निपटारा नहीं हो जाता। सब से पहले जब अकाल पुरुष ने यह सृष्टि रची है जो इन जीवों का प्रकाश हुक्म के अधीन हुआ था –

हुकमी होवनि आकार हुकमु न कहिआ जाई।
हुकमी होवनि जीअ हुकमि मिलै वडिआई। *पृष्ठ - 1*

इन जीवों ने हउमै के अधीन कार्य किये वे इसे चिपक गये। सो हुक्म के अधीन चल रहे कर्मों को हुक्म ही मिटा सकता है। कर्मों की मैल जीव को चिपकी होती है। पर जब वह प्रभु का नाम जपता है, प्रभु से प्यार करता है उसकी याद मन में बसाता है तो इसके द्वारा किये गये कर्म मद्धम पड़ जाते हैं। कर्मों की मैल धुल जाती है। समरथ गुरू कर्मों का सपनों में भुगतान करवा देता है। जब प्रभु के गुण गाता है तो प्रभु की कृपा होती है वह लिखे हुये लेख प्रभु के नाम की अग्नि के साथ दग्ध होकर राख बन जाते हैं तथा फल देने लायक नहीं रह जाते –

लोका मत को फकड़ि पाइ।
लख मड़िआ करि एकठे एक रती ले भाहि॥ *पृष्ठ - 358*

सो राजन! तूने आकर संगतों के दर्शन किये। सारा रास्ता तू प्रभु की

याद में गुरू दर्शनों के आकर्षण से भरा हुआ आया, जिसने तेरे द्वारा किये गये कर्मों को खत्म कर दिया और तनिक मात्र सपने में पूरा जन्म भुगतान करवा दिया। सो कर्मों को मिटाने के लिये प्रभु का नाम समरथ हुआ करता है। आम परिस्थितियों में जैसे रावण के कोशिश करने पर भी भावी न मिटी किसी और से भी नहीं मिट सकती। इसलिये यह कहावत है –

भोगे बिन भागे नही करम गती बलवान॥

गुरबाणी में फ़रमान है –

लेखु न मिटई हे सखी जो लिखिआ करतारि। *पृष्ठ – 937*

गुरमत के अनुसार अनेक बन्धन जीव को बान्ध रहे हैं।

दो प्रकार के कर्मों से इन्सान का वासता पड़ता है एक तो वह हैं जो सूझवान आचार्यों ने इस जीव के कल्याण हेतु अनेक प्रकार के कर्म प्रचलित किए थे जिनको करने से पुण्य प्राप्त हुआ करता है, इच्छाएं पूर्ण होती हैं, जीवन में स्वच्छता प्राप्त होती है, इन्हीं में से ही वे कर्म भी हैं जिनके न करने से मनुष्य पाप का भागी होता है। सो करने वाले कार्यों में से नित्य कर्म, जिन्हें कायिक तथा नित्य कर्म कहा जाता है – समय पर उठना, फिर शरीर की सफाई के लिए शौचादि जाना, दातुन, ब्रुश आदि करके दांतों की सफाई करना, फिर स्वच्छ जल से स्नान करना, फिर अपना प्रतिदिन का नित्य किया हुआ नितनेम जिसमें गुरसिक्खों के लिए पाँच बाणियों का पाठ, इस्लाम वालों के लिए प्रातः काल की नमाज़ आदि हिन्दू भाइयों के लिए गायत्री का पाठ आदि शामिल हैं। इनके अतिरिक्त अन्य कर्म जो प्रतिदिन करने चाहिए वे हैं गुरू से मन्त्र लेकर उस मन्त्र का विधिपूर्वक जाप करना तथा सुरत को सांसारिक धन्धों में से निकाल कर शबद धुन पर केन्द्रित करना आवश्यक हुआ करता है। दूसरे वे कर्म हुआ करते हैं जिनके करने से हमें लाभ पहुँचता है जैसे कोई गलत काम हो जाए, बाद में मनुष्य को होश आये कि मैंने गलत काम किया है और मुझे इसका दण्ड भुगतना चाहिए। बहुत से प्रेमी तो अपनी ज़मीर को साफ करने के लिए गुप्त रखी हुई बात का भेद खोल देते हैं। घोषणा कर देते हैं कि मेरी ज़मीर पर इतना बोझ बढ़ गया है कि मेरे से सहन नहीं होता। मैंने कर्म किया, पर किये गये कर्म की सजा से बचने के लिए कचहरी में तथा लोगों के बीच खड़े होकर मैंने झूठ बोला। मेरी ज़मीर मुझे अन्दर से फटकारती है कि तूने गलत काम किया है, तुझे यह करना नहीं चाहिए था। वे अपने कर्म संसार में प्रकट कर देते हैं।

1989 में जब मैं अमेरिका गया हुआ था वहाँ मैंने 3 महीने का

समय बिताया था तो एक दिन टैलिविजन पर एक अज़ीब सा दृश्य आ रहा था। वह यह था कि एक लड़की ने कोर्ट में इकरारनामा दिया था कि मैंने गलत काम किया है। मैं उसकी सजा भुगतने के लिए तैयार हूँ। ऐसा हुआ था कि यह लड़की किसी नवयुवक के पास ठहरी हुई थी। किसी बात पर वाद-विवाद हो गया, उसने बलात्कार का केस बना दिया जिसमें उस व्यक्ति को दोषी समझकर कोर्ट ने लम्बी कैद (20 वर्ष) की सुना दी, अभी उसने चार वर्ष ही सजा काटी थी तो इस लड़की ने शपथ पत्र दे दिया कि मैंने उसे, झूठ बोलकर गिरफ्तार करवाया था तथा मैंने ज़ायज़ नाज़ायज़ तरीकों से बलात्कार का दोषी बना कर उसे लम्बी सजा दिलवा दी। अब मैंने थोड़े समय पूर्व ईसाई मत अपना लिया है, मैं गिरजाघर जाती हूँ, वहाँ अपने पैगम्बर के उपदेश पढ़ती हूँ, जब मैं पढ़ती हूँ कि किसी को झूठ बोलकर दुखी नहीं करना चाहिए तथा झूठे मामले नहीं बनाने चाहिएं तो मेरे द्वारा किया गया कर्म मेरे सामने ऐसा साकार रूप धारण करता है कि मेरे रोम-रोम में पश्चाताप ही पश्चाताप फैल जाता है, मेरी मानसिक अवस्था असह्य हो उठती है। सो मैं इस शपथ पत्र द्वारा होश हवास के साथ यह प्रकट करती हूँ कि मैंने जितने भी यत्न उसे कैद करवाने के लिए किये, वे सत्य पर आधारित नहीं थे, अब मेरी ज़मीर मुझे चैन से नहीं रहने देती। मैंने यह निर्णय किया है इससे तो अच्छा है कि वह जेल से बाहर आ जाए और मैं इस दोष की सजा भुगतने के लिये जेल में चली जाऊँ। शिकागो के गर्वनर के पास यह केस था। उसने इसका फैसला करने के लिए लड़के के माँ बाप को बुलवाया कि इसे क्या सजा दी जाए और सजा काट रहे नवयुवक को भी कोर्ट में बुलवाया गया। उससे भी पूछा गया कि इसे क्या सजा दी जाए टैलिविज़न द्वारा जनता की राय जानने की कोशिश की। सभी ने एक मत होकर, एक ही स्वर में कहा कि इस लड़की ने ईसाईयत धारण की है और इसकी सुप्त रूह जाग पड़ी है और नेक रास्ते पर चलने के लिए, जीवन में मछली की तरह तड़फ रही है, इसलिए आज की भावना तथा इसके इस कर्म को कि इसने संसार में सच को प्रकट किया है, को मुख रखते हुए इसे कोई सजा न दी जाए। जब लड़के के माँ बाप को पूछा गया तो उन्होंने कहा कि हम इस लड़की के धन्यवादी हैं कि इसने हमारे लड़के को लम्बी कैद की सजा से बचा कर अपने आपको जेल भिजवाने का निर्णय लिया है, इसे कोई सजा न दी जाए। उस लड़के ने भी अपनी राय देते हुए कहा कि हालात के अनुसार इसने मुझ पर झूठा केस बनाया पर इस बात की मैं शाबाशी देता हूँ कि इसने अपनी ज़मीर की आवाज़ को प्रत्यक्ष रूप में

सुना है। मुझे इस पर कोई रोष नहीं है न ही कोई रंज है, इसके विपरीत मैं तो इसका धन्यवादी हूँ कि इसने सत्य प्रकट कर दिया है तथा मेरे माथे पर लगे कलंक को साफ कर दिया है। इस लड़की को गर्वनर ने क्षमा करके घर भेज दिया।

इसी प्रकार मैं इंगलैण्ड में एक महीने के लिए रुका हुआ था वहाँ एक criminal (अपराधी) किसी विशेष crime (जुर्म) में पकड़ा गया। जब कोर्ट में ब्यान दे रहा था तो उसने अपने दोषों को सच सच मन्जूर (इकबाल) कर लिया और साथ ही कहा कि इस जुर्म के अतिरिक्त मैंने और भी कई इस प्रकार के जुर्म किए हैं जिनका पुलिस को पता नहीं चला। अब मैंने सजा तो भुगतनी ही है तो मुझे उन जुर्मों की भी सजा दे दी जाए ताकि मेरी ज़मीर पर पड़ा बोझ उतर जाए।

इन बातों को देखकर मैं बहुत हैरान हुआ कि हम भारतवासी इन लोगों को काम तथा माया के पुजारी समझते हैं और घृणा करते हैं पर जब हम इनके कर्तव्यों को देखते हैं तो बहुत हैरानी होती है कि इनमें ईर्ष्या बहुत कम है, निन्दा ये बहुत कम ही करते हैं, चुगली करने की इनकी आदत ही नहीं है, वस्तुओं में कोई मिलावट नहीं करते व्यापार साफ एवं स्पष्ट करते हैं। Bargain (सौदेबाजी) द्वारा सौदे नहीं करते कि पहले कुछ मूल्य और बताएं तथा बाद में कम करके कुछ और लें। हमारे यहाँ तो लग गया तो तुक्का नहीं तो तीर, वाली बात है जैसे कि किसी की जेब खाली करवा दी जाए उसे व्यापार की तकनीक समझते हैं। यूरोप, कैनेडा, अरब देशों में झूठ का सहारा नहीं लेते। व्यापार स्पष्ट एवं स्वच्छ है, चीज़ों में मिलावट नहीं होती, जो कुछ लिखा हुआ है उसी के अनुसार वस्तु शीशी या पैकट में बन्द होती है। हमारे पास सिद्धान्त बहुत बढ़िया एंव उत्तम हैं, हमारे आध्यात्मिक सिद्धान्त हमें परमेश्वर का रूप बनाने में समर्थ रखते हैं, पर हमारे कर्म पूर्णतया इसके विपरीत हैं। हमारे अन्दर धार्मिक दिखावा प्रकट करने के लिये पूरी तरह से अनेक प्रकार के पहरावे प्रचलित हैं पर जहाँ तक हमारे कार्यों का सम्बन्ध हैं वह हमारी कोशिश रहती है कि व्यापार को गन्दला करके, चीजों में मिलावट करके, बहुत अधिक पैसे लेकर अपनी तृष्णा की आग बुझाएं। यहाँ तक देखा गया है कि बड़े-बड़े अनाज के गोदामों के reject (नाकारा) हुये खाने वाले पदार्थ हमारे सम्बंधित कर्मचारी चक्की वालों को बेच देते हैं और वे आटा पीस कर बढ़िया थैलियों में पैक करके हमारे सामने पेश कर देते हैं। हमें कोई परवाह नहीं है कि कोई इसे खाकर बिमार होगा या सन्तुष्ट होगा। यदि परवाह है तो केवल एक ही कि हम अधिक

से अधिक धन कमाएं। इस तरफ ही नहीं बल्कि हर पक्ष से पतन हो रहा है। दूध बेचने वाले दूध में ऐसी ज़हरीली दवाईयां मिला देते हैं कि दूध फटता ही नहीं है, दूध में से क्रीम निकलवा लेते हैं, यूरिया, अरण्डी का तेल कास्टिक सोडा तथा अन्य ज़हरीले रसायनिक पदार्थ मिलाकर बनाये कैमिकल के साथ दूध बनाना जानते हैं और वह दूध शहरों में ले जाकर बेचा जाता है और पैसे शुद्ध दूध के वसूल किये जाते हैं। हमारे कारखानों वाले साबुन बनाने के लिए चर्बी से भरे हुए जहाज विदेशों से मंगवाते हैं। कई बार इन पर छापे पड़ जाते हैं तो अखबारों में पढ़ने को मिलता है कि यही चर्बी vegetable oil (डालडा घी) में मिलाकर खाने के लिए दी जा रही है। Tooth paste में मिलाने की बड़ी सुन्दर विधि हम जानते हैं। इस प्रकार हमारा जीवन हर पक्ष से निम्न स्तर की ओर जा रहा है। प्रतिदिन बड़े-बड़े नेताओं के केस हाईकोर्टों में पेश किए जा रहे हैं। पता नहीं चलता कि हम ऋषियों, मुनियों, पीरों, पैगम्बरों को मानने वाले, जीवन के पथ पर लुढ़कते हुए पतन के गड्डों में गिर रहे हैं। हमारा सिद्धान्त क्या करेगा जब हमारे पास Practical (व्यवहारिक) जीवन नहीं है। हमारी जमी़र इतनी पतित हो चुकी है कि इसमें पाप और पुण्य करने वाली निर्णायक शक्ति ही समाप्त हो गई लगती है। जहाँ तक Sex (काम) आदि का सम्बन्ध है उन देशों में जो कुछ भी हो रहा है वह प्रत्यक्ष हो रहा है, उनके अन्दर कुछ छिपा हुआ नहीं है। हम बाहर से दिखावे के धर्मात्मा बने हुए हैं पर अन्दर से सैक्स का लेबल लगा हुआ है। अन्दर हम शराब पी लेते हैं और बाहर आकर हमारा भेष इन अवगुणों की इतनी रक्षा करता है कि किसी को सन्देह का भी अवसर प्रदान नहीं करता। जीवन के अवगुणों को 80 प्रतिशत भेष ढक लेता है पर फिर भी हम धर्मात्मा के धर्मात्मा ही बने रहते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि हम पतन के गर्त में बहुत नीचे गिर चुके हैं, हम में से बहुतों के अन्दर से अभी आत्मिक प्रकाश समाप्त नहीं हुआ, वे हमें कुकर्मों की निवृत्ति के लिए बार-बार मज़बूर करते हैं। हमारे पूर्वज, आचार्य, सन्तों, ऋषियों-मुनियों ने; पीरों-पैगम्बरों, औलियों ने इसका एक रास्ता निकाला हुआ है कि तुम इन निकृष्ट कर्मों का प्रायश्चित करके एक बार माफ करवा लो फिर पुनः यह कर्म मत करो तो यह निखिद्ध कर्म प्रायश्चित कर्मों के कारण अपना फल देने में असमर्थ हो जायेंगे इन प्रायश्चित कर्मों में से गुजरने के लिए आचार्यों ने अलग-अलग तरीके प्रचलित किए हुए हैं जिनका वर्णन करने की यहाँ आवश्यकता नहीं है क्योंकि वे अलग-अलग तरीके से हैं। मतलब यह होता है कि ऐसी

सजा दी जाए जिसे भुगतते हुए उसके अन्दर पश्चाताप पैदा हो जाए और आगे के लिये जीवन में सुधार हो जाए, ये कर्म भी बहुत जरूरी हुआ करते हैं क्योंकि पश्चाताप करने से उसका आन्तरिक हृदय खाली हो जाता है और जब धार्मिक आचार्य यह घोषणा कर देते हैं कि इन किये गये कर्मों की सजा इसने भुगत ली है तो उन्हें जनता भी माफ कर देती है।

हउमै के प्रभावाधीन किये गये कर्म (अच्छे और बुरे) जीव को लिपट जाते हैं इन कर्मों को क्रियामान कर्म कहते हैं, इनमें से कुछ अच्छे होते हैं और कुछ बुरे होते हैं। इनकी छानबीन करने के बाद ये अच्छे तथा बुरे खातों में जमा हो जाते हैं। जमा किये गये कर्म तथा पिछले जन्मों में किए गये कर्म 'संचित कर्म' कहलाते हैं। जब जीव संसार से चला जाता है तथा उसे पुर्नजन्म के लिये नया शरीर धारण करने को मिलता है तो उस जीव के साथ वे कर्म साथ जोड़ दिये जाते हैं जो उसने उस जीवन काल में भोगने ही होते हैं। उनके बारे में भी पीछे बताया जा चुका है।

भोगे बिन भागे नही करम गती बलवान।

इन कर्मों को 'प्रालब्ध कर्म' कहते हैं। ये कर्म समय समय पर अपना प्रभाव दिखाते हैं, इस जीव को सजा तथा दुख देते हुए बीत जाते हैं। इन्हें ऐसा क्यों कहा गया है कि "भोगे बिन भागे नहीं करम गति बलवान" वह इसलिए है कि जिस प्रकार कोई करोड़ों मील पर बैठा हुआ योद्धा अनेक प्रकार के तीर कमान पर चढ़ा कर चलाता हुआ चला जाये वह दूरी तथा अपनी चाल के अनुसार निशाने को समय के अनुसार बीन्धते रहते हैं क्योंकि वे छूट चुके होते हैं और उन्होंने अपना निशाना भेदना ही होता है इसलिये वे टालने पर भी नहीं टलते। पर समरथ गुरू के पास नाम का ऐसा कवच होता है जिससे उन कर्मों की पीड़ा, वह नाम शक्ति कम कर देती है। एक प्रकार के कर्म ऐसे होते हैं जो हम जीवन भर करते रहते हैं जिस प्रकार पितरों के निमित्त प्रतिवर्ष पूजा पाठ करके उनके भले के लिए अरदास करवाते हैं। इनके अन्दर वे कर्म भी आ जाते हैं जो मनुष्य को सारी ज़िन्दगी करने पड़ते हैं। उन कर्मों का विवरण धार्मिक ग्रन्थों में से पुण्य तथा पापों को विचारने पर मिल जाया करता है। ऐसे कर्म धार्मिक जीवन की पहली कक्षा के लिए आवश्यक हुआ करते हैं। जिस प्रकार अपनी धार्मिक रहरीतों (नियमों) का पालन करना, व्रत रखने बहुत ही जरूरी हुआ करते हैं। गुरू महाराज जी ने ऐसे कर्मों में फंसे रहने को बन्धन ही कहा है। इसका यह अर्थ नहीं कि हम कर्म करना ही छोड़ दें पर वे एक रहत मर्यादा (नियम) में रहकर करने ही

पड़ते हैं। उनके अन्दर कोई विशेषता नहीं है बाहर से वे एक प्रकार से नींव की तरह काम करते हैं। ऐसे कर्मों को नाम की बराबरी देकर तुलना करना ठीक नहीं हुआ करता। नाम की अवस्था अपनी अलग है गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं –

कोटि करम बंधन का मूलु। हरि के भजन बिनु बिरथा पूलु॥
पृष्ठ – 1149

नाम के साथ तो तभी (दिल से) प्रीत नहीं लगती क्योंकि अनेक प्रकार के क्रियामान कर्म करके उनमें से अपने जीवन को मुक्ति मण्डल में ले जाना चाहता है। ऐसा नहीं हुआ करता क्योंकि कर्म-धर्म करके मनुष्य के मन में अभिमान आ जाता है कि मैं अमृत बेला में जागता हूँ ये सभी सोये पड़े हैं। मैं गायत्री मन्त्र पढ़ता हूँ, पूजा पाठ करता हूँ, ये लोग खर्राटें मार रहे हैं तथा वह अपने आप को सोसायटी में ऊँचा समझ कर अपने कर्मों-धर्मों का मान करता है गुरू महाराज जी फ़रमान करते है –

नाम संगि मनि प्रीति न लावै। कोटि करम करतो नरकि जावै॥
पृष्ठ – 240

हम पाठ करके बाईबल, कुरान शरीफ, वेद तथा और अनेक धार्मिक ग्रन्थ पढ़ कर यह सोचते हैं कि हम संसार से तर जाएगें पर जब हम विचार करते हैं तो हमें प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि पढ़ाई-लिखाई, अर्थ सीखने, अर्थ समझने यह बुद्धि मण्डल का काम हुआ करता है। इनका आत्म मण्डल के साथ कोई सम्बन्ध नहीं हुआ करता, आत्म मण्डल में पहुँचाने की समर्थ केवल प्रभु के नाम में ही है। औंकार के नाम में वृत्ति लगाना, अल्लाह को हर जगह परिपूर्ण समझ कर उसके नाम की धुन में लीन होना, बाणी को विचार कर इस भाव में आना कि मैं जिधर भी देखता हूँ, वहीं पर ही प्रभु स्वंय निगुर्ण स्वरूप में हाज़िर है –

जह जह पेखउ तह हजूरि दूरि कतहु न जाई।
रवि रहिआ सरबत्र मै मन सदा धिआई॥
ईत ऊत नही बीछुड़ै सो संगी गनीऐ।
बिनसि जाइ जो निमख महि सो अलप सुखु भनीऐ॥
प्रतिपालै अपिआउ देइ कछु ऊन न होई।
सासि सासि संमालता मेरा प्रभु सोई॥ पृष्ठ – 677

जिमी जमान के बिखै समसत एक जोत है।
न घाट है न बाढ है न घाट बाढ होत है॥ अकाल उस्तति

उसकी उपस्थिति इतनी महसूस करनी चाहिए जैसा कि फ़रमान है –

पेखत सुनत सदा है संगे मै मूरख जानिआ दूरी रे॥ पृष्ठ – 612

उसकी उपस्थिति महसूस करके उसके नाम का उच्चारण करना तथा उस परिपूर्ण सत्ता में महव (लीन) होना। उस लीनता में उसके नाम का अनुभव प्राप्त करना। इस प्रकाश में हर समय लिव धारण करके रहना यह नाम आचार कहलाता है –

बेद सासत्र जन धिआवहि तरण कउ संसारु।
करम धरम अनेक किरिआ सभ ऊपरि नामु अचारु॥ पृष्ठ - 405

एक और स्थान पर बहुत ही बढ़िया तरीके से फ़रमाया गया है –

राजे धरमु करहि परथाए। आसा बंधे दानु कराए।
राम नाम बिनु मुकति न होई थाके करम कमाई हे॥
करम धरम करि मुकति मंगाही। मुकति पदारथु सबदि सलाही।
पृष्ठ - 1024

प्राचीन काल में कर्मों का विधान बना हुआ था जिन कर्मों को करने से यह जीव धर्मात्मा कहलाता था। जैसे ब्राह्मण के लिए 6 कर्म ज़रूरी हुआ करते हैं – 1. वेद पढ़ना तथा पढ़ाना 2. दान देना तथा दान लेना 3. यज्ञ करना तथा करवाना। ये खट (षट) कर्म कहलाते थे और इन कर्मों के करने वालों को ब्राह्मण की उपाधि मिलती थी। इसके बाद दूसरी श्रेणी क्षत्रियों की थी। क्षत्रिय के लिए चार कर्म ज़रूरी हुआ करते थे। 1. वेद पढ़ने 2. यज्ञ करना 3. दान देना 4. देश की रक्षा के लिए अपने प्राणों की बलि देना। इसी प्रकार वैश्य के लिये तीन कर्म ज़रूरी हुआ करते थे –1. वेद पढ़ना 2. दान देना 3. गायें इत्यादि पालना – इसी के अन्दर खेती करना, व्यापार करना, दूर दूर देशों में जाकर धन कमाना, नई नई खोजें करके उनसे लाभ उठाना। इसी प्रकार शूद्र के लिए केवल एक ही कर्म हुआ करता था। उसके लिये नाम जपना ज़रूरी नहीं था। यहाँ तक कि ओंकार का उच्चारण भी नहीं कर सकता था। ओंकार के उच्चारण से पाप का भागीदार माना जाता था। न ही स्त्रियाँ ओंकार का उच्चारण कर सकती थीं। जो ओंकार का उच्चारण करता था, उसकी जुबान काट दी जाती थी या कानों में सिक्का ढाल कर डाल दिया जाता था क्योंकि यह कर्म उसके लिए वर्जित था वेद पढ़ने की उसे कोई आज्ञा ही नहीं थी। दान वह दे ही नहीं सकता था, न ही उसके दान को कोई ब्राह्मण अगींकार करता था। देश की रक्षा के लिए शस्त्र भी नहीं उठा सकता था। शूद्र का केवल एक ही कर्म जो उसके ज़िम्मे आया था वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य की सेवा करना था। उसके हिस्से में आटा, दाने आदि मिल जाना, ही हुआ करते थे। यह शूद्र श्रेणी एक प्रकार से समाज का अंग ही नहीं मानी जाती थी हालांकि इसके सिर पर एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व

था, यदि ये सेवा न करते तो उपर्युक्त तीनों जातियों का जीवन उलट-पुलट हो जाना था। इस प्रकार और भी बहुत से कर्म काण्ड जैसे जनेऊ पहनाना, तिलक लगाना, ग्रहों का हिसाब किताब लगाकर अपनी जीवन चाल जारी रखना। यात्रा पर जाने से पहले ज्योतिषि द्वारा यात्रा का दिन नियत करवाना, ब्याह शादियाँ, नया घर बनवाना, नई चीज़ें खरीदने के लिए ज्योतिषियों के पास जाना ज़रूरी समझा जाता था। सो कर्म काण्डों में यह जीव फंसा हुआ था, नाम जपने का समय उसके पास था ही नहीं, न ही उसकी सुरत में यह बात आती थी। न ही आचार्य लोग जीव को नाम का ज्ञान देते थे क्योंकि उसे बहुमूल्य समझ कर छिपा कर रखा जाता था। गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं कि कर्म काण्ड में फंसा हुआ प्रेमी जो परिपूर्ण नाम की सूझ (ज्ञान) से हीन है उसका जीवन धिक्कार है -

करम कांड बहु करहि अचार।
बिनु नावै ध्रिगु ध्रिगु अहंकार॥ पृष्ठ - 162
सिंम्रिति सासत्र बहु करम कमाए
प्रभ तुमरे दरस बिनु सुखु नाही॥ पृष्ठ - 408

श्री आसा जी की वार में गुरू महाराज जी ने इन कर्म काण्डों का विवरण देते हुए निष्कर्ष निकाला हैं कि पूर्ण समरथ गुरू के मिलाप के बिना जीव के कार्य शून्य सिर्फ, ज़ीरो (0) ही रहते हैं। जब तक नाम की इकाई इस के साथ नहीं लगती तब तक इसका कोई मूल्य नहीं हुआ करता जैसे ज़ीरो के साथ एक लग जाये तो राशि का मूल्य माना जाता है। यदि 2 ज़ीरोंलगा दी जाऐ तो मूल्य और बढ़ जाता है। इसी प्रकार ज़ीरो बढ़ाने से लाखों, हज़ारों में मूल्य बढ़ जाता है। जैसे बैंक कर्मचारी के पास चैक लेकर जाऐ उस पर पाँच ज़ीरो-ज़ीरो लगा कर ले जाऐ पर यदि एका (1) न लगे तो कर्मचारी चैक उसी समय वापिस कर देगा। उस पर तुम्हारे हस्ताक्षर भी हुए हों, मोहर भी लगी हुई हो पर राशि न लिखी गई हो। केवल एक लगने से पाँच-छह ज़ीरो का मूल्य एक लाख बन जायेगा। सो हरि के नाम को हृदय में बसाना, आशा तथा अन्देशों से उपर उठना, वाहिगुरू जी की कृपा प्राप्त करना, लेखे में लगने वाले कर्म हैं जैसा कि फ़रमान है -

लिखि लिखि पड़िआ तेता कड़िआ।
बहु तीरथ भविआ तेतो लविआ।
बहु भेख कीआ देही दुखु दीआ।
सहु वे जीआ अपणा कीआ।
अंनु न खाइआ सादु गवाइआ।
बहु दुखु पाइआ दूजा भाइआ।

बसत्र न पहिरै अहिनिसि कहरै।
मोनि विगूता किउ जागै गुर बिनु सूता।
पग उपे ताणा अपणा कीआ कमाणा।
अलु मलु खाई सिरि छाई पाई।
मूरखि अंधै पति गवाई।
विणु नावै किछु थाइ न पाई।
रहै बेबाणी मड़ी मसाणी।
अंधु न जाणै फिरि पछुताणी।
सतिगुरु भेटे सो सुखु पाए।
हरि का नामु मंनि वसाए।
नानक नदरि करे सो पाए।
आस अंदेसे ते निहकेवलु हउमै सबदि जलाए॥ पृष्ठ - 467-68

उन धर्मों-कर्मों का मूल्य बहुत कम है। जब जीव परलोक में जाता है तो इसे यम दूत रास्ते में ही लूट लेते हैं जैसा कि फ़रमान है -

करम धरम पाखंड जो दीसहि तिन जमु जागाती लूटै। पृष्ठ - 747

इन फोकट (बेकार) के कर्मों को गुरमत में कोई मान नहीं दिया गया केवल वाहिगुरू जी को जपना लेखे में पड़ने वाली बात कही गई हैं जैसे कि -

पड़ि पुसतक संधिआ बादं। सिल पूजसि बगुल समाधं।
मुखि झूठ बिभूखण सारं। त्रैपाल तिहाल बिचारं।
गलि माला तिलकु लिलाटं। दुइ धोती बसत्र कपाटं।
जे जाणसि ब्रहमं करमं। सभि फोकट निसचउ करमं
कहु नानक निहचउ धिआवै। विणु सतिगुर वाट न पावै॥
पृष्ठ - 470

गुरू महाराज जी ने सत्य कर्म जो जीव के मुक्त होने में सहायक हैं वह 'सिर करमन के करमा' कह कर फ़रमान किया है कि हरि कीर्तन तथा साधु की संगत बहुत ही ज़रूरी है। यह उन्हें प्राप्त होती हैं जिनके धुर दरगाह से लेख लिखे होते हैं बाकी जो कर्म हैं उनका विवरण देते हुए फ़रमान है -

पाठु पड़िओ अरु बेदु बीचारिओ निवलि भुअंगम साधे।
पंच जना सिउ संगु न छुटकिओ अधिक अहंबुधि बाधे।
पिआरे इन बिधि मिलणु न जाई मै कीए करम अनेका।
हारि परिओ सुआमी कै दुआरै दीजै बुधि बिबेका।
मोनि भइओ करपाती रहिओ नगन फिरिओ बन माही।
तट तीरथ सभ धरती भ्रमिओ दुबिधा छुटकै नाही।

मन कामना तीरथ जाइ बसिओ सिरि करवत धराए।
मन की मैलु न उतरै इह बिधि जे लख जतन कराए।
कनिक कामिनी हैवर गैवर बहु बिधि दानु दातारा।
अंन बसत्र भूमि बहु अरपे नह मिलीऐ हरि दुआरा।
पूजा अरचा बंदन डंडउत खटु करमा रतु रहता।
हउ हउ करत बंधन महि परिआ नह मिलीऐ इह जुगता।
जोग सिध आसण चउरासीह ए भी करि करि रहिआ।
वडी आरजा फिरि फिरि जनमै हरि सिउ संगु न गहिआ॥
राज लीला राजन की रचना करिआ हुकमु अफारा।
सेज सोहनी चंदनु चोआ नरक घोर का दुआरा॥
हरि कीरति साध संगति है सिरि करमन कै करमा।
कहु नानक तिसु भइओ परापति जिसु पुरब लिखे का लहना॥
तेरो सेवकु इह रंगि माता।
भइओ क्रिपालु दीन दुख भंजनु
हरि हरि कीरतनि इहु मनु राता॥ *पृष्ठ - 642*

गुरू महाराज जी ने कर्मों का चित्र खींचते हुए कर्मों धर्मों को माया का खेल बताया है, केवल प्रभु के सुमिरन को श्रेष्ठ कर्म कहा गया है जैसा कि फ़रमान आता है -

सरब धरम महि स्रेसट धरमु।
हरि को नामु जपि निरमल करमु। *पृष्ठ - 266*

इसी तरह से -

नामु विसारि माइआ मदु पीआ।
बिनु गुर भगति नाही सुखु थीआ॥ *पृष्ठ - 832*

इसके बाद और फ़रमान है कि किसी भी तरह के किये गये कर्म नाम के बराबर फल नहीं दे सकते -

असुमेध जगने। तुला पुरख दाने।
प्राग इसनाने॥ तउ न पुजहि हरि कीरति नामा।
अपुने रामहि भजु रे मन आलसीआ॥
गइआ पिंडु भरता। बनारसि असि बसता।
मुखि बेद चतुर पड़ता॥ सगल धरम अछिता।
गुर गिआन इंद्री द्रिड़ता। खटु करम सहित रहता॥
सिवा सकति संबादं। मन छोडि छोडि सगल भेदं।
सिमरि सिमरि गोबिंदं। भजु नामा तरसि भव सिंधं॥ *पृष्ठ - 872*

सो ये कर्म जिन्हें हम कर्म काण्ड कहते हैं न तो पूरी तरह से मन की मैल दूर करने में समर्थ हैं और न ही बहुत कर्म फल देते हैं क्योंकि जब जीव इस संसार से जाता है तो अपने कर्म फल भोगने के लिए उसे धर्मराज की कचहरी में जाना पड़ता है। गरूड़ पुराण के अनुसार 21

पुरियों में से जीव को गुज़रना पड़ता है। पुरियों का रास्ता बहुत ही भयानक है जैसा कि गुरू महाराज जी ने फ़रमान किया है –

जिह मारग के गने जाहि न कोसा।
हरि का नामु ऊहा संगि तोसा।
जिह पैडै महा अंध गुबारा।
हरि का नामु संगि उजीआरा।
जहा पंथि तेरा को न सिञानू।
हरि का नामु तह नालि पछानू।
जह महा भइआन तपति बहु घाम।
तह हरि के नाम की तुम ऊपरि छाम।
जहा त्रिखा मन तुझु आकरखै।
तह नानक हरि हरि अंम्रितु बरखै॥ *पृष्ठ - 264*

उस रास्ते में हर एक पुरी में से पार होने के लिए, रास्ते की कठिनाईयाँ दूर करवाने के बदले में कर्मों के मूल्य द्वारा Tax (महसूल) देना पड़ता था, वे धर्म कर्म रास्ते में ही खत्म हो जाते हैं। सो वहाँ धर्म कर्म कुछ भी सहायता नहीं करते। वहाँ यदि कोई चीज़ चलती है तो जपा हुआ नाम ही फल देने में समर्थ होता है। नाम का फल अनन्त है और नाम जपने वाला धर्मराज की दरगाह में नहीं जाता। धर्मराज के पास केवल वही जाते हैं जो निगुरे रहते हैं, जिन्हें समरथ गुरू की प्राप्ति नहीं होती और मन के पीछे चल कर जीवन व्यतीत करते हैं। राम नाम से टूटे होते हैं, वे किये गये कर्मों का फल मांगते हैं जैसे कि –

धरमराइ नो हुकमु है बहि सचा धरमु बीचारि।
दूजै भाइ दुसटु आतमा ओहु तेरी सरकार। *पृष्ठ - 38*

द्वैत भाव वाले जीवों को धर्मराज के पास जाकर अपने किये गये कर्मों का लेखा जोखा देना ही पड़ता है। यदि कहीं बन्दगी करने वाला पुरूष धर्मराज की दरगाह में चला जाए तो धर्मराज उसका स्वागत करता है तथा मन से, चित्त से एक होकर सेवा करता है –

अधिआतमी हरि गुण तासु मनि जपहि एकु मुरारि।
तिनकी सेवा धरमराइ करै धंनु सवारणहारु॥ *पृष्ठ - 39*

सो कर्मों धर्मों को हऊमै मण्डल की कर्मशाला बताया गया है जब कर्म करने के बाद जीव ' हउमै'' मैं' धारण करता है, कर्मों का कर्त्ता भाव धारण करता है तो ऐसे कर्म अन्तसकरण को और भी गन्दा कर देते हैं। दान करता है, दानी बनता हैं, अभिमान धारण करता है। परिश्रम का क्या फल मिला? किये गये कर्म का फल नष्ट कर लिया। जैसा कि –

तीरथ बरत अरु दान करि मन मै धरै गुमानु।
नानक निहफल जात तिहि जिउ कुंचर इसनानु॥ *पृष्ठ - 1428*

नाम से विहीन संसार से रोता हुआ जाता है। कर्म करने से हऊमैं की मैल और बढ़ गई।

तीरथ नाइ न उतरसि मैलु। करम धरम सभि हउमै फैलु।
लोक पचारै गति नही होइ। नाम बिहूणे चलसहि रोइ॥
पृष्ठ - 890

वाहिगुरू तक पहुँचने में हरि का नाम तथा वाहिगुरू जी के साथ प्रेम समर्थ हैं। तप करने वाले कर्म भी इस आशय से किये जाते हैं कि इन कर्मों के बल के कारण ज्ञान की प्राप्ति हो जाये। पर ये कर्म हऊमैं के मण्डल में होने के कारण हऊमैं का नाश नहीं करते। केवल भक्ति सहित ज्ञान ही समरथ गुरू की कृपा द्वारा वाहिगुरू जी तक रूसवाई (पहुँच) किया करता है। कर्मों का विवरण देते हुए गुरू दशमेश पिता जी फ़रमान करते हैं -

कई कोक काब भणंत। कई बेद भेद कहंत॥
कई सासत्र सिंम्रिति बखान। कहूँ कथत ही सु पुरान॥४१॥
कई अगन होत करंत। कई उरध तप दुरंत॥
कई उरध बहु संनिआस। कहूँ जोग भेस उदास।। ४२॥
कहूँ निवली करम करंत। कहूँ पउन अहार दुरंत॥
कहूँ तीरथ दान अपार। कहूँ जग करम उदार॥४३॥
कहूँ अगन होत्र अनूप। कहूँ निआइ राज बिभूत।।
कहूँ सासत्र सिंम्रिति रीत। कहूँ बेद सिउ बिप्रीत॥४४॥
कई देस देस फिरंत। कई एक ठौर इसथंत॥
कहूँ करत जल महि जाप। कहूँ सहत तन परताप॥४५॥
कहूँ बास बनहि करंत॥ कहूँ ताप तनहि सहंत॥
कहूँ ग्रिहसत धरम अपार। कहूँ राज रीत उदार॥ ४६॥
कहूँ रोग रहत अभरम। कहूँ करम करत अकरम॥
कहूँ सेख ब्रहम सरूप। कहूँ नीत राज अनूप॥४७॥
कहूँ रोग सोग बिहीन॥ कहूँ एक भगति अधीन॥
कहूँ रंक राज कुमार। कहूँ बेद बिआस अवतार॥४८॥
कई ब्रहम बेद रटंत। कई सेख नाम उचरंत॥
बैराग कहूँ संनिआस। कहूँ फिरत रूप उदास॥४९॥
सभ करम फोकट जान। सभ धरम निहफल मान॥
बिन एक नाम अधार। सभ करम भरम बिचार॥ ५०॥

जब तक मन माया के प्रभावों के अधीन है। तत्व ज्ञान होकर हउमैं का पूरी तरह से नाश नहीं हो जाता तब तक भवजल से पार होना बहुत

कठिन हुआ करता है। कई प्रेमी शरीर पर राख लगा लेते हैं। कई श्मशान भूमि में जाकर बैठ जाते हैं कई भोरों (गुफाओं) में बैठ जाते हैं। कई वर्षों तक किसी से बात नहीं करते , मौन धारण करके दुनियां से चले जाते हैं। कई इतनी extreame (चर्म सीमा) तक चले जाते हैं कि गृहस्थ आदि के बारे में ध्यान रखते हैं कि वे पूर्ण ब्रह्मचारी नहीं हैं। इसलिए ऐसे लोगों का पार होना कठिन है पर गुरू महारज जी फ़रमान करते हैं कि प्यारे! ये कर्म फोकट कर्म हैं जब तक पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती तब तक भवजल से पार होना कठिन है जैसा कि आपने फ़रमान किया है –

खूकमल हारी गज गदहा बिभूति धारी,
गिदूआ मसान बासु करिओई करत हैं।
घुघू मट बासी लगे डोलत उदासी म्रिग,
तरवर सदीव मोन साधेई मरत हैं।
बिंद के सद्धया ताहि हीजकी बड्डयादेत,
बंदरां सदीव पाइ नागे ही फिरत हैं।
अंगना अधीन काम क्रोध के परबीन,
एक गिआन के बलीन छीन कैसे कै तरत हैं॥ अकाल उस्तति

कुछ लोगों का विचार होता है कि रिद्धि सिद्धि द्वारा अपना शरीर अलोप करके रखना, जगलों में घूमते रहना, अन्न का त्याग करके केवल दूध ही पीना, कई वृक्षों के पत्ते सूत (गुच्छे के रूप में तोड़ कर) कर खा जाते हैं। कुछ शक्तियों के साथ उड़कर परम पद प्राप्त करना चाहते हैं। कुछ त्राटक के साथ निर्वाण पद की प्राप्ति तथा परम पद की प्राप्ति की इच्छा रखते हैं। गुरू महाराज जी कहते हैं कि प्यारे! वहिगुरू की क्रिया की पहचान करके ऐसी आर्कषित करने वाली बातें करने से वाहिगुरू जी को नहीं मिला जा सकता –

भूत बन चारी छित छौना सभै दूधा धारी
पौन के अहारीसुभुजंग जानीअत हैं॥
त्रिणके भच्छया धन लोभ के तज्जया तेतो
गऊअन के जया ब्रिख भया मानीअत हैं॥
नभके उड्डया ताहि पंछी की बड्डया देत
बगुला बिड़ाल बक धिआनी ठानीअत हैं।
जेतो बडे गिआनी तिनो जानी पैबखानी
नाहि ऐसे न प्रपंच मन भूल आनीअतु हैं॥ अकाल उस्तति

एक फलाहार करते हैं, एक दिखाई नहीं देते एक पानी पर तैर सकते हैं, एक आग भक्षण करते हैं एक चन्द्रमा तथा सूरज की पूजा करते हैं।

भूमिके बसया ताहि भूचरी के जया कहै

नभ के उड्डया सोचिरया कै बखानीऐ॥
फल के भच्छया ताहि बांदरी के जया कहै
आदिस फिरया तेतो भूत कै पछानीऐ॥
जल के तरया को गंगेरी सी कहत
जग आग के भच्छया सु चकोर सम मानीऐ॥
सूरज सिवया ताहि कौलकी बजया देत
चंद्रमा सवया को कवी कै पहिचानीऐ॥ *अकाल उस्तति*

एक प्रभु प्राप्ति के लिए नाचते हैं, एक अनेक प्रकार के हाव-भाव बनाकर जगत को दिखाते हैं, एक शीतल रूप धारण करते हैं, एक तपस्वी रूप धारण करते हैं। गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं कि बड़े बड़े तपस्वी शिवजी जैसे ब्रह्मा जैसे वेदों के उच्चारण करने वाले, सन्त कुमार जैसे तपस्वी बेअन्त संसार में हुए हैं। पर ज्ञान की प्राप्ति के बग़ैर काल फांस गले में से नहीं निकलती और हर समय संसार में जन्म धारण करके आना पड़ता है। एक केवल डडोन्त कर्म करते हैं, एक भूखे रहते हैं, पर जितनी देर तक मन कामना के अधीन है, वासना में प्रवीन है, वाहिगुरू जी भावना हृदय में उत्पन्न नहीं हुई, वे वाहिगुरू जी को प्राप्त कर ही नहीं सकते। उसके द्वारा किये गये सिजदे-साधन कोई अर्थ नहीं रखते। उसके बारे में फ़रमान है -

सिजदे करे अनेक तोपची कपट भेस पोसती
अनेक दा निवावत है सीस कौ॥ *अकाल उस्तति*

पहलवान अनेक डण्ड निकालता है, तोपों के निशानची अनेक बार तरलें करने वालों की तरह करते हैं, बार-बार नीते झुकते हैं। ये डन्डोत नहीं बन सकतीं। यदि भूखा रहता है तो रोगी कुछ नहीं खाता, वास्तविकता यह है कि जब तक भावना पैदा नहीं होती ये फोकट कर्म किसी किनारे पर नहीं पहुँचाया करते-

कहां भइओ मल्ल जोपै काढत अनेक डंड
सोतो न डंडौत असटांग अथतीस कौ॥
कहा भइओ रोगी जोपै डारयो रहयो उरध मुख
मन ते न मूड निहरायो आद ईस कौ॥
कामना अधीन सदा दामना प्रबीन एक
भावना बिहीन कैसे पावै जगदीस कौ॥ *अकाल उस्तति*

गुरू महाराज जी ने अकाल उस्तुति में अपने कवित्तों में इन पाखण्डों के बारे में काफी शोध कर लिखा है, विचार करने के लिए वहाँ से पढ़े जा सकते हैं।

प्यार करने पर वाहिगुरू जी वश में हो जाते हैं। जो कुछ भी उनके प्यारे

कहते हैं वह परमेश्वर को मानना पड़ता है जैसा कि फ़रमान आता है –

जो किछु करै सोई प्रभ मानहि ओइ राम नाम रंगि राते।
तिन्ह की सोभा सभनी थाई जिन्ह प्रभ के चरण पराते।
मेरे राम हरि संता जेवडु न कोई।
भगता बणि आई प्रभ अपने सिउ
जलि थलि महीअलि सोई॥ पृष्ठ - 748

वाहिगुरू जी सर्व कला समरथ, प्यार रूप, रंग, रेख, भेख रहित, हाज़रा हजूर, जाहरा जहूर परम सत्ता है जो निरा प्यार ही है। वाहिगुरू जी जीव को सदा न मांगी जाने वाली दातें देता है बदले में हृदय से उठा हुआ अपनत्व भरा प्यार ही मांगता है, जो भी उसे प्यार करता है उसके सारे काम वह स्वंय करता है, परम मित्र है, माँ है, पिता है, भ्राता है, सभी कुछ ही है। अन्य किसी तरीके से वह नहीं पसीजता। जैसा कि फ़रमान है –

ना तू आवहि वसि बहुतु घिणावणे।
ना तू आवहि वसि बेद पड़ावणे।
ना तू आवहि वसि तीरथि नाईऐ।
ना तू आवहि वसि धरती धाईऐ।
ना तू आवहि वसि कितै सिआणपै।
ना तू आवहि वसि बहुता दानु दे।
सभु को तेरै वसि अगम अगोचरा।
तू भगता कै वसि भगता ताणु तेरा॥ पृष्ठ - 962

सो ये कर्म धर्म प्रभु तक पहुँचने की समर्थ नहीं रखते। इसके विपरीत बार बार जन्म धारण करके इनका फल भोगना पड़ता है और ये इतने कठोर होते हैं कि मिटाने से नहीं मिटते, भोगने ही पड़ते हैं। सो जब तक कर्मों धर्मों के विस्तार का सम्बन्ध है, गुरू महाराज जी ने कई स्थानों पर फ़रमान किया है और निर्णय दिया है कि करोड़ों मनुष्यों में से कोई एक आधा ऐसा पुरुष है जिसे कभी नाम नहीं भूलता। उसकी पदवी सन्त की हुआ करती है और इससे बढ़कर वह परमेश्वर के साथ अभेद हुआ परमेश्वर ही हुआ करता है –

जिन्हा सासि गिरासि न विसरै हरि नामां मनि मंतु।
धंनु सि सेई नानका पूरनु सोई संतु॥ पृष्ठ 319

जिन्हा न विसरै नामु से किनेहिआ।
भेदु न जाणहु मूलि सांई जेहिआ॥ पृष्ठ - 397

ऐसा सांई जैसा सन्त करोड़ों में से एक-आध ही हुआ करता है। व्यवहार करने वाले (दिखावटी) तो करोड़ों ही सन्त मिल जाया करते हैं जिनसे मार्ग दर्शन नहीं हो पाता क्योंकि वे स्वंय ही सफर कर रहे होते

हैं। ऐसे सन्त जिनके द्वारा हमारे अज्ञान के बन्धन काटे जाएं, भ्रमों का नाश हो जाए, वे पूर्व कर्मों के बिना नहीं मिला करते –

पूरब करम अंकुर जब प्रगटे भेटिओ पुरखु रसिक बैरागी।
मिटिओ अंधेरु मिलत हरि नानक जनम जनम की सोई जागी॥

पृष्ठ - 204

कर्मों-धर्मों का वर्णन करते हुए तथा धर्मात्मा मनुष्यों की अन्तरीवी अवस्था का वर्णन करते हुए महाराज जी फ़रमान करते हैं –

मन महि क्रोधु महा अहंकारा।
पूजा करहि बहुतु बिसथारा।
करि इसनानु तनि चक्र बणाए।
अंतर की मलु कबही न जाए।
इतु संजमि प्रभु किनही न पाइआ।
भगउती मुद्रा मनु मोहिआ माइआ।
पाप करहि पंचां के बसि रे।
तीरथि नाइ कहहि सभि उतरे
बहुरि कमावहि होइ निसंक।
जम पुरि बांधि खरे कालंक॥
घूघर बाधि बजावहि ताला।
अंतरि कपटु फिरहि बेताला।
वरमी मारी सापु न मूआ।
प्रभु सभ किछु जानै जिनि तू कीआ॥
पूंअर ताप गेरी के बसत्रा।
अपदा का मारिआ ग्रिह ते नसता।
देसु छोडि परदेसहि धाइआ।
पंच चंडाल नाले लै आइआ॥
कान फराइ हिराए टूका।
घरि घरि मांगे त्रिपतावन ते चूका।
बनिता छोडि बद नदरि परनारी।
वेसि न पाईऐ महा दुखिआरी॥
बोले नाही होइ बैठा मोनी।
अंतरि कलप भवाईऐ जोनी।
अंन ते रहता दुखु देही सहता।
हुकमु न बूझै विआपिआ ममता॥
बिनु सतिगुर किनै न पाई परमगते।
पूछहु सगल बेद सिंम्रिते।
मनमुख करम करै अजाई।
जिउ बालू घर ठउर न ठाई॥
जिसनो भए गोबिंद दइआला।

गुर का बचनु तिनि बाधिओ पाला।
कोटि मधे कोई संतु दिखाइआ।
नानकु तिनकै संगि तराइआ॥
जे होवै भागु ता दरसनु पाईऐ।
आपि तरै सभु कुटंबु तराईऐ। *पृष्ठ - 1348*

बेअन्त प्रकार के कर्म-धर्म भारत वर्ष में प्रचलित हैं। जीव इन कर्मों की कीचड़ में फंसे हुए आत्मिक रस से वंचित रह जाते हैं। वैसे उनके जब कर्म-धर्म देखते हैं तो हमारे मन में भी श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है कि ये मनुष्य बहुत श्रेष्ठ हैं पर जब कसौटी पर रख कर परखा जाता है तो वह उस अवस्था पर खरे नहीं उतरते। नाम आत्म तत्व को भेदने वाला होता है। आत्म तत्व भेदना एक शिरोमनी साधन है, प्रभु में अभेद होने के लिए। शेष सभी कर्म-धर्म पाखंड श्रेणी में शामिल हुए होते हैं। कलयुग कर्म धर्म करने का युग नहीं यह नाम जपने का समय है। समरथ गुरू या तत्व वेता पूर्ण पुरुष गुरमुख द्वारा जपा हुआ नाम जल्दी फलीभूत होता है। आत्म भेद की युक्ति महापुरुषों, गुरमुख प्यारों से सहज ही प्राप्त हो जाया करती है। गुरमत में भक्ति सहित ज्ञान प्रवान है। संसार में ''वरतणि वैराग'' मुख्य भक्ति, निश्चय ज्ञान होना, सरल खुला मार्ग है। अन्य फोकट कर्मों के बारे में फ़रमान है -

तनि चंदनु मसतकि पाती। रिद अंतरि कर तल काती।
ठग दिसटि बगा लिव लागा। देखि बैसनो प्रानमुख भागा॥
कलि भगवत बंद चिरामं। क्रूर दिसटि रता निसि बादं॥
नित प्रति इसनानु सरीरं। दुइ धोती करम मुखि खीरं।
रिदै छुरी संधिआनी। परदरबु हिरन की बानी॥
सिल पूजसि चक्र गणेसं। निसि जागसि भगति प्रवेसं।
पग नाचसि चितु अकरमं। ए लंपट नाच अधरमं॥
म्रिग आसणु तुलसी माला। कर ऊजल तिलकु कपाला।
रिदै कूड़ु कंठि रुद्राखं। रे लंपट क्रिसनु अभाखं॥
जिनि आतम ततु न चीनिआ। सभ फोकट धरम अबीनिआ।
कहु बेणी गुरमुखि धिआवै। बिनु सतिगुर बाट न पावै॥
पृष्ठ - 1351

होम करते हुए, यज्ञ करते हुए तीर्थों पर भ्रमण करते हुए, वेदों, पुराणों कुरान शरीफ, बाईबल की विचार करते हुए मन की मैल नहीं उतरा करती। गुरू महाराज जी ने एक ही साधन बताया है, जो कर्म हउमै की मैल उतारने की समर्थ रखता है, वह है अल्लाह की इबादत, रिआजत (भक्ति) और तत्व ज्ञान की प्राप्ति होकर पाँच भ्रमों का नाश होकर हर जगह प्रभु दर्शन होना और आपा भाव (निजित्व) समाप्त हो जाना है -

भरीऐ मति पापा कै संगि। ओहु धोपै नावै कै रंगि॥ पृष्ठ - 4

अन्य कर्मों के बारे में तो महाराज जी ने फ़रमान किया है कि हउमै की मैल और भी लग जाती है -

होम जग सभि तीरथा पढ़ि पंडित थके पुराण।
बिखु माइआ मोहु न मिटई विचि हउमै आवणु जाणु।
सतिगुर मिलिऐ मलु उतरी हरि जपिआ पुरखु सुजाणु।
जिना हरि हरि प्रभु सेविआ जन नानकु सद कुरबाणु॥

पृष्ठ - 1417

84 आसन सीख कर सिद्धों के प्राणायाम करने के अतिरिक्त निऔली, धोती, बसती, त्राटक, कपाल भाती आदि कर्म मन को शान्त नहीं कर सकते। जप तप द्वारा मन को शान्त नहीं किया जा सकता। मन में शान्ति के बिना यह जीव गन्दगी का कीड़ा हुआ करता है। गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं कि मन को शान्त करने के लिए केवल नाम ही समरथ हुआ करता है जैसा कि -

सुन्दर सेज अनेक सुख रस भोगण पूरे।
ग्रिह सोइन चंदन सुगंध लाइ मोती हीरे।
मन इछे सुख माणदा किछु नाहि विसूरे।
सो प्रभु चिति न आवई विसटा के कीरे।
बिनु हरि नाम न सांति होइ कितु बिधि मनु धीरे॥ पृष्ठ - 707

इसके विपरीत जिसके मन में शान्ति है, उसके पास चाहे पदार्थों की प्राप्ति न हो, रहने के लिये झौपड़ी भी न हो, कोई भी व्यक्ति उसके साथ सीधे मुँह चाहे बात भी न करता हो, जाति भी ऊँची न हो, यदि उसके हृदय में नाम बसा हुआ है तो वह राजाओं का भी राजा है। बहती हुई नदियाँ उसे मार्ग देती हैं, वायु उसकी आज्ञा में चलती है। पवन, पानी, बैसन्तर उसकी आज्ञा मानते हैं यहाँ तक कि दरगाह में भी उन्हीं का हुक्म चलता है जैसा कि फ़रमान है -

बसता तूटी झुंपड़ी चीर सभि छिंना।
जाति न पति न आदरो उदिआन भ्रमिंना।
मित्र न इठ धन रूप हीण किछु साकु न सिंना।
राजा सगली स्रिसटि का हरि नामि मनु भिन्ना।
तिस की धूड़ि मनु उधरै प्रभु होइ सु प्रसंना॥ पृष्ठ - 707

तथा -

जा का कहिआ दरगह चलै।
सो किस कउ नदरि लै आवै तलै॥ पृष्ठ - 186

उसकी अवस्था इतनी ऊँची हो जाती है कि उसके मानवीय वजूद

में से प्रभु के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं तथा तीनों प्रमुख देवता उसके दर्शन करके अपने धन्य भाग्य समझते हैं जैसा कि –

ब्रहमगिआनी कउ खोजहि महेसुर।
नानक ब्रहमगिआनी आपि परमेसुर ॥ पृष्ठ - 273

इसलिये वाहिगुरू जी के नाम को छोड़कर जो अन्य कर्म धर्म मनुष्य करता है वे व्यर्थ ही हुआ करते हैं उनका फल यमदूत लूट लिया करते हैं। कुछ संसार के लोग अपने पापों को दूर करवाने के लिए लूट लिया करते हैं। सच्चा धन केवल 'हरिनाम' का है। शेष सभी कर्म-धर्म व्यर्थ है –

हरि बिनु अवर क्रिआ बिरथे।
जप तप संजम करम कमाणे इहि ओरै मूसे।
बरत नेम संजम महि रहता तिन का आढु न पाइआ।
आगै चलणु अउरु है भाई ऊंहा कामि न आइआ॥
तीरथि नाइ अरु धरनी भ्रमता आगै ठउर न पावै।
ऊहा कामि न आवै इह बिधि ओहु लोगन ही पतीआवै॥
चतुर बेद मुखबचनी उचरै आगै महलु न पाईऐ।
बूझै नाही एकु सुधाखरु ओहु सगली झाख झखाईऐ॥
नानकु कहतो इहु बिचारा जि कमावै सु पारगरामी।
गुरु सेवहु अरु नामु धिआवहु तिआगहु मनहु गुमानी॥

पृष्ठ - 216

भवसागर तरने के लिए कर्म धर्म समरथ नहीं हैं क्योंकि कर्म धर्म से 'कर्म' बनता है। कर्म का फल भोगना पड़ता है, कर्मों के फल भोगने के लिए जन्म जन्मातरों के चक्कर लगाने पड़ते हैं। वाहिगुरू जी प्यार करने पर पसीजते हैं। कर्म धर्म का मूल्य बहुत कम है, नाम अमूल्य है। नाम केवल प्यार का बहता हुआ दरिया है, वाहिगुरू जी प्रेम का सागर हैं, हमारे छोटे से निजित्व का परम निजित्व के साथ किया गया प्यार उसे आकृषत करता है। प्रेमी, प्रीत से हीन मुर्दा हुआ करता है। मुर्दे का कैसा आचार है? कैसा व्यवहार, कैसा श्रृंगार? 'नाम' जपना जीवन की पहचान है, कर्म-धर्म मुर्दे के साधन हैं फ़रमान है –

करम धरम नेम ब्रत पूजा। पारब्रहम बिनु जानु न दूजा॥
ता की पूरन होई घाल। जा की प्रीति अपुने प्रभ नालि॥
सो बैसनो है अपर अपारु। कहु नानक जिनि तजे बिकार।।

पृष्ठ - 199

सो गुरू महाराज जी यह निष्कर्ष निकालते हैं कि सबसे उत्तम भाग जीव के हुआ करते हैं जब उसे समरथ गुरू मिल जाए और उससे नाम

की दात प्राप्त करके, अपने स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करके रूहानियत की सीढ़ियाँ चढ़ता चढ़ता वाहिगुरू जी में अभेद हो जाता है –

बेदु पुकारै मुख ते पंडत कामामन का माठा।
मोनी होइ बैठा इकांती हिरदै कलपन गाठा।
होइ उदासी ग्रिहु तजि चलिओ छुटकै नाही नाठा॥
जीअ की कै पहि बात कहा।
आपि मुकतु मोकउ प्रभु मेले ऐसो कहा लहा॥ रहाउ॥
तपसी करि कै देही साधी मनूआ दहदिस धाना।
ब्रहमचारि ब्रहमचजु कीना हिरदै भइआ गुमाना।
संनिआसी होइ कै तीरथि भ्रमिओ उसु महि क्रोधु बिगाना॥
घूंघर बाधि भए रामदासा रोटीअन के ओपावा।
बरत नेम करम खट कीने बाहरि भेख दिखावा।
गीत नाद मुखि राग अलापे मनि नही हरि हरि गावा॥
हरख सोग लोभ मोह रहत हहि निरमल हरि के संता।
तिन की धूड़ि पाए मनु मेरा जा दइआ करे भगवंता।
कहु नानक गुरु पूरा मिलिआ तां उतरी मन की चिंता॥
मेरा अंतरजामी हरि राइआ।
सभु किछु जाणै मेरे जीअ का प्रीतमु बिसरि गए बकबाइआ।।

पृष्ठ - 1003

सो इस प्रकार राम के नाम के बिना मुक्ति नहीं हुआ करती और कोई भी ऐसा कर्म नहीं है जो इसे संसार सागर से पार करवा सके। इसलिये राम नाम का जपना ही श्रेष्ठ कर्म है जिस नाम से निर्मल कर्म प्रकट होते हैं। जिज्ञासु को नाम जपते जपते यह ज्ञान हो जाता है कि सभी कुछ वाहिगुरू जी के हुक्म में हो रहा है, मैं कुछ भी करने की समर्थ नहीं रखता। नाम उसकी कृपा द्वारा ही जपा जा रहा है। पूर्ण गुरू की मति धारण करके भक्ति करता है। शबद की कमाई के कारण अपने आत्म स्वरूप का ज्ञान पैदा होता है तथा परमात्म स्वरूप में समाई होती है। अन्य शेष कर्मों को फोकट कर्म ही कहा है –

इकि सोगी इकि रोगि विआपे। जो किछु करे सु आपे आपे।
भगति भाउ गुर की मति पूरी अनहदि सबदि लखाई हे॥
इकि नागे भूखे भवहि भवाए। इकि हठु करि मरहि न कीमति पाए।
गति अविगत की सार न जाणै बूझै सबदु कमाई हे॥
इकि तीरथि नावहि अंनु न खावहि। इकि अगनि जलावहि देह खपावहि।
राम नाम बिनु मुकति न होई कितु बिधि पारि लंघाई हे॥

पृष्ठ - 1025

सो यह बन्धन जीव का बहुत ही भयानक है। इसकी निवृत्ति गुरू से नाम की दात प्राप्त करके ही हुआ करती है। जब तक इसे यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती, इसकी परम गति नहीं हुआ करती क्योंकि हउमै की मैल पूर्ण गुरू के बगैर और कोई धोने में समर्थ नहीं है। फल देने के लिये फलदार वृक्ष है फलता फूलता है, उसे फूल लगते हैं। फूलों में से डोडियाँ (कलियाँ) निकलती है और फल के रूप में विकसित होती हैं। जीव का कार्य फल प्राप्त करना होता है जब फल हाथ में आ गया फिर यदि उस वृक्ष के फल खा लेने के बाद भी उस पर छिड़काव (spray) किया जाये तो वह बहुत अधिक फलदायी नहीं हुआ करता। सो सारे कर्मों का अन्त हो जाया करता है, जब ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है, कर्म फल देने से बन्द हो जाते हैं –

फल कारन फूली बनराइ। फलु लागा तब फूलु बिलाइ।
गिआनै कारन करम अभिआसु। गिआनु भइआ तह करमह नासु॥
पृष्ठ – 1167

इसका यह अर्थ नहीं कि परम पुरुष ज्ञान प्राप्ति के बाद क्रिया छोड़ देते हैं, वह जिस भी रहत मर्यादा के अनुसार जीवन बिताते हैं, उन्हें कोई भी कर्म, फल देने वाला नहीं होता। वह एक ऐसे प्रोफैसर का कार्य करते हैं जो स्वंय सब कुछ जानता हुआ दूसरों को practically (व्यवहारिक) रूप में जीवन गुज़ारने के लिये कार्य करता है। जैसे पी. टी. मास्टर (शारीरिक शिक्षा देने वाले शिक्षक) विद्यार्थी के साथ ही demonstration देते हैं, उनका कार्य दूसरों को सिखाने का होता है वे स्वंय तो कोर्स पास कर चुके होते हैं। इसी प्रकार ज्ञानवान पुरुष के शुभ कर्म, अमृत बेला की जाग, बाणी में लीन होना, नाम जपना, समाधिष्ठ होना, लंगर चलाना स्कूल चलाने, हस्पताल चलाने आदि उन्हें स्वंय को कोई लाभ नहीं पहुँचाते क्योंकि उन्होंने जो प्राप्त करना था वे कर चुके हैं। वे सत्य का रूप हो चुके हैं। इसलिये उनकी करनी सच ही हुआ करती है, जो संसार के अनेक जीवों को भवसागर से पार कराने की समर्थ रखती है। यह कर्म धर्म का बन्धन ज्ञान के बिना नहीं कट (छूट) सकता। ज्ञान समरथ गुरू के बिना नहीं हुआ करता जैसा कि फ़रमान है –

भाई रे गुर बिनु गिआनु न होइ।
पूछहु ब्रहमे नारदै बेदबिआसै कोइ॥ ***पृष्ठ – 59***

जीव के कल्याण के लिए गुरू की जरूरत है। गुरू घर के अन्दर तत्व वेत्ता महापुरुषों की आवश्यकता है पर महापुरुष भेषधारी पाखण्डी न हो, न ही कोई आडम्बर रचने वाला हो, न ही मान प्राप्ति का इच्छुक हो।

तत्व वेता महापुरुष उन्हें कहा जाता है जिन्होंने संसार में सत्य को अपने अन्दर प्रकट कर लिया हो तथा कण-कण में उसकी उपस्थिति अनुभव करके उसमें लीन रहते हों, उनकी दृष्टि हर स्थान पर प्रभु के दर्शन करने वाली हो, ऐसे महात्मा गुरबाणी के गुप्त भावों को अपने जीवन में प्रत्यक्ष रूप से प्रकट करने वाले हुआ करते हैं। सो ऐसे अद्वैतवादी पाँच भ्रमों से रहित ब्रह्म नेष्टी, ब्रह्म श्रोता, ब्रह्म वक्ता महात्मा जिज्ञासु की पूर्ण रूप में सहायता करके उसके अज्ञान के भ्रम काटने में समरथ हुआ करते हैं। इसके विपरीत कच्चा गुरू, पण्डित गुरू जो वेद वाक्यों, गुरबाणी के परम सिद्धान्तों, जीव ब्रह्म की एकता पर श्रद्धा रखने वाला न हो, वह जीव का कल्याण नहीं कर सकता इसी प्रकार अवधूत गुरू जिसने स्वंय तो तत्व को समझ लिया हो पर उसमें वह वाक शक्ति न हो जिससे जीव के भ्रम काट सके वह भी उद्धार करने में समर्थ नहीं होता। अज्ञान का नाश करने वाला केवल तत्व वेत्ता महापुरुष ही हुआ करता है। चाहे सारा प्रसार आत्मा का है, आत्मा में न कोई जाति होती है, जीव को जात-पात का ज्ञान केवल अधिआस के कारण है। आत्मा को कोई भी बन्धन नहीं हुआ करता पर जैसे आकाश में कोई रंग नहीं हुआ करता तथा जब हम आकाश को किसी ऊँचे स्थान पर चढ़कर देखते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे चारों ओर तम्बू जैसी शक्ल बना कर धरती के साथ लगा हुआ है। वास्तव में उसकी दशा ऐसी नहीं है पर दिखाई जरूर देता है, रंग भी नीला दिखाई देता है, आकाश का कोई रंग नहीं हुआ करता। इसी प्रकार आत्मा में किसी प्रकार का कोई बन्धन नहीं हुआ करता, केवल अधिआस के कारण ही प्रतीत होता है, आत्मा में अज्ञान का कोई अंश नहीं हुआ करता जैसे अन्धेरे और प्रकाश का आपस में विरोध है, आत्मा (नाम) स्व प्रकाश है, अज्ञान अन्धेरा है पर ये दोनों तत्व बिना किसी विधि के एक दूसरे का विरोध नहीं करते। समान रूप से टिके रहते हैं। हउमै अपना कार्य जारी रखती है, जीव से कर्म करवाती है, नरक स्वर्ग भेजती है, नरक स्वर्ग की दात्री है, जन्म मरण हर समय गले पड़ा रहता है। जब तक गुरू से मन्त्र प्राप्त करके जीव नाम तत्व में प्रवेश नहीं करता तब तक नाम तत्व अपने आप ही 'मैं' का नाश नहीं कर सकता हउमै का नाश करने के लिए तत्व वेत्ता महापुरुषों के मुखारविन्द से उन तत्व वचनों को श्रवण करने की जरूरत है जिन्हें श्रवण करके जीव के अन्दर प्रकट हुआ नाम तत्व हउमै का पूर्ण रूप में विनाश कर देता है। यह क्रिया केवल उस शरीर में होगी जो साधन सम्पन्न होकर इस अवस्था को प्राप्त कर चुका हो। अन्य शरीरों में नाम तथा हउमै अपने सहज में टिके रहते हैं। आत्मा स्व प्रकाश है, अज्ञान पूर्णतया घनघोर

अन्धकार है, पर आत्मा अज्ञान का विरोधी नहीं है इसके विपरीत विशेष चेतन अज्ञान का विरोधी है सखोपती अज्ञान अवस्था है, उस अवस्था में न कोई अपने शरीर का ध्यान रहता है, न ही कोई पता होता है कि संसार है न कोई उसमें पुत्र, पुत्रियाँ, स्त्री, मित्र, शत्रु होते हैं। इस प्रकार से गूढ़ निद्रा, मूर्च्छित अवस्था ही होती है, उस गहरी नींद में कल्पित किये सुख का जो ज्ञान याद-दाश्त में समाया होता है, उसका प्रकाशक भी आत्मा ही होता है, अन्तसकरण नहीं होता, क्योंकि अन्तसकरण मन, चित्त, बुद्धि, अहम्भाव और सभी ज्ञानेन्द्रियाँ उस समय अपने अपने कार्यो में लीन हो जाती हैं, उनका कार्य ज्ञान हुआ करता है। इस पर एक प्रश्न उठता है जब आत्मा (नाम) हउमै का विरोधी है या अज्ञान का विरोधी है फिर दोनों एक स्थान पर रह कर कैसे समझौता कर सकते हैं। दोनों का अस्तित्व कैसे कायम रह सकता है? गुरबाणी में फ़रमान आता है कि -

सगल बनसपति महि बैसंतरु सगल दूध महि घीआ।
ऊच नीच महि जोति समाणी घटि घटि माधउ जीआ॥
संतहु घटि घटि रहिआ समाहिओ।
पूरन पूरि रहिओ सरब महि जलि थलि रमईआ आहिओ।
गुण निधान नानकु जसु गावै सतिगुरि भरमु चुकाइओ।
सरब निवासी सदा अलेपा सभ महि रहिआ समाइओ।।

पृष्ठ - 617

वनस्पति में जो अग्नि है वह काठ की विरोधी है पर काठ में पड़ी आग उसे नहीं जलाती। जब प्रचण्ड हो जाए फिर जला देती है। इसी प्रकार व्यापक चेतन अज्ञान को अपने आप दूर नहीं कर सकता पर जब अन्तसकरण में ब्रह्माकार वृत्ति उद्‌गम हो जाये, उस समय ये ब्रह्म वृत्तियाँ अज्ञान रूपी अन्धकार का नाश कर देती है। सो वृत्ति के साथ चेतन जो है वह अज्ञान का विरोधी है। हम आत्मा के सत्य स्वरूप को मानते हैं पर आनन्द तथा चेतन, व्यापक, नित्य, शुद्ध, नित्य मुक्त रूप आत्मा को जाना नहीं। यह बात केवल अनुभव सिद्ध है। इस स्वरूप का अनुभव केवल आत्म ज्ञानी को ही होता है। इस आत्मा को साक्षात्कार करने में तत्व वेत्ता महापुरुष की अत्यन्त आवश्यकता है। गुरू घर में तत्व वेत्ता महापुरुष ब्रह्म नेष्टी, ब्रह्म श्रोता, ब्रहम वक्ता अपने आपको किसी तरह से भी गुरू तो क्या कहलवाना, कुछ भी नहीं कहलवाया करते क्योंकि उन्हें तत्व का ज्ञान होता है। परमात्म तत्व घट घट में रमा हुआ होता है, वह इसमें अभेद हुआ रहता है, अपना अलग अस्तित्व नहीं रखता इन दो अवस्थाओं का ज़िक्र किया है। इसमें कर्म पहले बन्धन रूप में हुआ करता है। दो प्रकार के कर्म, शुभ कर्म क्यों बन्धन रूप हैं क्योंकि शुभ कर्म के कारण उनका

कर्ता भाव अपने अन्दर बसा लेना स्वर्ग का वास देता है। निखिद्ध कर्मों का फल नरक हुआ करता है। शुभ कर्म शुभ वासना करके किये जाया करते हैं। अशुभ कर्म, अशुभ वासना के कारण किए जाते हैं। हर प्रकार के कर्मों के कर्तापन का अधिआस बुद्धि ज्ञान में होना हर हालत में फल देने वाला हुआ करता है, यह गले से उतरता नहीं है, अशुभ वासना का नाश केवल सत्संग में होता है और जीव सत्संग में ज्ञान प्राप्त करके अशुभ कर्म करने बन्द कर दिया करता है तथा आगे के लिए बुरे कर्मों को छोड़कर नाम जप कर पिछले कर्मों का नाश कर लिया करता है। इसके विपरीत शुभ वासनाएं कुसंग मिलने से समाप्त हो जाया करती हैं और जीव कुसंगत के प्रभावाधीन अशुभ कर्म करता है। कर्मों का यह नियम है कि चाहे शुभ कर्म किए जायें चाहे अशुभ कर्म किए जायें उनका फल भोगना ही पड़ता है। इन दोनों प्रकार से उत्पन्न कर्म भोगों का नाश केवल ज्ञान प्रप्ति से होता है। जब ज्ञान हो जाता है तो कर्म भोग स्वप्न अवस्था (अज्ञान) में ही रह जाते हैं। जिस प्रकार जागने पर सपने का सारा सामान नष्ट हो जाया करता है और सपने में किये गये पुण्य दान का भी जाग्रत अवस्था में कोई फल प्राप्त नहीं हुआ करता और न ही सपने में बहुत बुरे कर्म कत्ल, डाके मारने आदि का फल जाग्रत में हुआ करता है। सपनों की अपनी दुनियाँ होती है। जाग्रत की अपनी दुनियाँ हुआ करती है तथा इसी प्रकार दोनों प्रकार की वासनाओं से उपजे कर्म भोगों का नाश ज्ञान होने पर अवश्य हो जाया करता है जैसा कि गुरू महाराज जी ने फरमाया है–

गुर का सबदु काटै कोटि करम॥ *पृष्ठ - 1195*

पर इसके विपरीत यदि ज्ञान की अवस्था में यह जीव कहता है कि मैं कोई कर्म नहीं करता, न ही फल की इच्छा रखता हूँ। कहने मात्र से इसने इन कर्मों के फल भोगने से बच नहीं जाना। सो अज्ञान की अवस्था में चाहे कर्म इच्छा रहित होकर किये जाएं पर फल जरूर देते हैं पर यह भी जरूर है कि निष्काम कर्म करके अन्तसकरण की मैल दूर हो जाया करती है। निर्मल अन्तसकरण ज्ञान प्राप्ति का सहायक है। सो तत्व वेत्ता महापुरुष ही ज्ञान प्राप्ति में सहायता कर सकते हैं। जो पुरूष अज्ञानी हैं जिनके अन्दर से पाँच भ्रमों का नाश नहीं हुआ जिनके अन्दर से भ्रम की काई न हट सकी, वे चाहे कितने ही चतुर क्यों न हों, उनकी वाकशक्ति चाहे कितनी ही सुलझी हुई क्यों न हो, वे जीव के अज्ञान मण्डल को किसी प्रकार भी नहीं तोड़ सकते और उनका दिया गया उपदेश कभी भी फलीभूत नहीं हुआ करता।

समुद्र का पानी खारा है, पीने से अनेक रोग लग जाते हैं पर यदि

यही पानी बादल बनकर बरसे तो अमृत हो जाया करता है। वेद वाक्य तथा गुरबाणी के सिद्धान्त जब अज्ञानी पुरूष के अन्दर प्रवेश कर गये होते हैं तो उनका प्रभाव खारे पानी जैसा ही हुआ करता है पर जब यही उपदेश तत्व वेत्ता महापुरुषों ने कठिन परिश्रम करके पालन किये तो इस प्रकार अमृत बन जाते हैं जैसे खारा पानी भाप बनकर बादल का रूप धारण कर लेता है और ऊँचे स्थानों पर वर्षा के रूप में बरसता है तो यह अमृत जल फसलों में हरियाली पैदा करता है, अनाज उत्पन्न करता है। ऐसे महापुरुषों के वाक्य कल्याणकारी हुआ करते हैं। भेद भाव रखने वाले से न तो अपना कल्याण होता है और न ही किसी और का कल्याण करने की समर्थ रखता है। केवल बातों का धनी होता है पर करनी कमाई में कुछ भी नहीं हुआ करता जैसा कि गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं –

गली हउ सोहागणि भैणे कंतु न कबहूं मैं मिलिआ॥ पृष्ठ - 433

गलीं असी चंगीआ आचारी बुरीआह।
मनहु कुसुधा कालीआ बाहरि चिटवीआह।
रीसा करिह तिनाड़ीआ जो सेवहि दरु खड़ीआह।
नालि खसमै रतीआ माणहि सुखि रलीआह।
होदै ताणि निताणीआ रहहि निमानणीआह।
नानक जनमु सकारथा जे तिन कै संगि मिलाह॥ पृष्ठ - 85

सो इसलिए अज्ञानी पुरुष चाहे उसका भेष साधुओं का हो, चाहे कोई और हो, उसके अन्दर से प्रकट हुआ ज्ञान, नास्तिकता पैदा कर दिया करता है। वह स्वंय भी नास्तिक होता है और अपने पीछे चलने वालों को भी नास्तिक बना दिया करता है। जैसे मटके में समुद्र का पानी खारा स्वाद बदल नहीं सकता इसी प्रकार अज्ञानी की बुद्धि द्वारा दिया गया उपदेश अज्ञानता का नाश नहीं कर सकता। केवल ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मस्त्रोती, ब्रह्मवक्ता के वचन ही अमृत रूप हुआ करते हैं। ब्रह्मज्ञानी के वचन ही वेद बाणी हुआ करती है और तत्व वचन हुआ करते हैं। जैसा कि –

जिनि जाता तिस की इह रहत।
सति बचन साधू सभि कहत॥ पृष्ठ - 294

यह वचन चाहे किसी भी भाषा में हो, जीव का अज्ञान दूर करने में सहायक होते हैं।

कर्म धर्म के बन्धनों की जानकारी देते हुए गुरू महाराज जी बताते हैं कि दूसरा बन्धन जो जीव की सुरत को भुलाता रहता है वह अविद्या है। जीव को जीव भाव में से रोक कर रखने के लिए अविद्या का

बन्धन बहुत ही प्रबल है। जब इस संसार की रचना के बारे में विचार करते हैं तो गुरबाणी के प्रकाश में पता चलता है कि यहाँ केवल एक ही चेतन तत्व है। उसे अल्लाह, राम, God और अनेक नामों से सम्बोधन करते हैं। इस एक ने सगुण रूप धारण किया तथा ऐकंकार कहलाया, ऐकंकार से शब्द धुनि हुई जिससे सारे आकार प्रकट हो गए तथा एक अनेकता में प्रकट हो गया। विद्वानों का ऐसा मत है कि संसार में दो तत्व हैं एक को चेतन तत्व कहा जाता है, दूसरा जड़ तत्व है। जड़ तत्व के प्रथम दो भेद हैं एक को प्रकृति, एक को विकृति कहा जाता है। इनमें से आठ प्रकृतियाँ हैं, प्रधान प्रकृति को मूल प्रकृति या महातत्व कहते हैं। महातत्व चित्त को कहा जाता है। उसके बाद हउमै की उपज हुई जिससे पाँच तन मात्राएं - शबद, स्पर्श, रूप, रस गन्ध ये आठ मूल प्रकृतियाँ हैं। इनसे पाँच स्थूल भूत - आकाश, अग्नि, वायु जल, पृथ्वी, ग्यारह इन्द्रियाँ (पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेद्रियाँ) कर्ण, त्वचा, नेत्र, रसना, नाक, जिभ्या, हाथ, पैर उपस्थ इन्द्रिय गुदा तथा मन ये 16 विकृतियाँ कहलाती हैं। गुरमत के अनुसार इस प्रकार है कि माया की उत्पत्ति का कारण औंकार स्वंय ही है। ऐकंकार जी ने अपनी माया स्वंय ही प्रसार की है और स्वंय ही दृष्टा है -

अपनी माइआ आपि पसारी आपहि देखन हारा।
नाना रूपु धरे बहुरंगी सभ ते रहै निआरा॥ पृष्ठ - 537

इसलिये जड़ तत्व स्वतन्त्र तत्व नहीं है केवल एक वाहिगुरू जी ही प्रकृति और जीव तत्व है, पूर्ण अद्वैत है। चेतन तत्व जिसे हम परमेश्वर कहते हैं, वह स्वंय ही ज्ञान है, सर्व कला समरथ है आप ही मूल प्रकृति है, स्वंय ही प्रधान है। प्रधान स्वंय ही होने के नाते स्वंय ही प्रभु का चमत्कार है जिसे मूल प्रकृति कहते हैं तथा 8 प्रकृतियों, 16 विकृत्तियाँ यह सभी चेतन तत्व में से ही उत्पन्न हुई है। प्रकृति किसे कहा जाता है यह समझने वाली बात है। जिससे आगे कोई नया तत्व पैदा हो उसे प्रकृति कहते हैं अर्थात जो किसी नये तत्व का उपादान, जिससे कोई नया तत्व पैदा हो उसे प्रकृति कहते हैं। जो किसी नये तत्व का उपादान कारण न हो और जिससे आगे कोई नया तत्व पैदा न हो उसे विकृत्ति विकार अर्थात कार्य भी कहते हैं। जड़ तत्व के 24 विभागों में से आठ प्रकृतियाँ बताई गई हैं और उनमें से प्रधान अर्थात मूल प्रकृति ही एक केवल प्रकृति है, शेष सात प्रकृति और विकृति दोनों ही हैं अर्थात महातत्व (चित्त) प्रधान (मूल प्रकृति) की विकृति है। हउमै महातत्व की विकृति तथा पाँच तनमात्राएं तथा ग्यारह इन्द्रियों की प्रकृति है। पाँच तनमात्राएं हउमै की

विकृति तथा पाँच स्थूल भूतों की प्रकृति है। ग्यारह इन्द्रियाँ हउमै की विकृत्तियाँ हैं। इनके आगे कोई नया तत्व पैदा नहीं होता। इसलिये यह स्वंय भी किसी की प्रकृति नहीं। यह केवल विकृतियाँ हैं। इसी प्रकार पाँच स्थूल भूत तनमात्राओं की विकृतियाँ हैं। इनके बाद कोई नया तत्व पैदा नहीं होता। इसलिये यह आप किसी की भी प्रकृतियाँ नहीं हैं। यह केवल विकृतियाँ हैं। यह 24 भेद वास्तव में एक जड़ तत्व 'प्रधान' अर्थात मूल प्रकृति के ही हैं जो सक्रिय तथा चेतना रहित हैं।

गुरमत के अनुसार यह सारी प्रकृतियाँ तथा विकृत्तियाँ हउमै तत्व में से ही उत्पन्न होती हैं। इसलिये प्रकृत्ति कोई स्वतन्त्र तत्व नहीं है। यह सब हउमै का परिवार है। हउमै तत्व १ओंकार में से ही हुक्म अनुसार खेल रचने के लिये पैदा किया गया है। जैसे कि फ़रमान है –

जिनि रचि रचिआ पुरखि बिधातै नाले हऊमै पाई।
जनम मरणु उसही कउ है रे ओहा आवै जाई॥ पृष्ठ - 999

अन्य मतों का विचार है कि 24 प्रकृतियाँ तथा विकृतियाँ चेतन से अलग रूप में हैं। चेतन के साथ इनका कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि ये चेतन में से उत्पन्न नहीं हुई पर गुरमत अनुसार सभी कुछ ''नामे ही ते होइआ'' अर्थात नाम से उत्पन्न हुआ है। १औंकार ने स्वंय ही अपना प्रसार किया है अपने आप ही जड़ तत्व प्रकृति की सिरजना की है, स्वंय ही उसने अविद्या तत्व उत्पन्न किया है जिसके कारण अपने आप को प्रभु से अलग समझ कर जीव, हउमै ग्रसित क्रिया करके फल भोगने के लिए अनेक जन्म जन्मातरों में कलाबाजियाँ लगा रहा है। मोटे तौर पर अविद्या उसे कहा जाता है वास्तव में वस्तु कोई और हो पर निश्चपूर्वक दृष्टि में कुछ और हो, जैसे गर्मी के महीने में रेतीले खुले मैदान में कुछ व्यक्ति पैदल सफर कर रहे हों, उन्हें प्यास लगी हो तो वे पानी ढूँढने का प्रयास करते हैं। सामने दो चार वृक्ष नज़र आते हैं उसके साथ ही कोई पानी का स्त्रोत बहता हुआ नज़र आता है वृक्षों की परछाईं पानी में पड़ी हुई प्रत्यक्ष दिखाई देती है। मनुष्य भ्रमित हो जाता है जब वहाँ पर पहुँचता है वहाँ पानी नहीं होता पर और आगे पानी की झलक दिखाई देती है। जब वहाँ पहुँचते हैं वहाँ भी पानी दिखाई नहीं देता। इसका अर्थ है कि यह खुला मैदान था पानी की एक बूँद भी नहीं थी पर पानी से भरा हुआ दरिया नज़र आता है। सो मनुष्य धोखा खा जाता है। इसी प्रकार जब हिरन को भ्रम होता है तो वह पानी सामने दिखाई देता होने के कारण पीने के लिये भागता है पर पानी प्राप्त न होने के कारण बेहोश होकर गिर जाता है इसे मृग तृष्णा का जल भी कहा जाता है। इसी प्रकार इस सारी रचना

में निरंकार आप ही हैं पर भ्रान्ति होने के कारण यह हमें संसार के रूप में नज़र आ रहा है तथा अलग अलग प्रतीत होता है, कोई अच्छा दिखाई देता है, कोई बुरा दिखाई देता है, कोई अमीर, कोई गरीब, कोई विद्वान पुरूष दिखाई देता है। कोई बिल्कुल अनपढ़ नज़र आता है, कोई अपना है कोई बेगाना है। यह जो भ्रम मन में पैदा हुआ, मूल को प्रतिबिम्ब (परछाई) जानने की जो क्रिया है और जो हमारे ऊपर इस क्रिया का प्रभाव है उसे अविद्या कहा जाता है। जिस प्रकार पानी से भरे हुए अनेक बर्तनों में रात को अलग अलग चन्द्रमा हर बर्तन में नज़र आता है और ऐसा प्रतीत होता है कि अनेक चन्द्रमा हैं और जब निर्णय किया जाता है तब निश्चय हो जाता है कि यह तो एक ही चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब का बिम्ब था। यह जो क्रिया है इसे अविद्या कहा जाता है यानि की वाहिगुरू जी की जगह अनेक प्रकार की सृष्टि नज़र आती है।

अगम अगोचर के मार्ग पर आज तक जो विचार हुआ है वह यह है कि इस मार्ग पर चलने में जो रुकावटें हैं, उनसे कैसे निपटा जाए? इन बाधाओं का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है –

दुखु दरवाजा रोहु रखवाला आसा अंदेसा दुइ पट जड़े।

पृष्ठ - 877

दुख दरवाजे तथा रोह (क्रोध) रक्षकों की बहुत ही विस्तार पूर्वक सभी पक्षों पर विचार की गई है और जो बन्धन आते हैं जैसे कि अज्ञान, कर्म-धर्म, पाँच चोर इन पर विस्तारपूर्वक काफी विचार हो चुकी है, सभी ग्रन्थों में आता है कि जब हम आत्म मार्ग पर चलते हैं इस सूक्ष्म मार्ग पर एक ऐसा स्थान आता है जहाँ अति कठोर द्वार बन्द किये गये हैं, जो किसी भी विधि से नहीं खुलते। जब तक तुम किसी समरथ गुरू से चाबी लेकर ये ताले न खोल लो तब तक बज्र कपाट नहीं खुला करते। पुस्तकें पढ़ कर सतपुरुषों के वचन पढ़कर हम समझते हैं कि हम अपनी मंज़िल पर पहुँच चुके हैं पर यह एक विचार ही हुआ करता है क्योंकि मनुष्य में कोई भी परिवर्तन नहीं आया करता जो मनुष्य का स्वभाव पहले था वह उसी प्रकार ही बना रहता है। मृत्यु से उसे डर लगता है, सम्बधियों के बिछौड़े से उसे डर लगता है। तीनों प्रकार के दुखों का प्रभाव उसके मन पर छाया रहता है।

1. आध्यात्मिक दुख – शरीर और मन का क्लेश।

2. आधिभौतिक दुख – जो शत्रु तथा पशु पक्षियों से हो।

3. आधिदैविक दुख – जो प्राकृतिक शक्तियों से पैदा होता है। जैसे आँधी,

तूफान का आना बिजली का गिरना, गर्मी, सर्दी, बाढ़ आदि का प्रकोप।

ये तब तक दूर नहीं होते, जब तक हम प्रत्यक्ष ज्ञान अनुभव करके तत्व को प्राप्त नहीं कर लेते। बुद्धि ज्ञान के सारे मत, सारी दलीलें बज्र कपाटों को पार नहीं कर सकती। बज्र कपाटों का ज़िक्र गुरबाणी में बार बार आता है जैसे कि –

अन्दरि कोट छजे हटनाले। आपे लेवै वसतु समाले।
बजर कपाट जड़े जड़ि जाणै गुर सबदी खोलाइदा॥ पृष्ठ – 1033

इसी प्रकार एक और स्थान पर भी आता है –

बजर कपाट न खुलनी गुर सबदि खुलीजै।
अनहद वाजे धुनि वजदे गुर सबदि सुणीजै। पृष्ठ – 954

गुरू के शबद के बगैर बज्र कपाट नहीं खुला करते। गुरबाणी में और भी स्पष्ट करके बताया गया है –

जिस का ग्रिहु तिनि दीआ ताला कुंजी गुर सउपाई।
अनिक उपाव करे नही पावै बिनु सतिगुर सरणाई॥ पृष्ठ – 205

क्योंकि चाबी का मालिक सतगुरू हुआ करता है, गुरबाणी में पूरी तरह से स्पष्ट बताया गया है –

बिनु सबदै अंतरि आनेरा। न वसतु लहै न चूकै फेरा।
सतिगुर हथि कुंजी होरतु दरु खुल्है नाही
गुरु पूरै भागि मिलावणिआ॥ पृष्ठ – 124

इस शबद के अन्दर गुरू महाराज जी 'आत्म मार्ग' पर पहरा देने वालों का ज़िक्र करते हुए फ़रमान करते हैं कि वहाँ एक Gate (बड़ा द्वार) है जिसका नाम दुख द्वार है और उसकी रक्षा महा धुरन्धर, महा विकराल रूप धारण करके क्रोध कर रहा है, अब पहले जब तक हमारी दुख के साथ समता नहीं होती, हम दुख को सुख के समान नहीं मानते, यदि दुख और सुख की समता की भावना पैदा हो जाए तब जाकर कुछ अन्तर पड़ता है। गुरू महाराज जी तो फ़रमान करते हैं कि मनुष्य की मानसिक त्रुटियाँ जो परमेश्वर से उसे विमुख करती रहती है उनकी जो केवल मात्र एक ही दवाई है, वह दुख के रूप में है। परमेश्वर से दूर ले जाने वाली जो वस्तु है, वह सुख है, सुख परमेश्वर को भुला दिया करता है, दुख में प्रभु सच्चे दिल से याद आता है, उसकी हस्ती पर पूरा विश्वास होता है, उस समय हम प्रभु के पास हाथ जोड़कर तरले करते हैं। हे प्रभु! मेरा दुख दूर कर। चाहे सुख प्राप्त करने के बाद हम फिर परमेश्वर से विमुख हो जाएं, इसलिए हम फिर दुखों में ग्रस्त हो जाते हैं –

दुखु दारू सुखु रोगु भइआ जा सुखु तामि न होई। पृष्ठ – 469

सो जब हम दुख का आदर करते हैं उस समय हम दुख को बुरा नहीं कहते क्योंकि यह भी वाहिगुरू द्वारा दी गई दात (वरदान) ही है जो दुख दे रहा है उसे पता है कि मैं इस जीव का कौन सा इलाज कर रहा हूँ? चाहे जीव घबरा रहा है पर गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं –

केतिआ दूख भूख सद मार। एहि भि दाति तेरी दातार॥ पृष्ठ – 5

दुख जीव को सूचना देता है कि तू बहुत गलत रास्ते पर चल रहा है। संसार का सृष्टि कर्ता प्रभु जो अति प्यारा है उसे भूल रहा है क्योंकि दुख तभी होता है जब हमारा सम्बन्ध वाहिगुरू जी से टूट जाता है जैसा कि फ़रमान है –

दुखु तदे जा विसरि जावै। भूख विआपै बहु बिधि धावै।
पृष्ठ – 98

जब दुखों को जीव प्यार करता है दुख अपने आप ही हट जाया करते हैं जैसा कि फ़रमान है –

सगले दूख अंम्रितु करि पीवै बाहुड़ि दूखु न पाइदा॥ पृष्ठ –1034

इस प्रकार दुख से मित्रता करके हमारे कदम आगे बढ़ते हैं। जो आत्म मार्ग का बड़ा द्वार है वहाँ का रक्षक क्रोध है। हम क्रोध के साथ सरल व्यवहार शान्ति द्वारा करते हैं। जब शान्ति प्रकट होती है उस समय क्रोध भाग जाया करता है फिर यह नहीं ठहरा करता। इस प्रकार हम आत्म मार्ग के द्वार पर पैर रख लेते हैं तथा आगे बहुत सख़्त बज्र कपाट आशा तथा अन्देशों के हैं, आशाएं अनेक प्रकार की होती हैं। एक ही आशा जीव को नरकों में, अनेक यौनियों में चक्कर कटवाने की समर्थ रखती है। वासनाएं पूरी करने के लिए हम ठग, छल, हत्या, धोखा, फरेब करने से भी संकोच नहीं करते। आशायें पूरी करने के लिए जीव इतना नीचे गिर जाता है कि वह उच्च पद को प्राप्त करके भी नाजायज़ विधियों से धन एकत्र करता है। बड़े बड़े वज़ीर (मन्त्री) बहुत बड़े बड़े कमीशन लेते हैं। चोरी की जाती हैं, मिलावट करके दुनियाँ का स्वास्थ्य खराब किया जाता है, नकली चीज़ें तैयार करके धोखा दिया जाता है। जायज नाजायज़ तरीकों से धन जोड़ने की लालसा लगी ही रहती है। सो इस प्रकार वासनाओं के घातक प्रभाव में आया हुआ जीव परमेश्वर की तरफ एक कदम भी नहीं उठा सकता क्योंकि मन हर समय विचलित (बेचैन) करता रहता है। जो वासना इसके हृदय में प्रधान होती है उसके अनुकूल ही सोचा करता है। उसकी सुरत वृत्ति उसी प्रकार ही हो जाया

करती है। गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं –

चिंतत ही दीसै सभु कोइ। चेतहि एकु तही सुखु होइ।

पृष्ठ - 932

सबसे प्रबल वासना धन की हुआ करती है तथा धन इकट्ठा करने के लिए मनुष्य अपना दीन-ईमान भी गवाँ देता है तथा ऐसे निकृष्ट कर्म करता है जिनका लेखा देना अति कठिन हो जाता है, गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं –

बहु परपंच करि परधनु लिआवै।
सुत दारा पहि आनि लुटावै॥
मन मेरे भूले कपटु न कीजै।
अंति निबेरा तेरे जीअ पहि लीजै॥ रहाउ॥
छिनु छिनु तनु छीजै जरा जनावै।
तब तेरी ओक कोई पानीओ न पावै।
कहतु कबीरु कोई नही तेरा।
हिरदै रामु की न जपहि सवेरा॥ ***पृष्ठ - 656***

इतिहास में बड़े बड़े महापुरुषों के जीवन की घटनाएं बहुत सारी लोक कथाओं के रूप में प्रचलित हैं। जैसे कि सिकन्दर-ए-आजम ने भारत पर हमला किया। वह इससे पूर्व मध्य एशिया, रूस आदि को जीतने के बाद भारत में आया। उसके पास दो लाख फौज थी, किले जीतने के लिए बहुत ही अजीब किस्म की सीढ़ियाँ थीं जिन पर शत्रु का वार नहीं हो सकता था, वह सभी राजाओं पर विजय प्राप्त करता हुआ भारत पहुँचा। अन्त में उसका मुकाबला छोटे से राजा पोरस के साथ हुआ। इतनी दृढ़ता के साथ राजा पोरस ने युद्ध किया, उसके पास केवल 30,000 फौजी थे और सिकन्दर के पास दो लाख फौजी थे, तीन महीने तक अड़ा रहा। तीन महीने इसे दरिया पार नहीं करने दिया। फिर यह जम्मू की तरफ से होता हुआ उस नदी (दरिया) को पार करके आया और राजा पोरस के साथ युद्ध किया। उस समय उसके मन में बहुत अभिमान था पर पोरस के साथ युद्ध करके उसे पता चला कि राजा पोरस की 30000 फौज ने उसकी नाक में दम कर दिया। इसके बाद ब्यास दरिया पार करके जो क्षेत्र है उस पर और उसके आगे तो पँचायती राज शुरू हो जाता है। उनकी फौजों के साथ मुकाबला करना बहुत कठिन दिखाई दिया। इसके आगे राजा नन्द का विशाल राज्य था जिसके पास ताकतवर फौजें थीं। इन सारी बातों का अनुमान लगाकर सिकन्दर की फौज ने जवाब दे दिया कि महाराज! पूरे बारह वर्षों से आप लड़ाईयाँ ही लड़ते आ रहे हो। हमने यह भली भान्ति निर्णय कर

लिया है कि भारतीय सूरमाओं के मुकाबले में हमसे युद्ध करना कोई आसान काम नहीं है। इसलिये हम और आगे नहीं बढ़ सकते। आपने भारत वर्ष की दो छोटी रियासतें जीत ली हैं, आखरी रियासत राजा पोरस की थी। हमें घर से निकले हुए 12 वर्ष बीत चुके हैं। हम इस बार अपने देश को वापिस जाना चाहते हैं। यहाँ तक कि सिकन्दर के बड़े बड़े जरनैलों ने भी इस निर्णय की प्रशंसा की। उन्होंने भी कहा कि महाराज! इतना लम्बा चौड़ा विस्तृत क्षेत्र हमने जीत लिया है, अब उसका प्रबन्ध हमें करना चाहिए। इसलिए हमें अपनी राजधानी में वापिस जाने की आज्ञा दें। सारी फौजों की बात पर विचार करके सिकन्दर ने भारत को जीतने की मुहिम को बीच में ही छोड़कर वापिस लौटने का इरादा कर लिया। इस बार वह समुद्र के रास्ते से जाना चाहता था। उसने अपनी नावें रावी तथा ब्यास के दरिया में से ले जाने का निर्णय किया। पंजाब के छोटे से क्षेत्र का प्रबन्ध करने के लिए जरनैल सेल्यूकस को छोड़ दिया जिसे बाद में चाण्क्य ने चन्द्र गुप्त की सहायता से इस देश से बाहर निकाल दिया। बाबल कुन्टी के मुकाम पर जाकर सिकन्दर ने स्नान किया जिससे गर्म सर्द होने के कारण बुखार ने जकड़ लिया। हकीम सिकन्दर का इलाज कर रहे हैं पर बुखार इतना चढ़ गया और बिगड़ गया जिसका कोई इलाज न हो सका। पर उसने अपने देश वापिस पहुँचने की मुहिम जारी रखी। एक दिन उसने ज्योतिषियों को बुलाया, उनसे पूछा कि मैंने यह महसूस किया है कि तुम्हारा ज्योतिष बहुत प्रसिद्ध है। अब मुझे बताओ कि मेरी मृत्यु कब होगी? ज्योतिषियों ने पूरा हिसाब-किताब लगाया, लगन देखी, ग्रहों की चाल देखी, अपने हिसाब द्वारा जवाब ढूँढ़ने का प्रयास किया। उन्होंने एक दूसरे के साथ मेल मिलाप करके देखा, सारे हैरान हो गये कि जो प्रश्न का उत्तर हमारे पास निकल रहा है वह तो समझना बहुत कठिन है। सिकन्दर ने ज्योतिषियों को बुलाकर अपने प्रश्न का जवाब पूछा तो सभी ने कहा कि महाराज! उत्तर तो सभी को मिल गया है क्षमा करना आज पहला दिन है कि हमें प्रश्न का उत्तर समझ में नहीं आया। हम कैसे बताएं कि आपका अन्तिम समय कहाँ और कब होगा? सिकन्दर बोला, मुझे बताओ कि कैसे क्या होगा? उस समय बड़े ज्योतिषि ने जो सभी ने एक मत से निर्णय लिया था, उसके अनुसार कहा कि जब आपका अन्तिम समय आयेगा उस समय आसमान सोने का तथा धरती लोहे की होगी। ज्योतिष द्वारा जो हिसाब किताब में आया है वह आपके सामने पेश कर दिया है। इसका अर्थ हमारी समझ में नहीं आ रहा। सिकन्दर ने March

(प्रस्थान) जारी रखा। आज चलते चलते सिकन्दर मूर्च्छत होकर घोड़े से गिर पड़ा। अंग रक्षकों ने उसे सम्भाला, कहर की धूप पड़ रही थी। धरती भी गर्म लोहे की तरह तप रही थी आस पास कोई वृक्ष नहीं था और न ही कोई टैन्ट आस पास था। उस समय सिकन्दर की कवच वाली वर्दी उतार कर उन्होंने इसके नीचे बिछा दी। उसके चेहरे पर उसकी सुनहरी ढाल से छांया कर दी। वैद्यों ने उसे दवाई दी, मालिश की तो सिकन्दर की आँख खुल गई, उसने पूछा कि मैं कहाँ हूँ और मैं धरती पर क्यों पड़ा हूँ? जब उसने अपनी नीचे बिछी हुई कवच को स्पर्श किया तो पता चला कि मेरे लिए धरती लोहे की हो गई है और जब ऊपर लटकी हुई सोने जैसी ढाल के साथ टकरा कर सूर्य की किरणें सुनहरी रंग की दिखाई दे रही थीं तो उसने भ्रम में डाल दिया कि आसमान सुनहरी रंग का हो गया। ये दोनों बातें ज्योतिषियों की समझ में नहीं आई थीं। अब यह गुंझलदार अर्थ पूर्णतया स्पष्ट हो गया। सिकन्दर को पता चल गया कि मेरा अन्तिम समय आ गया है। उस समय उसने बड़े वैद्य जी को कहा कि वैद्य जी! मुझे अपनी माँ से बिछुड़े हुए लगभग 12 वर्ष हो गये हैं। मैंने उसे चलते समय कहा था कि मुहिमों से लौट कर मैं तेरे साथ सारी घटनाओं का ज़िक्र करूँगा और तू अपने बहादुर पुत्र को देखकर खुश होगी। तू अपने आपको धन्य समझेगी क्योकि कई सन्तों ने ऐसा कहा है –

जननी जने तां भगत जन कै दाता कै सूरु।
नही तां जननी बांझ रहि काहे गवावै नूर॥ (तुलसी दास जी)

आज उसे सारे सपनों पर पानी फिरता हुआ नज़र आया। बड़े वैद्य के पास लेलड़ी (पैसों की थैली) निकाली और कहा कि, "मैं तुझे आधा राज्य दे दूंगा, मुझे मकदूनियां तक पहुँचा दो।" उसने कहा कि वैद्यों के पास तो ऐसी दवाईयाँ होती हैं जिनके द्वारा मुर्दा मनुष्य भी ज़िंदा हो जाता है। आधा राज्य यदि नहीं लेना तो पूरा राज्य देने को तैयार हूँ। तो उस वैद्य जी ने सारी बात पर विचार किया और शरीर की हालत को देखा कि श्वांस मद्धम पड़ गई है, श्वांसों की गाँठ खुल चुकी है, अब इसने बहुत अधिक समय जीवित नहीं रहना। उस समय बड़े वैद्य जी ने रोते हुए सिकन्दर को शान्ति के प्रवचन करते हुए कहा कि जो संसार में आया है उसने संसार से अवश्य जाना है। अब तो आपका समय निकट आ चुका है यदि तुम तीन लोकों का राज्य भी हमें दे दो, हमारे पास बिल्कुल भी ताकत नहीं है कि हम एक श्वांस भी तुम्हें अधिक दिलवा सकें। उस समय सिकन्दर की समझ में आया कि मेरा जीता हुआ राज्य एक श्वांस

के मुकाबले में कुछ भी नहीं है। उसने कहा कि वैद्य जी जो बात आपने मुझे बताई है, वह आप संसार में भी फैला दो कि सिकन्दर ने जो मूर्खता दिखाई थी, वैसी कोई भी न करे क्योंकि संसार में कोई भी वस्तु साथ नहीं जाती, यदि कुछ साथ जाता है तो पाप और पुण्य की गठड़ियाँ साथ जाती हैं। उस समय सिकन्दर खूब रोया। उसकी सारी जिन्दगी इसी वासना के अधीन घूमती रही थी कि मैं इतना बड़ा राजा हो जाऊँ कि विश्व में एक भी स्वतन्त्र राजा न रहे।

यह वासना का जाल बहुत ही प्रबल है। इसी प्रकार धन वासना बहुत खतरनाक हुआ करती है जो जीव को अपने भ्रमों में भटकाती हुई नरकों का वासी बना देती है।

एक राजा हुआ है जो अफगानिस्तान में राज्य करता था उसका नाम महमूद था, उसने भारत वर्ष पर 16 बार हमला किया और इस देश का सोना, चाँदी, हीरे ऊँटों तथा गड्डों पर लाद कर गज़नी ले गया। वहाँ पर बहुत बड़े बड़े ढेर हीरों के लगा दिए. अकेले सोमनाथ के मन्दिर में से ही हज़ारों लोगों की हत्या करके जो हीरे लूटे, उनका मूल्य उस समय के सिक्कों के हिसाब से चार अरब रूपये बनता था। आजकल के समय के तो खरबों रूपये बनते थे। गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं –

रहणु न पावहि सुरि नर देवा।
ऊठि सिधारे करि मुनि जन सेवा॥
जीवत पेखे जिन्ही हरि हरि धिआइआ।
साध संगि तिन्ही दरसनु पाइआ॥ रहाउ॥
बादिसाह साह वापारी मरना।
जो दीसै सो कालहि खरना॥
कूड़ै मोहि लपटि लपटाना।
छोडि चलिआ ता फिरि पछुताना॥
क्रिपानिधान नानक कउ करहु दाति।
नामु तेरा जपी दिनु राति॥ *पृष्ठ - 740*

वाहिगुरू जी की नेतानुसार महमूद को अधरंग हो गया। उसका शरीर काम करने लायक न रहा। सारी इन्द्रियाँ शिथिल पड़ गई थीं तथा Brain (मस्तिष्क) का नियन्त्रण कमज़ोर पड़ गया था, कोई भी इन्द्रिय उसकी कार्य नहीं करती थी। बड़ी कठिनाई के साथ बड़बड़ा पाता था। उसकी बात को समझने के लिये बहुत योग्य व्यक्ति उसके चारों ओर खड़े रहते थे। उसने एक बात कही कि अब मैंने इस संसार से विदा हो जाना है। मैं यह देखना चाहता हूँ कि मैंने कितना धन-दौलत इकट्ठा किया है। खुले मैदान में मेरी धन-दौलत की प्रदर्शनी लगा दो और पूर्ण विवरण लिख दो

कि कौन कौन सी लड़ाई में मैंने कितना धन लूटा। मुझे Wheel chair पर बिठा कर सभी धन के ढेरों के पास ले जाओ कर्मचारियों ने ऐसा ही किया। महमूद उस माया के ढेरों में से गुज़र रहा था। उसके द्वारा किये गये सभी कत्लेआम, गुनाह, विधवा की गई स्त्रियाँ, पुत्र विहीन की गई माताएं, आसुओं की झड़ी लगाती हुई रुदन करती हुई इसे दिखाई देती थीं। उन बातों ने इसे सोचने पर मज़बूर कर दिया और कहने लगा कि अफसोस! मैंने कितने पाप किये हैं इस धन के लिये। मुझे ऐसी बिमारी लग गई जिसका कोई इलाज नहीं हो सकता। मेरे तो अब गिने चुने दिन रह गये। दुनियाँ को तंग कर करके मैंने इतना धन इकट्ठा किया। मैं कितना अज्ञानी रहा कि माया साथ नहीं जाती, बड़े बड़े गुनाह (पाप) साथ जाते हैं। हाँ, कयामत के दिन अजराइल मुझे घाणी (कोल्हू) में दुख देगा, ये सभी फरयादी मुझ से जवाब मागेंगे। मैं क्या जवाब दूँगा? मैंने तो अपना जन्म ही वृथा गवां लिया। मुझे क्यों न होश आई? मैं ऐसे काम करता जिससे दरगाह में मेरा मस्तक उज्जवल होता। दहाड़ें मार मार कर रो रहा है, पश्चाताप कर रहा है। उसने अपने दरबारियों को कहा कि इससे पहले कि मेरी जुबान बन्द हो आप मेरा पन्धनामा (अन्तिम इच्छा) लिखो। जिसमें उसने लिखवाया कि इस संसार में कोई नहीं रहता, इस संसार में सभी के साथ भ्रातृभाव रखने से मनुष्य सुखी हो जाता है परन्तु छीना झपटी, दूसरों के धर्म मन्दिरों को गिरा कर मनुष्य को कोई सुख प्राप्त नहीं होता, बल्कि मेरी तरह बिमारी लग जाती है। ऐ दुनियाँ वालो! मेरी जिन्दगी की कमाई अरबों-खरबों रूपये पड़ी है, मुझे पता है कि मेरी सन्तान बहुत कमज़ोर है उनसे यह सारी दौलत दुश्मनों ने लूट लेनी है। गज़नी को आग लगाकर राख कर देना है, यह दुख भी मैंने ही पैदा किया है। दौलत के इतने बड़े अम्बार, शक्तिशाली सुरक्षा के बिना कैसे रखे जा सकते हैं। मैं सोचता था कि दुनियाँ मर जाती है, पर मैं नहीं मरूँगा, मैं इतना ताकतवर था, मेरा शरीर इतना हृष्ट-पुष्ट था कि मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि मुझे बिमारी लग जाएगी। मैं सोचा करता था कि दिल का दौरा कमज़ोर व्यक्तियों को पड़ा करता है। ऐ खुदा! मैं किसके पास पुकार करूँ, तेरा तो नियम है कि किये गये कर्मों का हिसाब तो दोज़ख में करना पड़ता है, पता नहीं मेरा क्या हाल होगा? मैंने थोड़े से जीवन के लिये कितने पाप किए, कितनी स्त्रियों को मैंने बन्दी बना कर बाजारों में टके टके में बिकवाया। उन अबलाओं की बद-दुआएं मेरे रास्ते में अन्धकार पैदा कर रही है। मैंने सुना है कि अज़राईल कोल्हू में पीस देता है। गुरू महाराज जी भी इसकी अगवाई करते हुए फ़रमान करते हैं

–

लै फाहे राती तुरहि प्रभु जाणै प्राणी।
तकहि नारि पराईआ लुकि अंदरि ठाणी।
संन्ही देन्हि विखंम थाइ मिठा मदु माणी।
करमी आपो आपणी आपे पछुताणी।
अजराईलु फरेसता तिल पीड़े घाणी॥ *पृष्ठ - 315*

महमूद वापिस आ गया। उसने एक हिदायत दी कि जब मेरा जनाज़ा निकल रहा हो उस समय मेरे पीछे ढोल बजता जाए और मेरे हाथ पैर कफन में से बाहर निकाल कर ऐलान किया जाए कि ऐ दुनियाँ के लोगों! अरबो खरबों की सम्पत्ति का मालिक आज इस संसार से खाली हाथ अपने किये गये गुनाहों के बोझ से लदा हुआ चीखें मारता जा रहा है। देखो! कहीं और कोई ऐसी गलती मत कर बैठना। यह माया किसी के साथ नहीं जाती। गुरबाणी में भी फ़रमान आता है –

कबीर इहु तनु जाइगा सकहु त लेहु बहोरि।
नांगे पावहु ते गए जिन के लाख करोरि॥ *पृष्ठ - 1365*

धन वासना का एक दुष्ट साथी जो बड़ो बड़ों की बुद्धि भ्रष्ट करने की समर्थ रखता है वह लभ कहलाता है। लभ पदार्थो को आवश्यकता से अधिक इकट्ठा करके रखने वाली वृत्ति को कहा जाता है। इसमें अधिकतर प्राणी ग्रस्त हैं और यह लभ की शक्ति मानसिक वृत्ति को अपने अन्दर ही समा लेती है और इसे साधारण भाषा में निन्यानवें का फेर भी कहा जाता है। इस बात को समझने के लिए एक लोक कथा है। एक सुन्दर महल में अमीर जोड़ी निवास किया करती थी, उस आदमी का शरीर बहुत सुन्दर था। देखने वाला मोहित हो जाता था। उससे भी अधिक उसकी पत्नी में कशिश (आर्कषण) था। पर उनके चमकते हुए नेत्र आकर्षण की बजाय दीनता के भाव प्रकट करते थे। उनके महलों में खिलखिलाती हुई हंसी कभी भी नहीं सुनी गई थी। यदि कुछ सुनता था तो कभी कभी एक लम्बी उसांस। एक दिन दोनों ने विचार किया कि देखो! परमात्मा ने हमें कितनी दातें (वरदान) दिए हैं, सुन्दर एंव सुशील सन्तान है, स्वास्थ्य बहुत अच्छा है, धन की कोई कमी है ही नहीं पर फिर भी क्या है कि हमारे अन्दर कभी प्रसन्नता नहीं आती। लम्बी-लम्बी उसांसे निकलती हैं ठण्डी आहें निकलती हैं साथ ही यह बात भी कहते कि हमारी दीवार के साथ एक झौपड़ी डाल कर एक मोची तथा उसकी पत्नी रहती है, जिनकी खिलखिलाती हुई हंसी की गूंज बहुत दूर तक सुनी जाती है और सुनने वाले को भी उसकी मानसिक पीड़ा भूल जाती है। उनके पास खाने पीने के लिए बहुत सारे पदार्थ जमा नहीं हैं,

रोज़ के रोज़ जूतियाँ गाँठते हैं और खा पीकर आनन्द लूटते हैं, पहनने के लिए, शरीर ढकने के लिए वस्त्र हैं, रात को सोने के लिए झौपड़ी है, फिर प्रसन्नता का क्या कारण है? इनके जीवन में इतनी खुशियाँ क्यों हैं? उसके पति ने कहा कि हमें एक रोग लगा हुआ है जिसे लभ कहा जाता है। अपने आप खाने पीने के लिए इतना अधिक है कि सैकड़ों लोगों को खिलाने के बाद भी कमी नहीं आ सकती, कपड़े इतने अधिक हैं कि वर्षो तक कई कपड़ों की पहनने की बारी ही नहीं आ सकती, धन इतना अधिक है कि समाप्त ही नहीं होता पर अपने अन्दर एक लालसा लगी हुई है कि धन एक करोड़ से बढ़कर 20 करोड़, पचास करोड़, एक खरब हो जाए, पदार्थों को बिना आवश्यकता के इकट्ठे किये जाना 'लभ' कहलाता है और, और अधिक मांगते रहना तृष्णा कहलाती है। तृष्णा की आग मनुष्य के अन्दर प्रसन्नता देने वाले पत्तों के कमल को जला देती है। जो अमृत मनुष्य के अन्दर से रिसता है वह बेकार जाता है क्योंकि हृदय कमल वासना के वश हुआ उलटा हो चुका है, इसमें अमृत भरा नहीं जा सकता। उलटे पड़े बर्तन को चाहे तुम पानी के नलके के नीचे सैकड़ों वर्षों तक रखे रखो, एक बूंद भी अन्दर नहीं जाती। यह पानी के नलके का दोष नहीं, बर्तन का दोष है क्योंकि वह उलटा बर्तन है, उलटे बर्तन में अमृत कैसे समा सकता है? उलटे अमृत के मुरझाए कमल में अमृत की स्वांति बूंद कैसे समाये? यह लभ तथा तृष्णा का प्राकृतिक स्वभाव है।

उसने कहा कि यह जो मोची है वह निन्यानवें के फेर में नहीं पड़ा। इसके पास थोड़ा बहुत पैसा होगा उसकी ओर ध्यान ही नहीं देता। गुज़ारा होता रहता है क्योंकि मनुष्य को तीन चीज़ों की जरूरत होती है जिसे रोटी, कपड़ा, मकान कहा जाता है। अपनी पत्नी को कहने लगा कि यदि तू देखना चाहती है तो तुझे थोड़े से दिनों में दिखा दूँगा कि इस मोची की हालत हमारे जैसी हो जाएगी और इनकी खुशियाँ खत्म हो जायेगीं। उसने एक दिन चुपके से उसकी गद्दी पर एक रूपया रख दिया। उस मोची के पास एक आना और दुअन्नी (प्राचीन समय के सिक्के) इकट्ठे करते करते 98 रूपये हो चुके थे, इस एक रूपये के मिलने से उसके पास 99 रूपये हो गये। अब उसे यह धुन सवार हो गई कि मेरे पास 100 रूपये होने चाहिए। इसी दौरान उसके एक-दो बच्चे हो गये उसका खर्च बढ़ गया, उसके लाख यत्न करने के बावजूद भी एक पैसा भी नहीं बचा पाता था पर इसके हृदय में यह बात समा गई थी कि मैंने एक रूपया

और इकट्ठा करके 100 रूपये पूरे करने हैं। समय बीतने के साथ साथ अब उस झौपड़ी में प्रसन्नता और खुशी की गूंज सुनाई नहीं देती दोनों चुप हैं, दिल पर लभ ने कब्जा कर लिया और धुन लग गई कि हमारे पास सौ रूपये कैसे हों, परन्तु सौ रूपया न बन सका। यह एक प्रचलित लभ की कथा है जो हम सभी के साथ बीत रही है। चाहे अमीर या गरीब सभी धन एकत्र करने में फंसे पड़े हैं और सारी खुशियों को उस पर कुर्बान कर रहे हैं। लभ वासना का ही भाग है -

लबु विहाणे माणसा जिउ पाणी बूरु। ***पृष्ठ - 967***

धन जोड़ने की वासना बहुत प्रबल है मनुष्य की सुरत अधिक से अधिक धन जोड़ने में लगी रहती है। संसार से विदा होने पर वृत्ति धन में घूमती रहेगी और मरणोपरान्त उसे साँप की यौनि अवश्य मिलेगी। गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं -

अंति कालि जो लछमी सिमरै ऐसी चिंता महि जे मरै।
सरप जोनि वलि वलि अउतरै॥ ***पृष्ठ - 526***

साँप बनने के बाद हालत कैसी होती है?

बाबा साहिब सिंह जी महाराज के जीवन की एक घटना आती है, उनका दीवान अमृतसर परिक्रमा में सजा हुआ था तो एक नाग फन फैलाता हुआ बाबा जी की ओर बढ़ रहा था, सामने आकर बड़ी ज़ोर से फुंकारे मारने लगा। बाबा जी ने कहा कि भाई! अमृत जल का लोटा इस पर डाल दो।

एक लोटा जल सरोवर में से भर कर लाया गया और उस साँप पर छींटे फैंक दिये गये। गुरबाणी की तरंगों द्वारा पवित्र हुआ, अमृत सरोवर के जल की फुव्वारें, चुल्लू भर कर फैंकने से जब वे साँप पर गिरीं तो वह ऐसे सो गया जैसे eldrine की spray करने से श्वांस लेने वाले जीव मर जाया करते हैं। साँप मर गया। महापुरुषों ने कहा कि भाई! इस पर कफन डाल कर धरती में दबा दो। उसके बाद बाबा जी के पास बैठे हुए श्रद्धालुओं ने प्रश्न पूछा कि बाबा जी! यह क्या घटना घटित हुई? हमें विस्तार से बताने की कृपा करें। आप समर्थ पुरूष हैं, त्रिकाल दर्शी, भूत भविष्य वर्तमान के ज्ञाता हो। तब बाबा जी ने कहा कि, गुरसिखो! यह साँप परिक्रमा के अन्दर जो मकान पुराने हो गये हैं, उन में से जिन मकानों में दरारें पड़ गई थीं, उनमें रहता हुआ तड़फ रहा था और समय बिता रहा था। वह दरबार साहिब में ग्रन्थी की सेवा किया करता था और पूजा का अन्न पानी खाने की तरफ इसका विशेष ध्यान रहता था। पैसे के

कारण श्रद्धालुओं का ध्यान अपनी ओर आकृषत करता रहता था। काफी धन हो गया, अब उसकी रक्षा में ध्यान लगाये रहता था। ऐसा करते करते इसका अन्त समय आ गया। आज यह अपनी ज़हर की पीड़ा से दुखी हुआ सत्संग के दर्शन कर रहा था। सत्संग के दर्शनों के फलस्वरूप यह सीधा ही हमारी ओर बढ़ आया। यह हमें डंक मारने नहीं आ रहा था बल्कि तरले कर रहा था कि किसी प्रकार मेरा छुटकारा कर दें। आज इसकी मुक्ति हो गई। बाबा जी कहने लगे कि गुरसिखो! पैसे टके का ध्यान कैसे दुखों में डाल देता है। गुरू महाराज जी ने इन दुखों से बचने के लिए पहले ही फ़रमान कर दिया है –

अंति कालि जो लछमी सिमरै ऐसी चिंता महि जे मरै।
सरप जोनि वलि वलि अउतरै॥ पृष्ठ - 526

चाहे किसी भी वासना में मन अटक जाये वह उसी में बन्ध जायेगा। वैसा शरीर प्राप्त करके अगला जीवन बिताना पड़ेगा। गुरू ग्रन्थ साहिब जी में फ़रमान आता है कि यदि किसी का मन जमीन, जायदाद, कोठियों में रह जाये तो उसे शरीर धारण करके उसका फल भोगना ही पड़ता है –

अंति कालि जो इसत्री सिमरै ऐसी चिंता महि जे मरै।
बेसवा जोनि वलि वलि अउतरै॥
अंति कालि जो लड़िके सिमरै ऐसी चिंता महि जे मरै।
सूकर जोनि वलि वलि अउतरै॥
अंति कालि जो मंदर सिमरै ऐसी चिंता महि जे मरै।
प्रेत जोनि वलि वलि अउतरै॥
अंति कालि नाराइणु सिमरै ऐसी चिंता महि जे मरै।
बदति तिलोचनु ते नर मुकता पीतंबरु वाके रिदै बसै॥ पृष्ठ-526

इसी प्रकार एक कथा भाई साहिब भाई रणधीर सिंह जी ने अपनी अनदेखी दुनियाँ के 356 वें पृष्ठ पर लिखी है। जिसके बारे में सन्त महाराज राड़ा साहिब वालों से भी सुना जाता रहा। वह इस प्रकार है कि एक बार एक निर्मले सन्त, अपनी मण्डली सहित धीरे धीरे चलते हुए हजूर साहिब की तरफ जा रहे थे। प्राचीन समय में जब सन्तों के पास कारें तथा हवाई जहाज नहीं हुआ करते थे, उस समय वे अपनी आवश्यकताएं बहुत कम रखा करते थे। कमर में पहनने के लिए एक चादर लपेट लिया करते थे। दूसरी चादर कमर से बान्ध लिया करते थे। कई बार एक ही चादर से गुज़ारा किया करते थे। एक चादर फालतू रखी जाती थी, जब एक मैली हो जाती तो दूसरी बान्ध कर, पहली चादर को धो लिया करते थे। उन दिनों में सन्त पैदल ही भ्रमण किया करते थे, सड़कें नहीं हुआ करती थीं, रास्ते भी अच्छे नहीं हुआ करते थे। सन्त

पैदल चलते चलते गाँवों में रुक जाया करते थे तथा श्रद्धालुओं की श्रद्धा देखकर कई कई दिन ठहर कर प्रचार किया करते थे। वे सच्चे साधु हुआ करते थे। जो कुछ वचन मुख से कह दिया करते थे, वे पूरे हो जाया करते थे। दृष्टि में आकर्षण हुआ करता था वचन सत्य हुआ करते थे जो कुछ कह देते थे वह हो जाया करता था। अनेक शक्तियाँ, रिद्धियाँ-सिद्धियां, हाथ जोड़ कर सेवा करने के लिए प्रार्थनाएं करती रहती थीं पर महापुरुष निवृति पक्ष को अधिक पसन्द किया करते थे। इस प्रकार प्रचार करते हुए भ्रमण किया करते थे। 68 तीर्थों पर, गुरूस्थानों पर पहुँच कर, अपने प्रवचनों द्वारा संसार का मार्ग दर्शन किया करते थे।

उनमें से ही एक महात्मा चलते चलते आज जयपुर पहुँचे, सूर्य छिप चुका था, अन्धेरी रात का समय था। बिजलियों के प्रकाश तो उन दिनों हुआ ही नहीं करते थे, सन्तों के मन में अकस्मात विचार आया कि किसी अच्छे स्थान पर रात बिताई जाए तथा अच्छा स्थान देख कर सत्संग किया जाये। वह जयपुर पहुँचते हैं, वहाँ कुछ नवयुवक सड़क के किनारे पर एक ऊँचे चबूतरे पर बैठे हैं। सन्तों को दूर से आता हुआ देख लिया और मन में श्रद्धा की जगह शरारत ने जन्म ले लिया और उन्होंने सन्तों को Misguide (गुमराह) करने का विचार बना लिया। सन्त जब उनके पास पहुँचते हैं तो उन्होंने पूछा कि बच्चो! इस जयपुर शहर में कोई ठहरने की जगह है? हमारी मण्डली में 40-50 के करीब विद्यार्थी हैं, हम कुछ दिन रुक कर सत्संग करना चाहते हैं। उन बच्चों ने कहा कि वह देखो महाराज! सामने कितनी बड़ी कोठी है, आस पास जो वीरान बाग है, वह देख रेख न होने के कारण उजाड़ सा लगता है, पर कोठी अति सुन्दर है लगभग 15-20 कमरे हैं। इस शहर के लोगों ने यह साधुओं के ठहरने के लिये बनवाई है। आपका जितनी देर मन चाहे रह सकते हो।

सन्त उस कोठी में चले गये। आप त्रिकालदर्शी थे, आप तुरन्त समझ गये कि इस कोठी में बदरूहों का वास है, वे इतनी विकराल हैं कि किसी भी व्यक्ति को यहाँ ठहरने नहीं देतीं। इन बच्चों ने हमारे साथ मसखरी की है क्योंकि वे अब इस कोठी में पहुँच चुके थे इसलिये वहाँ से वापिस जाना भी अच्छा नहीं लगता था। आपने सारे कमरे साफ करवा लिए, कोठी में कोई भी मालिक नहीं था, ताला कहीं भी नहीं लगा हुआ था, केवल कुन्डियाँ लगी हुई थीं। वह भी कोई भला पुरूष इतनी ही सम्भाल करता होगा। आपने पानी के साथ कोठी के चारों ओर सफाई करके उसे नया रूप दे दिया। अन्धेरा हो गया था। सन्त आकाश वृत्ति

वाले थे। सहज ही जो कुछ आ जाता उसे खा लिया करते थे अन्यथा वाहिगुरू की मौज समझकर दिन बिता दिया करते थे। आज भी सुबह से कुछ भी खाने को नहीं मिला था। उस समय सन्त जी ने सभी को इकट्ठा किया और कहा कि प्रेमियो! उन बच्चों ने हमारे साथ मसखरी की है, इस कोठी में कोई नहीं ठहर सकता क्योंकि इसके अन्दर इतनी विकराल रूहें रहती हैं जिनकी दुर्गन्ध से दम घुटता है। अब हम पहुँच तो गये, रैन बसेरा करने के लिए हमें बहुत सावधान होने की ज़रूरत है। बिराजने से पहले कीर्तन सोहला का पाठ बड़ी सावधानी से करना चाहिए और सुमिरन करते समय जब नींद बहुत तंग करने लग जाए थोड़ी देर तक बिराजमान हो जाओ और सुबह 2 बजे उठकर स्नान करना है। हमने देख लिया है कि इस कोठी में पानी नलके से मिल जायेगा। नलका चल रहा है। तुम पहले भी जल भर कर लाये हो। इस प्रकार सभी ने बड़ी सावधानी से सुमिरन किया तथा बाणी पढ़ी। कीर्तन सोहिला पढ़ा।

यहाँ पर मैं एक बात कहने में कोताही नहीं समझूंगा क्योंकि प्रसंग कीर्तन सोहिले का चल रहा है। इसकी क्या विशेषता है इस पर हमने विचार करनी है। 'कीर्तन सोहिला' सोते समय जब रात को सोने जाना हो, की छोटी सी बाणी है। जहाँ यह प्रभु के साथ प्रार्थना द्वारा इकमिक होने का ज्ञान बख्शती है वहाँ जीव को प्रेरणा देती है कि तू संसार में कुछ कमाई कर ले। जब तू शरीर छोड़ कर उस दुनियां में जायेगा, जहाँ हर एक को जाना जरूरी है तो तू वहाँ पर घाटे का व्यापारी बन कर मत जाना, कमाई करके जाना। गुरू से मिलकर अपना कार्य संवार ले। यह संसार शंकाओं से भरा हुआ है। इसमें जिसने अपना आपा (निजित्व) को पहचान लिया वह तर जाता है। पर निजित्व पहचानने के लिए संगत की बहुत जरूरत है। इस बाणी के अन्तिम वाक्यों में कहा गया है –

अंतरजामी पुरख बिधाते सरधा मन की पूरे।
नानक दासु इहै सुखु मागै मो कउ करि संतन की धूरे॥

पृष्ठ – 13

बन्दगी करने वाले महापुरुषों की धूलि की कामना करता हुआ जीव रात को अपना शरीर गुरू के हवाले करके निश्चिंत होकर सो जाता है। आधि, व्याधि, उपाधि इसे तंग नहीं करतीं। बुरे सपने नहीं आते। गहरी नींद करने के बाद सुबह सुमिरन करने के उपरान्त बिल्कुल तरो ताज़ा दिमाग के साथ कार्य करने के लिए तत्पर हो जाता है और फिर खुशियों तथा बरकतों से भरा हुआ दिन बीतता है।

इस बाणी की जो शक्ति है उसके बारे में ऐसा कहा जाता है कि

गुरू महाराज पाँचवें पातशाह जी के पास एक काबुल कन्धार से सौदागर आया उसने अति प्यार के साथ सादर नमस्कार करके प्रार्थना की कि सच्चे पातशाह! आपको तथा आपके गुरसिखों को सुन्दर घोड़े रखने अच्छे लगते हैं। वैशाखी के मेले पर मैं काबुल, कन्धार तथा ईरान के बहुत सुन्दर घोड़े लेकर आया करता हूँ। आप की कृपा से मुझे काफी लाभ हो जाया करता है जिसमें से मैं दसवन्ध की राशि आपके चरणों में भेंट किया करता हूँ। पर सच्चे पातशाह! एक बहुत भारी विघ्न मेरा पीछा नहीं छोड़ता, आप कृपा करके उस विघ्न से मुझे मुक्ति दिला दो –

गुर का सबदु काटै कोटि करम॥ *पृष्ठ - 1195*

करोड़ों विघ्न उसे लग जाते हैं जिसे नाम भूल जाता है जैसा कि फ़रमान है –

कोटि बिघन तिसु लागते जिसनो विसरै नाउ।
नानक अनदिनु बिलपते जिउ सुंञै घरि काउ॥ *पृष्ठ - 524*

आप कृपा करके मुझे ऐसा मन्त्र बताओ जिसे पढ़ता हुआ मैं आप तक सुख शान्ति से पहुँच जाया करूँ। सच्चे पातशाह! मैं घोड़े लेकर जब झेहलम दरिया पार करता हूँ, उसी समय मेरे पीछे चोर लग जाते हैं मेरी तीखी नज़र इन चोरों को पहचान भी लेती है कि ये मेरे घोड़े चोरी करने आए हैं पर बहुत अधिक सम्भाल करने के बावजूद भी मेरे कई अच्छे घोड़े ये चुरा कर ले जाते हैं। उस समय गुरू महाराज जी ने वचन किया कि प्यारे! गुरबाणी जहाँ रूहानी सूझ प्रदान करती है वहाँ मन्त्र रूप होकर संसारी जीवों की कामनाएं भी पूर्ण करती है। जब तक जीव उच्च मंज़िलों में प्रवेश नहीं करता –

विणु तुधु होरु जि मंगणा सिरि दुखा कै दुख।
देहि नामु संतोखीआ उतरै मन की भुख। *पृष्ठ - 958*

उस समय तक उसकी दुनियांवी जरूरतें पूरी न होने के कारण वह मांगता ही रहता है। यदि उसकी जायज वासनाएं पूरी न हों तो भजन बन्दगी में उसका मन नहीं लगता, उसके द्वारा किये गये भजन का कोई मुल्य नहीं होता। इसलिए बाणी में यह सत्ता है कि यह जीव को कठिनाईयों में से निकालकर, मुसीबतों में से निकालकर, उसकी उपयुक्त वासनाएं पूर्ण कर देती है। जब हम इस आशय को समझ कर पाठ करते हैं तो यह शक्ति रूप होकर हमारी सहायता करता है। आप गुरू के सिक्ख हो, गुरू के साथ तुम्हारा प्यार है अपनी कमाई में से दसवंध देते हो, गुरू भी अपने शिष्य की हर जगह रक्षा करता है। वह सिख को बुरा अवसर नहीं देखने देता, वह उसका बिरद है। वह अपने पवित्र हाथ की सत्ता देकर

रक्षा करता है –

अउखी घड़ी न देखण देई अपना बिरदु समाले।
हाथ देइ राखै अपने कउ सासि सासि प्रतिपाले॥   पृष्ठ – 682

देखो! गुरू नानक पातशाह भाई मनसुख का जहाज जो समुद्र में आने वाले ज्वार भाटे के कारण डूबने के लिए तैयार ही था, पर जब भाई मनसुख ने गुरू के चरणों में प्रार्थना की, अपने गुरू को याद किया, उसका जहाज सहज ही लंका पहुँच गया। गुरू का बिरद है कि वह अपने शिष्य (सिख) की रक्षा करता है। साधु संगत जी! इस सम्बन्ध में गुरू दशमेश पिता जी का फ़रमान है –

रोगन ते अर सोगन ते, जल जोगन ते बहु भांति बचावै॥
सत्र अनेक चलावत घाव, तऊ तन एक न लागन पावै।
राखत है अपनो कर दै कर, पाप समूंह न भेटन पावै।
और की बात कहा कह तो सों, सु पेट ही के पट बीच बचावै॥

अकाल उस्तति

गुरू पांचवें पातशाह उस सौदागर को कहने लगे कि, हे गुरसिख! जब तू घोड़े लेकर आया करे, कीर्तन सोहिले का पाठ बड़ी सावधानी से किया कर। तेरे सारे घोड़े के इर्द गिर्द लोहे का किला बन जायेगा और उस किले को सुबह जपुजी साहिब का पाठ करके खोल लिया कर। यह बात अपने तक ही सीमित रखना। किसी और को यह बात मत बताना।

इस प्रकार जब अगले वर्ष वह सौदागर बहुत कीमती घोड़े गुरू दरबार की ओर लेकर आ रहा था तो उसके झेहलम नदी पार करते ही चोर अनेक रूप धारण करके पीछा करने लगे। किसी ने साधु का रूप धारण करके माला पकड़ी हुई है, किसी ने किसान का रूप धारण करके किसानी सन्द (औज़ार) कन्धे पर रखा हुआ है, कोई बैलों के गले में हल डाल कर घोड़े के आस पास घूम रहा है और सबसे उत्तम घोड़ों को परख कर उसे चुराने का इरादा बना रहा है। कोई चोर विद्वान पण्डित बना हुआ धर्म ग्रन्थों के अर्थ सुना रहा है। सो इस प्रकार ये दिन में यह भेद ले लिया करते थे और रात को सारे इकट्ठे होकर चोरी का काम किया करते थे। आज रात को जब उन्होंने देखा तो कोई भी घोड़ा नज़र न आया, उसके स्थान पर लोहे की दीवार नज़र आ रही थी। हाथों से दीवार को टटोल कर देखते हैं। इस प्रकार वे चोरी न कर सके। झेहलम से रावी के किनारे तक वे सौदागर के साथ ही चले आए। जब वह सौदागर रावी पार करके अमृतसर की ओर मुड़ा तो वे चोर भी साथ ही

दरिया पार करके उसके आस-पास ही चल रहे थे। इन्होंने मन में फैसला किया कि यह सौदागर अब कोई मन्त्र पढ़ता है। इससे पूछेंगे कि क्या मन्त्र पढ़ता है, इसका भेद जानना है। जब घोड़े रावी पार कर गये तो व्यापारी बेपरवाह हो गया, रात को कीर्तन सोहिला पढ़ते समय उसे -

गगन मै थालु रवि चंदु दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती॥

पृष्ठ - 13

वाला शब्द पढ़ते हुए नींद आ गई। वे चोर अभी भी इसका पीछा कर रहे थे। उन्होंने भी ताड़ लिया कि आज यह सौदागर मन्त्र पढ़ना भूल गया है। आज हमें मौका मिल गया है। वे एक दम घोड़ों के पैरों की तरफ पहुँच कर आगे पीछे होकर उन्हें खोल कर ले जाने वाले ही थे इतनी देर में व्यापारी की नींद खुल गई और उसने सावधान होकर कीर्तन सोहिला पढ़ दिया और वह किला बन गया। उधर चोरों ने घोड़े खोल लिए पर सुबह होने तक बाहर निकलने का रास्ता न मिला। उसका केवल एक ही रास्ता था कि स्नान करके जपुजी साहिब पढ़ा जाए। जपुजी साहिब पढ़ने से वह किला टूट जाता था। आज जब सौदागर के साथ आए रखवाले घोड़ों की ओर गये तो क्या देखते हैं कि घोड़ों के मुँह में लगामें डाली हुई हैं, चोर उनके सामने बैठे हैं। उन चोरों को पकड़ लिया गया। चोरों ने कहा कि आप हमें अपने व्यापारी के पास ले चलो। उस सौदागर के पास आकर चोरों ने साफ साफ बता दिया कि सेठ जी! हम ही हैं जो हर वर्ष आपके घोड़े चोरी करके ले जाते थे। अब भी झेहलम से हम आपके पीछे लगे हुए थे, अब आप कोई मन्त्र पढ़ते हो तो घोड़ों के चारों ओर एक किला बन जाता है, सुबह जब फिर पढ़ते हो तो किला आँखों से ओझल हो जाता है। क्या आप यह बता सकते हो कि तुम्हें यह मन्त्र कहाँ से मिला? तो उस सेठ ने कहा कि यह कीर्तन सोहिला है। हम वह पढ़ते हैं जिससे हमारे धन-माल की रक्षा बाणी करती है। उन्होंने कहा सेठ जी! अब चाहे आप हमें मारो, चाहे छोड़ दो, चाहे राजा के पास ले जाकर दण्ड दिलवाओ, पर अब हम वैसे चोर नहीं रहे। आपके वचन सुनकर हमें ज्ञान हो गया। हम सोचते हैं कि क्यों न हम भी उस मुरशद के दर्शन करके गुरू धारण करें। आज हमें आपसे पता चला है कि कोई मुरशद-ए-कामल भी इस संसार में है। हमें उनके चरणों में ले चलो, हमने उसके सेवक बनना है। उस समय वह व्यापारी उन सभी को गुरू महाराज जी के पास ले गया।

सो, मैं बात कर रहा था कि सन्तों ने कहा, "प्यारे! यहाँ बहुत विकराल भयंकर रूहों का वास है, ये आने जाने वालों को बहुत नुकसान

पहुँचाती हैं, चारपाईयाँ उलटी कर देती हैं। यहाँ तक कि जान से भी मार देती हैं। महापुरुषों की आज्ञानुसार कीर्तन सोहिला पढ़ा गया। यदि कोई प्रेमी भूल जाता तो साथ वाले प्रेमी से पूछकर उन्होंने कीर्तन सोहिला का पाठ पूरा कर लिया।

उस समय काफी रात बीत चुकी थी। सन्त अभी जाग रहे थे, एक विकराल रूह बहुत डरती डरती आगे बढ़ी और अनुभवी महापुरुषों के सामने दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगी कि महाराज! मेरा कल्याण करो, मैं बहुत दुखी हूँ। ऐसे वचन सुन कर सन्तों ने कहा कि तू अपना परिचय करवा। उस रूह ने कहा कि मैं इस कोठी का मालिक था, यह बहुत बड़ी कोठी मैंने बड़े चाव से बनवाई। इसमें मेरा परिवार, जिसमें कई जीव थे, मेरे सहित रहा करते थे। मेरा ध्यान हमेशा इस कोठी में ही लगा रहता था। मैं इसके ईर्द-गिर्द कुछ न कुछ बनाता रहता था। बहुत बड़ा बगीचा लगाया। जिसे देखने के लिये पुष्प विशेषज्ञ आया करते थे और मेरी प्रशंसा किया करते थे। अन्त एक दिन मैं बिमार हो गया। मुझे पता चल गया कि मैंने बचना नहीं है। उस समय मेरा सारा ध्यान कोठी में लगा रहता था कि इसकी देख रेख कौन करेगा। यह कोठी बहुत सुन्दर है, इसे मेरे मरने के बाद बच्चे कहीं बेच न दें? फिर ऐसी कोठी नहीं मिलेगी। इस प्रकार इन सोच विचारों में मेरी जान निकल गई।

मुझे धर्मराज के दरबार में ले जाया गया जहाँ मेरी अन्तिम वासना के अनुसार फैसला किया गया कि इसकी सुरत कोठी में रह गई है। इसे प्रेत बनाकर उसी कोठी में छोड़ आओ। महाराज! मैं तभी से इस कोठी में रह रहा हूँ। मेरे लड़कों ने मेरे मरने के बाद मेरा कुछ भी न करवाया। वे अपनी मौज मस्तियों में जीवन बिताते रहे। मेरा उनके साथ कोई मेल जोल न हो सका क्योंकि हुक्म के बगैर मैं इनके अन्दर जा ही नहीं सकता था। ये मुझे भूल गये कि मैं इनके पास ही प्रेत पिंजर में रहकर दुख भोग रहा हूँ। अन्त मैंने cruel (ज़ालिम) वृत्ति धारण कर ली। सबसे पहले मैंने अपने पोते-पौत्रियों को मारा, फिर पत्नी को मारा फिर बच्चे मारे, इस तरह से मारने के बाद कोठी की रक्षा तथा देख-रेख करने वाला कोई भी न बचा। मेरे साथ और भटक रही रूहों ने भी वास कर लिया। मेरा स्वभाव बहुत ही cruel है। महाराज! यदि कोई आकर रात को ठहरता है तो हम उसे मार देते हैं। यदि कोई दृढ़ निश्चय वाला व्यक्ति हो तो उसकी चारपाई उलटा देते हैं। वह डर के मारे बाहर भाग जाया करता है। यह हमारा प्रतिदिन का कार्य ही बन गया। वे लड़के जो बाहर बैठे थे जिन्होंने तुम्हें यहाँ भेजा है वे इसी तरह से यात्रियों को भेजते हैं

और इन्तज़ार करते हैं कि कब वे 'अरे, मार दिया, अरे, मार दिया' करते हुए बाहर दौड़े आएं, फिर हम तालियाँ बजा कर हंसे। इस प्रकार उन्होंने तुम्हें भी भेजा था।

आपने कोई ऐसा मन्त्र पढ़ा है कि हमारी कोई भी पेश तो क्या चलनी थी, हम कोठी में से बाहर भी न निकल सके। आपके मन्त्र की इतनी तपस लग रही है और ऐसा असर हो रहा है कि हम इस कोठी में से बाहर निकलने में भी असमर्थ हैं।

महाराज! अब मैं डरता डरता कोठी में से आया हूँ, मेरी अवज्ञा को माफ करो, मेरी गति का कोई प्रयास करो, मैं बहुत दुखी हूँ, मुझ से अब और अधिक दुख सहन नहीं होता।

तब महात्मा जी ने कहा कि हम तो आकाश-वृत्ति वाले साधु हैं, न तो हम पल्ले बान्धते हैं, न ही हमारी कोई जेबें लगी हैं, यह तो चादरें ही हैं। यदि कोई भोजन दे जाये तो ठीक अन्यथा हरि इच्छा। हमारे पास कोई धन नहीं है, विधिपूर्वक, अखंड पाठ यदि तुम्हारे निमित हो जाये, फिर यज्ञ किया जाये, प्रार्थना हो, तो हो सकता है, तुम्हारी गति हो जाये। तो उस समय उसने कहा कि पैसों की तो इस कोठी में कोई कमी नहीं है। आप कोई भी देहरी खोद लो, उसके नीचे से धन निकल आयेगा जो हजारों की संख्या में कच्चे बर्तनों में रखा हुआ है। उसे बाहर निकाल कर उसके ऊपर रखे ढक्कन को हटाकर आप देखेंगे तो चांदी के चमकते हुए सिक्के निकलेंगे उन्हें खर्च करके राशन खरीद लो और आप इस प्रकार अखण्ड पाठ करवा सकते हो। उस समय सन्तों ने एक देहरी के नीचे से धन निकलवाया, राशन खरीदकर, गुरू ग्रन्थ साहिब जी की सवारी लेकर आए तथा अपने साथियों को उपदेश देते हुए कहा कि बहुत विधिपूर्वक अखण्ड पाठ करना है और इसका फल अव्यक्त रूह को देकर उसकी गति करवानी है। उस प्रेत के साथ यह बात तय हो गई कि पाठ के बाद हम प्रार्थना करके गुरू महाराज जी का शीत प्रसाद बाटेंगे। तेरा हिस्सा निकाल कर आले में रख देगें। अगर तू वह प्रसाद खा गया या ले गया तो हम समझेंगे कि तेरी गति हो गई। यदि न लेकर गया तो हमें आकर फिर मिलना, फिर आगे की बात पर विचार करेंगे। इस प्रकार अखण्ड पाठ सम्पूर्ण हुआ, पर जब देखा तो प्रसाद आले में उसी तरह से कटोरी में पड़ा था। सन्त जी ने कहा, गुरमुखो! हमारे में से किसी से कोई भूल हो गई है। गुरू ग्रन्थ साहिब जी का पाठ तो लाभकारी था ही पर गलती अपनी होने के कारण पाठ

ने फल नहीं दिया। आज फिर यहीं ठहरेंगे। जब रात को ठहरे तो सन्त जी के कमरे में वही रूह आई। परन्तु पहले की अपेक्षा अधिक सुन्दर लग रही थी। सन्त जी ने कहा कि हमने तो पाठ बहुत सावधानी से करवाया है तू प्रसाद क्यों नहीं लेकर गया? उसने कहा कि उस पाठ का फल तो मुझे मिल गया पर देखो, पहले मैं कैसा था, विकराल था, अब कितना सुन्दर बन गया। पर महाराज एक भेद की बात यह है कि 12 से 2 बजे वाला जो ग्रन्थी था उसे स्वपन दोष हो गया। वह शुद्ध, पवित्र नहीं था, वह बगैर स्नान किये पाठ करने बैठ गया। इसलिए पाठ खण्डित हो गया। सन्त जी ने सभी सेवकों को बुलाया तो एक सेवक मान गया कि हाँ मैं ही हूँ, जिससे यह गलती हुई है। तब उसने कहा कि मेरी अवज्ञा क्षमा करो और मुझे शक्ति दो ताकि मैं भविष्य में ऐसी गलती न करूँ। सन्त जी ने कहा कि तू हमारे साथ रहता है और हम अपनी संगत को सदा ही सुचेत करते रहते हैं कि कामुक वृत्ति ही खतरनाक हुआ करती है। यदि किसी मकान को आग लग जाये तो वह उसे जला देती है परन्तु काम इससे भी अधिक बुरी चीज़ है। हम तुम्हें सदा ही मना करते रहते हैं कि पर स्त्री को अपने मन में लाने से बचो और सदा ही सावधान रहो। बाहरी अग्नि तो घर बाहर ही जला सकती है परन्तु पर स्त्री का संग, कई जन्मों के तप को, वैराग को राख बनाने की समर्थ रखता है। पर स्त्री रूपी अग्नि सभी अग्नियों से ताकतवर है। जो कर्म धर्म भ्रष्ट कर देती है। नेत्रों से, वचनों से, हर तरह से राख ही बना देती है। जैसे नेवला साँप को बिल में से निकाल कर मार देता है इसी प्रकार स्त्री में समर्थ है कि वह आत्म आनन्द योगी को आत्म आनन्द में से निकाल कर उसे अपना संग करवा कर नरकों में फैंक देती है। तुझे सपने में भी स्त्री का ख्याल क्यों आया? यह बहुत बुरी बात है। तुम्हें हम सदा ही बताते हैं कि तुम दोष दृष्टि से सोचा करो कि उसकी देह क्या है? मांस है, नाको में मैल भरी पड़ी है, आँखों में गीद है, मुँह में बदबू भरी है, यदि वही स्त्री दो दिन स्नान न करे, उसके शरीर में से दुर्गन्ध आने लग जाती है। वस्त्रों तथा आभूषणों के कारण वह सुन्दर लगती है, उसमें ऐसी कशिश है कि वह आत्म धन का नाश कर देती है। जैसे ज़हर (विहु) रूपी गन्दलें देखने में तो अच्छी लगती है पर इन्हें खाकर मनुष्य मर जाता है। अज्ञान रूपी हाथी काम वश होकर सारी जिन्दगी दुख भोगता है। वन रूपी अग्नि सब कुछ जला देती है, पर स्त्री रूपी अग्नि सभी धर्म-कर्म भ्रष्ट कर देती है। इस अग्नि से पूरी तरह बचना चाहिए। गुरू दशमेश पिता जी का फ़रमान है -

निज नारी के संग नेहुं तुम नित बडयहु।
परनारी की सेज भूलि सुपने हूं न जैयहु॥ *पातशाही 10*

गुरू महाराज जी का ऐसा भी फ़रमान है –

कामु क्रोधु काइआ कउ गालै। जिउ कंचन सोहागा ढालै॥
पृष्ठ - 932

वशिष्ट जी फ़रमान करते हैं कि हे राम! यदि परमार्थ को सिद्ध करना है तो पर स्त्री के डंक से अपने आप को बचा कर रखो।

सन्त जी ने कहा कि मूर्ख! तेरे मन में स्त्री का विचार क्यों आया? एक तो तूने बहुत भारी अवज्ञा की है कि गुरू ग्रन्थ साहिब जी के ताबे में बिना स्नान किए, अपवित्र ही आकर बैठ गया। जिस बाणी का महान फल है उसे तेरी अपवित्रता ने कितना छोटा कर दिया।

सन्त जी ने उस रूह से कहा कि और धन ला, फिर से पाठ करें। फिर सन्त जी ने दूसरा पाठ करवाया और जब अरदास की गई तो क्या देखते हैं कि उस आले में प्रसाद नहीं था। बड़ा भारी लंगर चला जय-जयकार हुई। रात को एकान्त में वह रूह एक बार फिर प्रकट हुई। उसने कहा कि महाराज! मैं आपका कैसे धन्यवाद करूँ, आपने मुझे इस महान दुख में से छुटकारा दिलाया है।

सो इस प्रकार माया के अन्दर जिसकी वृत्ति रह जाये वह साँप बन जाता है। जिसकी वृत्ति जायदाद में रह जाये तो उसे प्रेत बनना पड़ता है। एक और स्थान पर पुस्तकों में लिखा पाया गया है कि एक राजा अपनी ज़मीन में तीतर बन कर कह रहा था, जिसका उद्धार गुरू दशमेश पिता जी ने किया। धन की वासना बहुत खतरनाक है।

जब कुत्ता बौखला (पागल) जाता है, तो उसे अपने पराये का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता। उसके सामने जो भी आता है, उसे काट खाता है। इसी प्रकार लोभ की लहर में फंसा हुआ मनुष्य, धन प्राप्त करने की, प्रत्येक प्रकार की वासनाओं में हर समय कुम्हार के चक्क की तरह घूमता रहता है और अनेक प्रकार की योजनाएं धन प्राप्ति की बनाता रहता है। उस समय जो उसका आचार व्यवहार होता है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि इस मनुष्य की कोई भी मर्यादा (नियम) नहीं रही। धर्म, ईमान, सभी अच्छे आचरण के गुणों को छीकें पर लटका देता है। भागा ही फिरता है, गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं –

जिउ कूकरु हरकाइआ धावै दहदिस जाइ।
लोभी जंतु न जाणई भखु अभखु सभ खाइ। *पृष्ठ - 50*

जब यह भक्ष्य-अभक्ष्य खायेगा, तब इसे अनेक प्रकार के रोग शरीर में पैदा होते दिखाई देंगे। वह किसी प्रकार भी प्रभु भक्ति के मण्डल में प्रवेश नहीं कर सकता क्योंकि उसके विचार इतने खण्डित हो जाते हैं कि यदि वह भूल कर भी प्रभु का नाम जपने लग जाये तो उसकी वृत्ति तो क्या स्थिर होगी, उस समय उसे लोभ के ख्याल आयेगें। वह परमेश्वर को भूला रहेगा और बहु मुल्य जीवन संसार से गवाँ कर पश्चाताप करता हुआ चला जायेगा। जैसा कि पहले बहुत विस्तार पूर्वक लिखा जा चुका है -

लोभ विकार जिना मनु लागा हरि विसरिआ पुरखु चंगेरा।
ओइ मनमुख मूड़ अगिआनी कहीअहि तिन मसतकि भागु मंदेरा॥
पृष्ठ - 711

इस शरीर के लिए, परिवार के लिए, लोगों को दिखाने के लिए, अनेक प्रकार की लोभी लहरों में, धन एकत्र करने के लिए, जायदाद खरीदने के लिए, हीरे जवाहरात प्राप्त करके घर में रखने के लिए, अनेक उपद्रव करेगा। कहीं सरकार से टैक्स छिपायेगा, कहीं ब्लैक करेगा, कहीं नकली वस्तुएं बनाकर, प्रयोग करने वालों का पूरी तरह नुकसान करेगा। कहीं नकली दवाईयाँ बना कर बिमार मनुष्यों की जानों से खेलेगा और अनेक प्रकार की भारी गठड़ी जो पापों की भरी हुई है सिर पर रख कर संसार से रोता चिल्लाता, लेखे देने के लिए दरगाह में पहुँच कर पछताता है। जिस शरीर के लिए इसने इतने घोर पाप किए हैं, मन की वासनाओं की पूत के लिए जायज़ नाजायज़ सभी हथकन्डे प्रयोग किए, उस काया का क्या हश्र होता है। सभी के देखते देखते यह जीव आत्मा शरीर छोड़कर चला जाता है और बाद में इस देही को कोई नहीं पूछता। कोई भी इसे थोड़ी देर के लिये भी रखना पसन्द नहीं करता, रिश्तेदारों, हितैषियों की प्रतीक्षा करते हैं कि इकट्ठे होकर इसे अग्नि की भेंट कर दें यह कहीं घर में पड़ी न रह जाये। गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं कि ऐ जीव! तू हमारा वचन मान कर कुछ तो समझ, क्यों इतना बोझा उठा रहा है कि तुझे लेखा देना भी मुश्किल हो जाये-

लबु लोभु मुचु कूड़ु कमावहि बहुतु उठावहि भारो।
तूं काइआ मै रुलदी देखी जिउ धर उपरि छारो॥ *पृष्ठ - 154*

जब लोभ लहर इन्सान के हृदय में बस जाती है उसकी सारी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है उसे संसार से जाना पूरी तरह भूल जाता है। तृष्णा का रोगी बन जाता है, तृष्णा की आग उसे जलाती रहती है वह कभी भी दो पल के लिए सुरत को टिका कर नहीं बैठ सकता। क्लेश ही क्लेश उसके

गले में पड़े रहते हैं। गुरू महाराज जी तो लोभी की हकलाये कुत्ते से तुलना करते हैं। कितनी नीच अवस्था है कि यह इन्सान नहीं रहता –

लोभ लहरि सभु सुआनु हलकु है हलकिओ सभहि बिगारे।

पृष्ठ - 983

हकलाया कुत्ता जिसे काटता है वह हकला जाता है। महाराज जी इसी तथ्य को समक्ष रखते हुए फ़रमान करते हैं प्यारे! लोभी का कभी भी विश्वास मत करो, वह ऐसे स्थान पर धोखा देता है जहाँ मनुष्य का पार न चल सके। यह लोभी जीव प्यार करके मार भी देता है, गायब भी कर देता है, कई प्रकार की दवाईयाँ खिलाकर पागल भी बना देता है, अपना उल्लू सीधा करता है।

कई बातें ऐसी होती हैं जो कानूनी तौर पर सिद्ध करके दिखानी बहुत कठिन होती हैं पर आँखों के सामने घटित होने पर लोक मत कोई न कोई निर्णय निकाल लिया करती है। मुझे याद है कि 1950 के आस पास पत्नी और पति का सांझा (Joint) बीमा हुआ करता था। एक प्रेमी जिसने बहुत बड़ी राशि का बीमा करवाया हुआ था अपनी पत्नी को बहुत प्यार किया करता था। उसे picnic (सैर सपाटे) के लिये श्री नगर lake (झील) पर ले गया और ऐसी कहानी बनाई कि सभी को यह सच लगने लगा कि उसकी पत्नी फिसल कर झील में गिरकर मर गई। उसके पति ने भी ऐसा मुँह बना लिया कि सभी उसके पास अफसोस प्रकट करने के लिये आने लगे। उसने बीमा कम्पनी पर claim (दावा) कर दिया और लाखों रूपये Insurence (बीमे) के प्राप्त कर लिये। इस प्रकार बाहर ऐसी घटनाएं बहुत बढ़ गई जिसकी वज़ह से Joint (सांझे) बीमें बन्द कर दिये गये। अब आप ही बताओ की लोभी का कैसे विश्वास किया जाये?

लोभी का वेसाहु न कीजै जेका पारि वसाइ।
अंतिकालि तिथै धुहै जिथै हथु न पाइ।
मनमुख सेती संगु करे मुहि कालख दागु लगाइ।
मुह काले तिन्ह लोभीआं जासनि जनमु गवाइ। *पृष्ठ - 1417*

महाराज कहते हैं कि लोभियों का क्या विश्वास करना, उनका जब स्वार्थ हित होता है तो वे बहुत बढ़ चढ़ कर बातें करते हैं जैसे अपना ही कुत्ता प्यार करता है पर जब वह हकला जाता है फिर उसका क्या विश्वास कि किस समय वह काट खाये और ज़हर उसके मालिक के शरीर में प्रवेश कर जाये। महाराज कहते हैं कि उनका मन दुर्मति के साथ भर जाता है। बातें करने में वे बहुत चतुर होते हैं। ऐसे लगता है कि इनसे अच्छा तो कोई मनुष्य हो ही नहीं सकता।

मैं अपने जीवन में गुरू महाराज के वचन तो अच्छी तरह जानता था पर मेरे अन्दर एक बहुत बड़ी कमी थी कि मैं किसी पर शक (सन्देह) नहीं करता था। न ही मुझे कोई बुरा नज़र आता था। पर मेरे साथ जीवन में कई ऐसी घटनाएं घटित हुई जो अब मैं महसूस करता हूँ कि जिन प्रेमियों ने विश्वासघात किए, वे वास्तव में ही कुत्ते की तरह हकलाये हुए थे। उन्हें मेरे द्वारा किये गये उपकार भूल गए और एक ही बात दिमाग में आ गई कि जो आ॒थक सहायता उनके कामों में मेरे द्वारा प्राप्त हुई थी वह किसी न किसी प्रकार हथिया ली जाए। ऋण हत्या 96 करोड़ पापों के बराबर मानी जाती है पर ऐसे मनुष्य को न कोई दरगाह का पता होता है, न दूसरे की भावनाओं को समझते हैं, उन्होंने तो अपना उल्लू सीधा करना होता है, न अच्छे चरित्र का उन्हें ध्यान होता है, न दुष्चरित्र का उन्हें कोई असर होता है –

साकत सुआन कहीअहि बहु लोभी बहु दुरमति मैलु भरीजै।
आपन सुआइ करहि बहु बाता तिना का विसाहु किआ कीजै॥

पृष्ठ – 1326

पर लालच के वश में पड़ कर जो भी कर्म मनुष्य करता है उसमें स्वंय ही बन्ध जाता है। जब पूरी तरह फंस जाता है फिर भागा फिरता है कि मेरे सामने यह समस्या आ गई, मुझे ऐसा हो गया और वैसा हो गया। वह इसलिए कि उसने लालच में फंस कर ऐसा काम किया जिसकी वज़ह से वह लालच की जंज़ीरों में बन्ध जाता है और फंस जाता है –

भूलिओ मनु माइआ उरझाइओ।
जो जो करम कीओ लालच लगि तिह तिह आपु बंधाइओ॥

पृष्ठ – 702

गुरू महाराज जी बड़े प्यार के साथ समझाते हैं कि लोभ के वश में पड़ कर क्यों तुमने अपनी दृष्टि अन्धी कर ली तथा फ़रमान करते हैं –

ऐसा कंमु मूले न कीचै जितु अंति पछोताईऐ। *पृष्ठ – 918*

जितु सेविऐ सुखु पाईऐ सो साहिबु सदा सम्हालीऐ।
जितु कीता पाईऐ आपणा सा घाल बुरी किउ घालीऐ।
मंदा मूलि न कीचई दे लंमी नदरि निहालीऐ।
जिउ साहिब नालि न हारीऐ तेवेहा पासा ढालीऐ।
किछु लाहे उपरि घालीऐ॥ *पृष्ठ – 474*

इसलिए महाराज जी कहते हैं कि तुमने क्यों अपने आप को अन्धों में शामिल कर लिया? क्यों नहीं समझते कि लालच का दुख बहुत भारी

होता है? क्यों नहीं मानते की दरगाह में उसकी हार होती है? मनुष्य के अन्दर जो पाँच चोर बसते हैं उन सभी का स्पर्श मनुष्य को बहुत नीचा ले जाता है जैसे काम सभी कर्म धर्म नष्ट कर देता है, इसी प्रकार क्रोध इतना भयानक है कि गुरू महाराज जी हमें सुचेत करते हैं–

ओना पासि दुआसि न भिटीऐ जिन अंतरि क्रोधु चंडाल॥
पृष्ठ - 40

मोह के बन्धनों में जकड़ा हुआ मनुष्य बार बार पैदा होता है, मर जाता है। अभिमान में आया हुआ मनुष्य किसी को भी अपनी नज़रों से नहीं मिलाता। वाहिगुरू जी को अहंकार बिल्कुल भी पसन्द नहीं है। सभी धर्म ग्रन्थ डकें की चोट से समझाते हैं –

हरि जीउ अहंकारु न भावई वेद कूकि सुणावहि॥ पृष्ठ - 1089

इसी प्रकार लालच के बारे में बताते हुये फ़रमान करते हैं –

लालचु छोडहु अंधिहो लालचि दुखु भारी।
साचौ साहिबु मनि वसै हउमै बिखु मारी॥ पृष्ठ - 419

क्यों तुम यह विष का व्यापार करते हो? तुम्हें मानस जन्म प्रभु की प्राप्ति के लिए मिला है, तुम इसे ऐसे ही व्यर्थ गवाँ कर कितना बड़ा नुकसान अपने लिए कर रहे हो? पुनः यह जन्म नहीं मिलना। पता नहीं किये गये कर्मों का फल भोगने के लिए किस किस यौनि में जाना पड़ेगा। इसे हऊमै का रोग लगा हुआ है जिसके कारण प्रभु सभी परिपूर्ण होता हुआ भी इसे दिखाई नहीं देता। यह इतना गिर चुका है कि यह अपने आपको पाँच तत्वों की देह मानता है। चाहे पी. एच. डी., डी. लिट. कर ली है, पंडित की पदवी प्राप्त कर ली है और पता नहीं कौन-कौन सी पदवियाँ प्राप्त करके दुनियाँ में प्रसिद्ध हो गया। गुरू महाराज जी का फ़रमान है प्यारे! क्यों थोथी बातों में पड़ गये हो? गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं कि यदि तूने एक बात का ज्ञान प्राप्त न किया, तो तुम्हारा स्थान पशुओं के तुल्य हो जाता है। गुरू महाराज जी तो धुर दरगाह की बातें बता रहे हैं। सारी अकाल पुरूष की क्रिया हो रही है, यह बाणी भी धुर दरगाह से आई हुई है। आप बार बार इस जीव को सुचेत करते हुए फ़रमान करते हैं कि यह मानस जन्म दुर्लभ है, यह यदि एक बार तुम्हारे हाथों से निकल गया फिर दोबारा हाथ नहीं आयेगा। किये गये कर्मों का बदला देने के लिए हमें निखिद्ध योनियों में जाना पड़ेगा। बाणी में आता है कि प्यारे! जीभ के स्वाद के लिए जीवों को मार-मार कर खाता है पर जब लेखा देना पड़ेगा फिर अकाल पुरुष के नियमानुसार तुझे भी वह उसी तरह खायेगा क्योंकि किए गये कर्मों का फल भोगना ही पड़ेगा –

भोगे बिन भागे नही करम गती बलवान॥

पर हम गुरू महाराज जी का कोई भी हुक्म मानने को तैयार नहीं हैं। गुरबाणी में स्पष्ट है –

कबीर खूबु खाना खीचरी जा महि अंम्रितु लोनु।
हेरा रोटी कारने गला कटावै कउनु॥ पृष्ठ – 1374

यह कहाँ की अकलमंदी है कि गले काट काट कर, जीवों का मांस खाकर पेट बढ़ाओ। फिर जब इन कर्मों का लेखा देना पड़ेगा तब तेरा कोई भी साथी नहीं बनेगा।

अनकाए रातड़िआ वाट दुहेली राम।
पाप कमावदिआ तेरा कोइ न बेली राम।
कोए न बेली होए तेरा सदा पछोतावहे।
गुन गुपाल न जपहि रसना फिरि कदहु से दिह आवहे।
तरवर विछुंने नह पात जुड़ते जम मगि गउनु इकेली।
*बिनवंत नानक बिनु नाम हरि के सदा फिरत दुहेली॥*पृष्ठ – 546

शरीर ने तो नष्ट हो ही जाना है। तमोगुणी भोजन करके एक तो तू प्रभु को भूला रहता है, तेरे अन्दर प्रभु का वास है जिसके दर पर पहुँचने से सारे दुख क्लेशों का नाश हो जाता है सारी दुनियाँ का मालिक मित्र बन जाता है, उसे भूल कर तू इन निखिद्धि कर्मों में पड़ कर अपना जीवन बर्बाद कर लेता है और गुरू के वचनों को बिल्कुल नहीं मानता –

लबु अधेरा बंदीखाना अउगण पैरि लुहारी। पृष्ठ – 1191

जब लेखा देना पड़ता है तो मूसलों (मोहलियां) से कूटा जाता है जैसे मूसल मार मार कर धानों का छिलका अलग कर दिया जाता है और लकड़ी की चपटी मार मार कर बाण बनाया जाता है, इसी तरह से पाप दुख रूप होकर दरगाह में इसे चिपकते हैं –

पूंजी मार पवै नित मुदगर पापु करे कुोटवारी। पृष्ठ – 1191

इसने सतगुरू की बात तो सुनी ही नहीं, फ़रमान आता है –

ओथै हथु न अपड़ै कूक न सुणीऐ पुकार।
ओथै सतिगुर बेली होवै कढि लए अंती वार। पृष्ठ – 1281

यदि सतगुरू बनाया हो तो निकालेगा, निगुरे की रक्षा कौन करेगा? वहाँ तो प्यारे! तुझे किये गये कर्मों की सजा भुगतनी ही पड़ेगी। ये धन वासना के भयानक परिणाम हैं जो इस जीव को बुरी तरह से भटकाते रहते हैं। मन वाहिगुरू जी के चरणों में लीन होने की बजाये अनेक प्रकार की चितवनियां करता हुआ उड़ानें भरता रहता है और फिर दुखी होता है –

पंखी बिरख सुहावड़े ऊडहि चहु दिसि जाहि।
जेता ऊडहि दुख घणे नित दाझहि तै बिललाहि। पृष्ठ - 66

भोगों की वासना, धन की वासना से कहीं अधिक खतरनाक होती है। मनुष्य जब भोगों में ग्रस्त होता है तो उससे प्राप्त हुई क्षण भंगुर खुशी बार बार मनुष्य के मन को भोगों की ओर प्रेरित करती रहती है।

एक ऐसी कथा आती है कि श्री राम चन्द्र जी महाराज रूहानी सभा में सुशोभित हैं, वशिष्ट जी कथा कर रहे हैं। श्री राम चन्द्र जी सहित अनेक ऋषि मुनि उन महापुरुषों के वचन श्रवण कर रहे हैं। श्री राम चन्द्र जी का ध्यान अचानक ही दीवार पर चढ़ रहे एक कीड़े की ओर चला गया। आपने उसके आन्तरिक विचार जान लिये और आप ताली बजा कर जोर जोर से हंस पड़े। इस प्रकार अचानक हंसने से सभी की वृत्ति श्री राम चन्द्र जी की ओर हो गई।

वशिष्ट जी ने कथा बन्द करके श्री राम चन्द्र जी से पूछा कि आप बताइये कि इस कथा के दौरान आपके हंसने का क्या कारण था? उस समय श्री राम चन्द्र जी ने वशिष्ट जी को कहा कि आप तो त्रिकाल दर्शी हैं, भूत, भविष्यत, वर्तमान आपसे छिपा नहीं, आप सभी जीव जन्तुओं की आन्तरिक अवस्था को जानते ही हैं। उस समय वशिष्ट जी बोले कि आपका भरी सभा में हंसने से, बहुत सारे श्रोताओं और जो अभी उच्च अवस्थाओं में नहीं पहुँचे, उनके अन्दर जिज्ञासा पैदा हो गई कि वे आपके हंसने का कारण जानना चाहते हैं? तब श्री राम चन्द्र जी ने कहा कि मैं तो इस कीड़े को देखकर हंसा हूँ। वशिष्ट जी कहने लगे कि महाराज! आप अपना आशय स्पष्ट करके प्रकट कीजिए। उस समय श्री राम चन्द्र जी ने कहा कि महाराज! देखो, यह जो कीड़ा है इसकी पिछली दो टांगे टूटी हुई हैं। दीवार पर चढ़ता है, फिर गिर जाता है, फिर चढ़ता है, और फिर गिर पड़ता है, पर इसके अन्दर अब जो विचार (फुरना) चल रहा था वह यह है कि 83 लाख 99 हज़ार 999 यौनियों का चक्कर जल्दी से जल्दी पूरा करूँ और मनुष्य का चोला प्राप्त करूँ। फिर मैं विधिपूवर्क निूविघ्नता सहित यज्ञ करूँ जिसके फल स्वरूप मुझे इन्द्र का सिहांसन प्राप्त हो जाए।

श्री राम चन्द्र जी कहने लगे प्यारे! यह कीड़ा इस यौनि से पहले 14 बार इन्द्र के तख्त पर स्वर्ग के राजा के रूप में बिराजमान हो चुका है। इसे इन्द्रलोक के भोगों की स्मृति अभी भूली नहीं है। इसकी रग-रग में वह स्मृति समाई हुई है। इस मूर्ख की इस बात को देखकर कि इसे मानस जन्म प्राप्त करके परम पद की प्राप्ति करनी चाहिए पर भोगों के वशीभूत हुआ यह इन्द्र पद की प्राप्ति चाहता है। जहाँ किन्नर तथा गन्धर्व

बिराजमान हैं, अनेक सुन्दर अप्सरायें नृत्य करती रहती हैं और यह इन्द्र के रूप में सदा ही भोगों में लीन रहता है जिसके फलस्वरूप यह 83 लाख 99 हजार 999 यौनियों के चक्कर काटता है, फिर सौ यज्ञ करके इन्द्र की पदवी प्राप्त करता है। सो इस मूर्ख की इस वासना पर मुझे हंसी आई। एक वासना ने इसे कितने चक्कर में डाला हुआ है?

सांसारिक जीव वासना के चक्कर में घिरे हुए जन्म मरण की शृंखला में पिरोये हुए हैं। एक जन्म धारण करते हैं, मर जाते हैं और फिर अन्य शरीर धारण करते हैं। वासनाएं फिर जन्म में ले आती हैं फिर भी इसे यह ज्ञान नहीं होता कि महापुरुषों की संगत करके नाम दान प्राप्त करके उसकी पालना करूँ तथा महापुरुषों की संगत में कर्म, उपासना, ज्ञान, विज्ञान की मंज़िलें तय करता हुआ परम पद में पहुँच जाऊँ। पर यह खोटी बुद्धि वाला जीव इस बात को नहीं समझता। ऐसे जीवों का स्थान (दर्जा) मनुष्यों के बराबर नहीं हुआ करता, वह तो पशु से भी निम्न स्तर का ढोर हुआ करता है। गुरू महाराज जी का फ़रमान है –

आवन आए त्रिसटि महि बिनु बूझै पसु ढोर।
नानक गुरमुखि सो बुझै जा कै भाग मथोर॥ पृष्ठ - 251

सो इस प्रकार धन वासना का ज़िक्र हो रहा था। यही एक वासना ही जीव को करोड़ों जन्मों में चक्कर कटवाने की समर्थ रखती है फिर बाकी वासनाओं का तो क्या हाल बताया जाए? भोगों में पड़ा हुआ व्यक्ति अपनी कन्चन जैसी काया को रोग ग्रस्त कर लेता है, फिर दिन रात दुहाईयां देता है, एक बिमारी अभी दूर नहीं होती, दूसरी तुरन्त आकर घेर लेती है। मन भी रोगी तन भी रोगी हो जाता है, फिर प्रभु का नाम कैसे जपेगा।

खसमु विसारि कीए रस भोग। तां तनि उठि खलोए रोग॥
पृष्ठ - 1256

ये सभी बातें वासनाओं के कारण ही हुआ करती हैं।

धन वासना एक बहुत ही प्रबल वासना है। पहले तो धन इकट्ठा करने के लिए बहुत पाप करने पड़ते हैं, छल कपट करने पड़ते हैं। जब धन इकट्ठा हो जाए तो फिर इसकी सुरक्षा करने की हर समय चिन्ता लगी रहती है। इसे इकट्ठा करने के लिए जो पाप किए हैं वे सभी मरणोपरान्त जीव आत्मा के साथ जाएंगे। जो धन जायदाद इकट्ठी की है वह यहीं पर रह जाएगी। जैसा कि फ़रमान है –

कपड़ु रूपु सुहावणा छडि दुनीआ अंदरि जावणा।
मंदा चंगा आपणा आपे ही कीता पावणा।

हुकम कीए मनि भावदे राहि भीड़ै अगै जावणा।
नंगा दोजकि चालिआ ता दिसै खरा डरावणा।
करि अउगण पछोतावणा॥ पृष्ठ - 471

जिसका मन, धन एकत्रित करने में लग जाये, वह न तो पुण्य करता है, न ही धन को किसी अच्छे कार्य में लगाता है। बेगारी बन कर अपना जन्म संसार से वृथा गवाँ कर खाली हाथ संसार से रोता हुआ चला जाता है –

धाइ धाइ क्रिपन स्रमु कीनो इकत्र करी है माइआ।
दानु पुंनु नही संतन सेवा कितही काजि न आइआ।
करि आभरण सवारी सेजा कामनि थाटु बनाइआ।
संगु न पाइओ अपुने भरते पेखि पेखि दुखु पाइआ॥
सारो दिनसु मजूरी करता तुहु मूसलहि छराइआ।
खेदु भइओ बेगारी निआई घर कै कामि न आइआ। पृष्ठ - 712

जब मनुष्य अन्त समय में शरीर छोड़ रहा होता है उस समय धन जोड़ने के लिए किए गये पाप फिल्म की तरह सामने आ जाते हैं क्योंकि ऐसा फ़रमान है –

इसु जर कारणि घणी विगुती इनि जर घणी खुआई।
पापा बाझहु होवै नाही मुइआ साथि न जाई॥ पृष्ठ - 417

माया वही सुख देती है जिसे उचित स्थान पर खर्च किया जाये, जरूरत मन्दों की सहायता की जाए तथा मानवमात्र की भलाई के लिए खर्च करके बहुत सारे सुख के साधन उपलब्ध कराये जाएं –

जिस ग्रिहि बहुतु तिसै ग्रिहि चिंता।
जिसु ग्रिहि थोरी सु फिरै भ्रमंता।
दुहू बिवसथा ते जो मुकता सोई सुहेला भालीऐ॥ पृष्ठ - 1019

ऐसा भी बाणी में फ़रमान आता है –

सूमहि धनु राखन कउ दीआ मुगधु कहै धनु मेरा। पृष्ठ - 479

कन्जूस जो माया इकट्ठी करता ही चला जाए और खर्च न करे यदि उसका धन चला जाए तो सारी जिन्दगी उसके रोने धोने में ही बीत जाती है जैसा कि –

रोवहि किरपन संचहि धनु जाइ॥ पृष्ठ - 954

व्यंग्य भाव में दुनियाँ के कन्जूसों का ज़िक्र करते हुए बहुत ही शिक्षा प्रद अलंकार वचन लिखे हैं जैसे कि एक कन्जूस अपने मन में कहता है कि मेरे पास बेअन्त धन हो जाए पर यदि मेरे इस धन में से कोई एक पैसा भी ले जाये तो मैं अन्देशे में पड़ कर मर जाऊँगा –

पन्द्रह क्रोड़ सात लाख ते हज़ार बारां,
एता धन होंदे शूम आखे किथूं खावांगे।
पुत्रां नूं आखे ले आओ मुंझ ते वटो बाण,
राति के गुज़ारे जोगे पैसे खट लिआवांगे।
डुल गिया तेल शूम दाड़ी नूं घसावे लोको,
इतना हरजा असीं किउं कर जर जावांगे।
दाणिआं दे पीहण विचों ले गया इक कीड़ा दाणा,
तिसदे अंदेसे नाल रोटी न पकावांगे।

एक और कन्जूस माया को कहता है कि मैं तेरे साथ इतना प्यार बान्ध लूंगा यदि कोई मेरी चमड़ी भी उतार दे तो भी मैं तुझे नहीं जाने दूँगा। यदि तू दान करने वालों के घर में चली जाये तो वहाँ तेरा मान नहीं होगा क्योंकि वे तेरे साथ प्रीत नहीं करेंगे। यदि तू मेरे घर में हो, मैं तो तुझे सम्भाल कर रखूँगा। न तो इसे कोठियों पर खर्च करूँगा, न अपने पुत्रों, रिश्तेदारों को दूँगा, न स्वंय ही कुछ खाऊँगा और न ही किसी को खाने दूँगा। यदि कोई मेरी चमड़ी भी उधेड़ दे तो भी मैं उसे एक दमड़ी भी नहीं दूँगा –

दाता ग्रहि जाती तो कदर हूँ न पाती,
कबी मेरे घर आई तो वधाई गाउ बावरी।
खाने दर खाने तुइखाने दरवास देउं
होईं न उदास येह मन चाउरी।
खाऊं न खिलाऊं मर जाऊं तो सिखाइ जाऊं ,
पूत अर नाती हूँ को अपनो सुभाउरी।
चमरी उतारे तो दमड़ी न देहूँ काहूँ,
माइआ को शूम कहे बैठी गुण गाउरी।

योग वशिष्ट में वशिष्ट जी कहते हैं कि हे राम! बहुत बुद्धिमान सूरमा कृतज्ञ उपकार को मानने वाले, सभी के साथ प्रीत रखने वाले, कोमल हृदय मनुष्यों को भी यह माया इस प्रकार मलीन कर देती है जैसे मिट्टी की मुट्ठी यदि रतनों पर फैंक दी जाये तो रतनों की चमक एक दम समाप्त हो जाती है और वे गन्दे दिखाई देने लग जाते हैं। हे राम जी! यह माया सुख देने के लिए नहीं आती, इसके आने से दुख बढ़ जाया करता है। यदि इसकी रक्षा करो तो यह रक्षा करने वाले का नाश ऐसे कर दिया करती है जैसे विष की गन्दल (कोपलें) खाकर, मनुष्य का नाश हो जाता है।

गुरू नानक पातशाह जी संसार का भ्रमण करते हुए जब फारस में गये तो वहाँ आपने देखा कि लोगों के घर टूटे फूटे पड़े हैं, घर में कोई सामान नहीं है, बैल इत्यादि भूखे मर रहे हैं, कपड़े फटे चीथड़े पहने हुए

हैं। ज़मीन बंजर हो गई है, कोई फसल पैदा नहीं होती। किसी के चेहरे पर खुशी नहीं है, सभी उदास उदास से दिखाई देते हैं। इस समय गुरू नानक पातशाह ने सियाने लोगों को बुलाकर पूछा कि तुम्हारा हाल तो ऐसा है जैसे कि भूत-प्रेतों ने देश को उजाड़ कर रख दिया हो। तुम्हारे हृदय में से तो ठण्डी आहें निकलती हैं। देखो, सारा देश वीरान पड़ा हुआ है, ज़मीनों में हल नहीं चलाये गये, सिंचाई नहीं की गई। थोड़ा बहुत अनाज तुम कठिन परिश्रम करके उत्पन्न करते हो उससे पेट की भूख मिटा लेते हो। क्या तुम्हारा राजा तुम्हारा ख्याल नहीं करता? क्योंकि राजा का यह कर्तव्य होता है कि प्रजा की देख भाल करे तथा यह जानने का प्रयास करे कि यदि मेरी प्रजा दुख में है तो दुख का कारण पता करके उसे निवृत करे, राजा का कर्म दया करना होता है –

नानक चुलीआ सुचीआ जे भरि जाणै कोइ।
सुरते चुली गिआन की जोगी का जतु होइ।
ब्राहम्ण चुली संतोख की गिरही का सतु दानु।
राजे चुली निआव की पड़िआ सचु धिआनु।   ***पृष्ठ - 1240***

क्या बात है तुम्हारे चेहरे मलीन हो गये हैं?

उस समय उनमें से एक सियाने व्यक्ति ने बताया कि हे अल्लाह स्वरूप पीर! आज तक कोई मनुष्य ऐसा नहीं आया जो हमारे दुख को जानने के लिए हमसे कुछ पूछता। हम आपके बहुत धन्यवादी हैं कि आपने उसी nerve (नब्ज़) पर हाथ रखा है जहाँ असली बिमारी का निवास होता है। आपके प्यार भरे वचन सुनकर हमारे नेत्रों में से आँसू स्वत: ही निकल रहे हैं।

गुरू महाराज ने कहा कि तुम अपना दुख बताओ कि क्या है? उस समय उन्होंने कहा कि महाराज! हमारा जो बादशाह है उसे खबत (दिमागी बिमारी) हो गई है। वह चाँदी तथा सोने के सिक्के इकट्ठे करने के चक्कर में पड़ा हुआ है। अपनी प्रजा के लिए कुछ भी नहीं कर रहा। खेती करने के लिए हमें कुएं लगवाने की जरूरत है, बैल खरीदने के लिए धन की जरूरत है, न ही धन किसी सेठ के पास मिलता है क्योंकि राजा ने सारा धन अपने काबू में कर लिया है। इसलिये हम कुछ भी नहीं कर सकते। हम स्वंय ही धरती की खुदाई करते हैं और स्वंय ही हाथों से बारीक करके उसमें बीज डालते हैं। परमात्मा की कृपा पर छोड़ देते हैं। यदि मामूली सी वर्षा हो जाए तो हम ज़मीन को खोद खोद कर मिट्टी के ढलों को तोड़ तोड़कर जड़ों की नमीं को बचा लेते हैं। इस प्रकार हमारी खेती चार-चार दाने पैदा करती है जिससे हमारा गुज़ारा बहुत ही कठिनाई

से हो पाता है हम कपड़ों के लिए कपास आदि उत्पन्न नहीं कर सकते। इसलिये हम वस्त्रहीन सूर्य की गर्मी, सर्दी इत्यादि सहन करते हैं। हे अल्लाह के रूप! हमारी कहानी अति दुखदायी है। एक बार हमारे राजा कांरू ने अपने अमीरों, वज़ीरों तथा कर्मचारियों को एकत्रित करके पूछा कि किसी आदमी के पास कोई पैसा तो नहीं है? पुलिस सहित सभी ने एक ही स्वर में कहा कि अब तो किसी के पास भी कोई पैसा नहीं है। जितने भी धातु के सिक्के बनाए थे वे सभी आपके खजाने में जमा हो गये हैं तथा आपके धन की गिनती 40 गंज (सिक्कों का बहुत बड़ा ढेर) है। बादशाह ने कहा कि नहीं, नहीं, ऐसी बात नहीं है, अभी भी लोगों के पास पैसा है। मैं स्वंय निकलवा लूँगा।

कहने लगे हे सच्चे सांई! उसने अपनी लड़की को बग्घी में बिठाया और सारे शहरों में घुमा कर ऐलान कर दिया कि मेरी शहज़ादी एक रुपये में बिकती है जो भी खरीदेगा वह बादशाह का दामाद बन जाएगा। उस समय एक नौजवान अपनी माँ के पास आया और कहने लगा कि माँ! मुझे एक रुपया दे, मैंने उस लड़की के साथ शादी करनी है। उसकी माँ ने कहा बेटा! कांरू बादशाह ने तो एक रुपया तो क्या एक पैसा भी किसी के पास नहीं छोड़ा। तो उस लड़के ने कहा कि मेरे ज़िन्दा रहने का कोई मतलब नहीं। मैंने तो शादी उसी शहज़ादी से ही करवानी है। तब उसकी माँ ने मज़बूर होकर कहा कि जा अपने पिता की कब्र खोद ले। जब वह मर गया तो उसके कफन के साथ उसके मुँह में एक रुपया भी डाला था। नवयुवक ने वैसा ही किया, कब्र खोद डाली और एक रुपया अपने मृत पिता के मुख से निकाल लिया।

जब उसने रुपया कोतवाल को दिया तो उस समय उन्होंने इसे गिरफ्तार कर लिया। कांरू बादशाह के सामने पेश किया गया और कहा कि महाराज! इस नौजवान के पास से एक रुपया मिला है। आपका हुक्म था कि कोई भी व्यक्ति एक अधेला (सिक्का) भी अपने पास न रखे। आज्ञा दीजिए इसे क्या सजा दी जाये? तब बादशाह ने कहा कि इसे मौत की सजा दी जानी चाहिए क्योंकि इसने शाही हुक्म की अवहेलना की है। पर फिर स्वंय ही पूछने लगा कि तेरे पास यह रुपया कहाँ से आया? तो उस नवयुवक ने अपनी सारी कहानी, माँ के पास जाकर रोने की तथा पिता की कब्र खोदने की सुनाई।

सभी लोग कहने लगे, "हे खुदावन्द स्वरूप पीर जी! यदि आप अल्लाह की जात-ए-खास हैं तो हमारे दुखों का ज़रूर कोई न कोई

इलाज सोचोगे?'' सो उस बादशाह ने सारी कब्रें खुदवा डालीं और हज़ारों वर्षों से दबे मुर्दों के मुँह में से रुपये निकलवा लिये।

गुरू नानक पातशाह ने उनकी हकीकत सुनी तथा स्वंय वाहिगुरू जी के ध्यान में अर्न्तध्यान हो गये। नेत्र खोले और कहा कि प्रेमियो! आप चिन्ता मत करो, हम बादशाह को जाकर मिलते हैं। उसे समझाएगें। तुम्हारे घर धन दौलत, खेती बाड़ी, सड़के, हस्पताल तथा अन्य कार्यों में खर्च करेंगे। तुम मेहनत करना और अमीर हो जाओगे। अल्लाह ताला को याद में से मत निकालना। वह सदा अपने आदमियों को रोटी देता है, तुम्हें भी देगा। तुम्हारी भी प्रार्थना सुनी जायेगी। तुम्हारे दुख दूर हो जाएंगे।

ऐसा कहकर गुरू पातशाह, भाई बाला तथा मरदाना सहित कांरू के महलों में चले गये। दिन काफी चढ़ चुका था। गुरू महाराज जी ने कांरू के द्वार पर पहरा दे रहे पहरेदारों को कहा कि अपने बादशाह को कहो कि तीन दरवेश आए हैं। वे तेरे साथ बातचीत करना चाहते हैं। वे बहुत जल्दी में हैं। इसलिये जल्दी से जल्दी वह हमसे मुलाकात करें। सांई के दरवेशों की खुशी उस पर होगी अन्यथा खुदा की तरफ से कहर (जुल्म) नाज़ल होने वाला है उसकी जिम्मेवारी बादशाह के सिर पर होगी क्योंकि दरगाह में सारे फरिश्ते इसके कर्मों का दण्ड देने के लिए हुक्म शादर (अमल) करवाने के लिए तत्पर हैं। जाओ, अपने बादशाह को कह दो।

इन जलाल भरे वचनों का प्रभाव पहरेदारों पर बहुत अधिक हुआ। उन्होंने बादशाह को कह दिया कि कोई परमात्मा रूप दरवेश परमात्मा के द्वार पर खड़े आपका इन्तज़ार कर रहे हैं। उन्होंने जो वचन किये हैं वे भी हज़ूर को बता देते हैं। दरवेशों के वचन सुनकर राजा भी काँप उठा और सन्देशा भेज दिया कि मैं अति शीघ्र ही दरवेशों की अगवानी के लिये आ रहा हूँ।

इधर गुरू नानक पातशाह, भाई बाला तथा मरदाना सहित किले के बाहर जो छोटी छोटी ठीकरियां पड़ी हुई थीं वे इकट्ठे करने लग पड़े। बड़ी जल्दी जल्दी उठा रहे थे और एक थैली भर ली। बादशाह द्वार से बाहर आया तो क्या देखता है कि दरवेश सांई टूटे हुये मटकों की ठीकरियों के ढेर लगाए जा रहे हैं। वह आगे बढ़ा। गुरू नानक पातशाह की अगवाई की। दर्शन किये आज पहला दिन था कि उसके मन में शान्ति आई, अन्यथा माया की अग्नि से वह तपता रहता था। उसने पूछा कि दरवेश सांई! आप क्या कौतुक कर रहे हो? पर आपने कोई जवाब न दिया। दूसरी बार फिर पूछा तो गुरू महाराज जी ने बादशाह कांरू को कहा ये

ठीकरियां हमें बहुत अच्छी लगी हैं। हम यह चाहते हैं कि जब यह रूह बार–ए–दरगाह (दरगाह खुदा) के पास जायेगी तो हम यह ठीकरियां साथ ले जाना चाहते हैं। तब बादशाह ने कहा कि दरवेश सांई आप कोई मस्ताने पीर लगते हो। पर जब मैं आपके चेहरे पर जलाल देखता हूँ तो मुझे यह यकीन होता है कि आप खुदा का रूप ही हो। यह बात विस्तार पूर्वक बताओ कि ये ठीकरियां बार–ए–गाह खुदा में कैसे पहुँचेगीं? तब गुरू महाराज जी ने सहज स्वभाव में ही कहा कि जहाँ तूने 40 गंज इकट्ठे करके रखे हुए हैं वे भी तो तेरे साथ जायेंगे ही, वहाँ हमारी ये ठीकरियां भी साथ ले जाना। उस समय कांरू बादशाह की आँखे खुल गई, मौत सामने दिखाई देने लगी, अज़राईल फरेश्ता दण्ड देता हुआ नज़र आया। कहने लगा, ''दरवेश सांई! आपने मेरे नेत्र खोल दिये। यह सब कुछ तो मेरे साथ नहीं जायेगा। मैं एक बहुत भारी भूल कर चुका हूँ। आप कृपा करो, बख्शीश करो और वह रास्ता बताओ जिससे मेरे द्वारा किए गये पापों का फल दूर हो जाए। उस समय गुरू महाराज जी ने नसीहतनामा उच्चारण किया जो जन्म साखियों में प्रचलित है –

कीचै नेकनामी जो देवै खुदाइ।
जो दीसै ज़िमी पर सो होसी फनाहि।
दायम व दौलत कसे बेशुमार।
न रहिंगे करोड़ी न रहिंगे हज़ार।
दमड़ा तिसीका जो खरचै अर खाइ।
देवै दिलावै रजावै खुदाइ।
होता न राखै अकेला न खाइ।
तहकीक दिलदानी वही भिशत जाइ।
कीजै तवाज़िआ न कीजै गुमान।
न रहिसी इह दुनीयाँ न रहिसी दीवान।
हाथी व घोड़े व लशकर हज़ार।
होवेंगे गरक कुछ लागै न बार।
दुनीयां का दीवाना कहे मुलखमेरा।
आई मौत सिरपर न तेरा न मेरा।
केती गई देख वाजे वजाइ।
वही एक रहिसी जो साचा खुदाइ।
आइआ अकेला अकेला चलाइआ।
चलते वकत कोई काम न आया।
लेखा मंगीजै किआ दीजै जवाब।
तोबा पुकारै तो पावे अज़ाब।
दुनीया पै कर ज़ोर दमड़ा कमाइआ।
खाइआ हंढाइआ अजाईं गवाइआ।

आखर पछोताणा करे हाइ हाइ।
दरगह गइआ ते तूं पावहि सजाइ।
लानत है तैंकू व तैंडी कमाई।
दगेबाज़ी करके दुनीयाँ लूट खाई।
पीए पिआले औ खाए कबाब।
देखो रे लोको जो होते खराब।
तिस का तूं बंदा तिसी का सवारिआ।
दुनीयाँ के लालच तूं साहिब विसारिआ।
न कीती इबादत न रखिओ ईमान।
न कीतीआ हिकमत पुकारै जहान।
अंदर महिल के तूं बैठा हैं जाइ।
हरमां से खेलें खुशबोई हवाइ।
न सूझै न बूझै बाहर किआ होइ।
हरामी गरीबां को मारें बिगोइ।
वसती उजाड़ें फिर न वसावें।
कूकें पुकारें तौ दाद न पावें।
लाखों करोड़ी करे बेशुमार।
कई किशन बपुड़ै मरीवें हज़ार।
हाकम कहावैं हकूमत न होइ।
दुनीआ का दीवाना फिरै मसत लोइ।
लूटै मुलक और पहिरे व खाइ।
दोज़क की आतश मारेगी जलाइ।
गरब सिउ न देखो दुनीआ के दीवाने।
हमेशां न रहिगी तूं ऐसी न जाने।
उठावे सभा उस को लागे न बार।
किसकी यिह दुनीयाँ किस के घर बार।
चंद रोज़ चलना किछ पकड़ो करार।
न कीचै हिरस बहुत दुनीयाँ के यार।
शरमिंदा ना हो कुछ नेकी कमाइ।
लानत का जामा तूं पहरें न जाइ।
गफलत करोगे ते खावोगे मार।
बेटी वा बेटा कोई लेगा न सार।
तोबा करो बहुत कीचे न ज़ोर।
दोज़क की आतश जलावेगी गोर।
मसाइक पैकंबर केते शाह खान।
न दीसें ज़िंमीं पर उनों के निशान।
चलते कबूतर जनावर की छाउं।
केते खाक हूए कोई पूछे न नाउं।
चाली गंज जोड़े न रखिओ ईमान।
देखो रे लोको कारू होता परेशान।

नदानी ये दुनीयाँ व फानी मुकाम।
तूं खुद चशमबीनी है चलना जहान।
हर वकत बंदे न खिदमत विसार।
मसती औ गफलत में बाज़ी न हार।
तोबा न कीतीआ करदे गुनाह।
नानक ऐसे आलम से तेरी पनाह॥ *(नसीहतनामा)*

महाराज जी ने कहा कि कांरू! यह धन लोगों की भलाई के लिये खर्च कर दे, सड़कें बनवा, कुएं खुदवा, मकान बनवा, हिकमत खाने (dispensaries) बनवा दे, मकतब (स्कूल) बनवा दे, प्रजा के साथ पूरा पूरा न्याय कर, वे मेहनत करेंगे उन पर जायज टैक्स लगा और अपने खर्च उसमें से पूरे कर। देश विदेश में अपने आदमियों को भेज, जो भी वे धन कमाकर लायेंगे उसमें तेरा भी हिस्सा होगा। तुझ पर जो कहर नाज़ल (ढहने) होने वाला है, फिर वह टल जायेगा। यदि अल्लाह के आदमियों को दुख दिया जाए तो अपने आप को मुसीबतों में डालने का कारण बन जाता है। यदि अल्लाह के आदमियों का दुख सुना जाए तो स्वर्ग में बादशाह को स्थान मिला करता है।

सो इस प्रकार उसके मन में जो धन प्राप्त करने की पागल वासना थी, वह गुरू महाराज जी ने दूर कर दी। उसे सही मार्ग दिखा दिया। खुदा के नाम में लगा दिया संसार में **'नाम'** ही एक ऐसा साधन है जो दुखों को दूर कर सकता है। धन वासना धन एकत्र करने से दूर नहीं हुआ करती। गुरू महाराज जी ने फ़रमान किया है –

असु पवन हसति असवारी। चोआ चंदनु सेज सुंदरि नारी।
नट नाटिक आखारे गाइआ। ता महि मनि संतोखु न पाइआ॥
पृष्ठ - 179

और यह भी फ़रमान किया है –

सगल स्रिसटि को राजा दुखीआ।
हरि का नामु जपत होइ सुखीआ। *पृष्ठ - 264*

इसी प्रकार संसार को लूटकर सिकन्दर बादशाह अन्त समय में खूब रोया कि मेरे साथ यह धन नहीं जाएगा पर मेरे द्वारा किये गये पाप मेरे से भी पहले ही दरगाह में जाने के लिये तैयार खड़े हैं। हे प्रभु! मेरा क्या हाल होगा। काश! मुझे यदि पहले यह पता होता तो मैं ऐसी गलती पहले ही न करता। माया के चक्कर में सारा संसार फंसा हुआ है जैसे कि –

कई कोटि कीए धनवंत। कई कोटि माइआ महि चिंत।
पृष्ठ - 276

धन वासना मनुष्य के मन की सबसे प्रबल वासना है। बड़ी कठिनाई के साथ 84 लाख यौनियों के बाद मनुष्य का शरीर मिलता है, जिसके अन्दर वाहिगुरू जी ने बहुत ही अलौकिक शक्तियों का भण्डार रखा हुआ है, जिनका संसार में कोई मूल्य नहीं है। जिनमें वाहिगुरू जी का नाम सबसे श्रेष्ठ वस्तु है। वाहिगुरू का नाम यदि हृदय में प्रकट हो जाए तो हर प्रकार की भूख मिट जाया करती है। धन आदि की कोई भी वासना उसके मन में पैदा नहीं होती क्योंकि वह सोने तथा मिट्टी को एक समान समझता है। नाम कोई ऐसे ही फालतू का जाप नहीं है इसमें सभी शक्तियाँ समाहित हैं। शक्तियों की लालसा भी नाम पूरी कर देता है। नामी पुरूष धन को दुर्गन्ध वाली मिट्टी समझता है इसलिए वह अपनी शक्तियों का प्रयोग करके कभी भी धन प्राप्ति का कोई भी आडम्बर नहीं रचता क्योंकि 'नाम' धन के मुकाबले में बहुत अमूल्य वस्तु है। नामी पुरूष यदि चाहे, जिधर भी देखे, सोना ही सोना बना सकता है।

एक कथा आती है कि गुरू दशमेश पिता जी के समय एक पूर्ण नामी पुरूष जिसके अन्दर पूर्ण ज्योति जगमग करती हुई प्रकाशमान थी और जिसे सारी प्रकृति में से नाम की परम श्रेष्ठ धुन की टंकार हर समय सुनाई दिया करती थी जिसे प्रभु की ज्योति हर जीव जन्तु धन, पक्षियों, मनुष्यों में प्रत्यक्ष रूप में दिखाई देती थी। वह सेवा किया करता था और प्यासों को पानी पिलाने के लिए अपने पास चमड़े की मशक रखता था। वह मशक भर कर पानी पिलाता रहता या ऐसा भी हुआ करता था कि अमन अमान (शान्ति) के समय उसने रोही (रेतीले टीलो) में बैठ जाना और राहगीरों को पानी पिलाना। पंछियों के लिए पानी के बर्तन भर कर रख देना, ऐसे चौड़े तल के बर्तन भी रखने जिसमें पन्छी आदि स्नान कर लिया करते थे। जंगलों में जानवरों के लिए मिट्टी के कुण्डे (कसोरे) पानी से भर कर रख देता। उसकी सारी दृष्टि प्रभु पर केन्द्रित थी। उसे हर स्थान पर प्रभु के अतिरिक्त और कोई भी नज़र नहीं आता था।

एक बार ऐसा हुआ कि आनन्दपुर साहिब का युद्ध शुरू हो चुका था। उसमें आक्रमणकारियों ने देखा कि जिस किले में गुरू दशमेश पिता जी रहते हैं वह किसी तरह भी तोड़ा नहीं जा सकता। उधर वे मोर्चा डालकर बैठ गये इधर खालसा जी ने मोर्चा डाल दिया और हर नकलो हरकत पर नज़र रखते थे। भाई घनईया जी जानते थे कि इन फौजों में पानी की बहुत कमी है सो अपनी मशक उठाकर दोनों फौजों को पानी पिलाये जाते थे। इन पर न तो आक्रणकारी हमला करते थे, न ही खालसा फौजें हमला करती थीं। अन्त में आक्रमकारियों ने बड़ी शक्ति के साथ

आनन्दगढ़, केशगढ़ किलों पर हमला किया। पर सिक्खों ने उनके हमले पछाड़ कर रख दिए। घमासान युद्ध मचा हुआ था। भाई घनईया जी अपनी मशक लेकर जो भी घायल होता उसका मुँह साफ करके, जल उसके मुँह में डाल दिया करते। वह मरता हुआ घायल योद्धा पुनः तैयार होकर लड़ाई लड़ने लग जाता था। इस प्रकार सारा दिन वह पानी पिलाता रहा पर फौजी इतने अधिक घायल हो चुके थे कि सारे मैदान में पानी! पानी! की आवाज़ आ रही थी। भाई घनईया जी आज दौड़ दौड़ कर कुएं में से मशक भरते हैं और जहाँ कहीं से भी मैदाने जंग में से आवाज़ आती वहीं पर मशक लेकर पहुँच जाते हैं। सूरज छिप गया, मैदाने जंग में अन्धेरा छा गया। दोनों फौजें पालकियाँ लेकर अपने अपने घायलों को उठा रही हैं। युद्ध के उच्च नियमों के अनुसार घायलों को कोई नहीं मार रहा था। वे तड़फ रहे थे। भाई घनईया पानी पिलाते रहे।

रहरास साहिब जी का पाठ होने के उपरान्त जब गुरू दशमेश पिता जी ने सभी से युद्ध का हाल पूछा तो सभी ने अपना अपना हाल बताया तो इसी बीच सिहों के जत्थेदार ने कहा कि सच्चे पातशाह! अपनी फौज में जो घनईया साधु है ऐसे लगता है कि वह आक्रमणकारी फौजों का कोई गुप्तचर है क्योंकि जब आपने उसे हुक्म दिया था कि भाई घनईया शस्त्र पहनकर चला करो। तो उसने श्री साहिब का मुट्ठा उलटा पहना हुआ था। उसका मुट्ठा पीठ की ओर था। आप जी ने बुलाकर पूछा कि घनईया! तूने तलवार का मुट्ठा पीठ की ओर क्यों कर रखा है? तो वह बोला सच्चे पातशाह! आप जी को याद होगा कि उसने यह बात कही थी कि पातशाह! मुझे तो संसार में कोई भी ऐसा नज़र नहीं आता, जिसे मैं अपने हाथों से मारूँ पर यह शस्त्र आपने बख्श ही दिया है, यह मरने मारने के लिए होता है क्योंकि सभी इस शस्त्र का प्रयोग कर रहे हैं पर मेरा वैरी इस संसार में कोई है ही नहीं। यदि कोई वैरी हो भी तो उसे कोई तकलीफ न उठानी पड़े, मेरी पीठ में से पीछे से तलवार निकाल कर, मार दे। सच्चे पातशाह! उस समय भी आप मुस्करा कर चुप हो गये थे। आज सच्चे पातशाह! वह घायलों को पानी पिलाता रहा। उसने एक बार भी नहीं देखा कि यह आक्रमणकारियों का फौजी सिपाही है। कई बार तो ऐसा भी होता था कि वह हमलावर फौजों के घायलों को पानी पिला कर खालसा फौज के जवानों को पानी पिलाता था। कई बार सिंह नाराज़ भी हो जाते थे। उसने एक ही रट लगाई हुई थी और ऊँची ऊँची आवाज़ में बोलता था, ''तूं हीं, तूं हीं, तूं ही, तूं हीं तूं हीं तूं हीं''। हम उसकी ''तूं हीं तूं हीं'' तू को पसन्द नहीं करते थे। सच्चे पातशाह! पता नहीं वह पाखंड

करता था या सचमुच ''तूं हीं-तूं हीं'' कहता था क्योंकि आपने भी ''तूं ही-तूं ही'' 16 बार 16 पहर का प्रतीक बनाकर अकाल उस्तति में दर्ज़ किया है।'' गुरू महाराज जी ने फ़रमान किया कि भाई घनईया को हाज़िर करो।

दो सिख भाई घनईया के डेरे में चले गये पर वह अभी तक मैदाने जंग में पानी पिला रहा था। चाहे रात के 9 बजे से भी कुछ अधिक समय हो चुका था। सेवादारों ने बताया कि वह अभी रणक्षेत्र में से ही वापिस नहीं लौटा। उस समय सिंह वहाँ पहुँचते हैं, उन्होंने ''तूं ही-तूं हीं'' की आवाज़ सुनी। उसी दिशा की तरफ चले गये। उन्होंने आस पास देखा कि दोनों दलों के सेवादार पालकियों वाले अपने अपने घायलों को उठा रहे थे। जब भाई घनईयां के पास सिंह पहुँचते हैं तो उसने एक मुगल सरदार का सिर अपनी जंघा पर रखा हुआ था और उसकी मूर्च्छा हटाकर उसके मुँह में पानी डाल रहा था। वह भाई घनईया से बात कर रहा था कि तू कौन है? तो भाई घनईया जी ने कहा कि मैं गुरू दसवें पातशाह जी का गरीब सा सिक्ख हूँ। तो उस मुगल सरदार ने कहा कि मैं तुझे बहुत बड़ा इनाम देना चाहता हूँ पर मैं इस समय मैदाने जंग में पड़ा हूँ। तुझे पता है कि तू किसको पानी पिला रहा है? तब भाई घनईया जी ने कहा कि मैं इसके सिवाय और कुछ नहीं जानता कि मैं जिसे भी पानी पिला रहा हूँ वह मेरे प्रभु का रूप है। उसने कहा भाई घनईया! तेरे मन में हम मुगलों के लिए वैर नहीं है? तो भाई घनईया ने कहा कि खान साहिब मेरा सतगुरू कहता है -

बिसरि गई सभ ताति पराई।
जब ते साधसंगति मोहि पाई॥
ना को बैरी नही बिगाना सगल संगि हम कउ बनि आई॥

पृष्ठ - 1299

मेरा सतगुरू फ़रमान करता है कि किसी से भी वैर मत करो क्योंकि सभी के अन्दर एक ही ज्योति क्रिया कर रही है। सारी क्रिया हुक्म के अन्दर चल रही है -

ववा वैरु न करीऐ काहू। घट घट अंतरि ब्रहम समाहू॥

पृष्ठ - 259

आपके मज़हब के महान उच्च सूफी पीर फरीद जी हुए हैं उनका भी फ़रमान है -

फरीदा बुरे दा भला करि गुसा मनि न हढाइ।
देही रोगु न लगई पलै सभु किछु पाइ॥ *पृष्ठ - 1381*

खान जी! हम तो सतगुरू के वचनों पर अपनी जान कुर्बान कर रहे हैं। हमारे लिये ये वचन इलाही हुक्म हैं। सिहों ने प्रार्थना की, ''सच्चे पातशाह! हमने उस समय भाई घनईया जी को आपका सन्देश सुनाया। उसने फिर भी उस खान को पानी पिलाया, सहारा दिया, होश में लाया। सच्चे पातशाह! यह वही जरनैल है, जिसने आपको कैद करने का या शहीद करने का सिर पर बीड़ा उठाया था। सिंह तो उसे मार कर ही फैंक आए थे पर भाई घनईया ने पुनः उसे जीवन दान दे दिया।

भाई घनईया को आपने कहा कि प्रेमी! खालसा तेरी शिकायत करता है, तू बता किसको पानी पिलाया है? भाई वीर सिंह जी इस उच्च अवस्था के बारे में इस प्रकार फ़रमान करते हैं –

''तैनूं पिआ पिलावां पानी, सिर मेरे दे साईं
''तुरक अतुरक न दिसदा मैनूं, तूं सारे दिस आईं।
''पिआरे दे इक पिआर प्रोता, उस दी सेव करावां;
''उस नूं देखां, उसनूं सेवां, पाणी उनूं पिलावां।''
हस्से ते गल लाइआ पयारा, डब्बी हथ फड़ाई :-
''पाणी नाल मलहम बी रखीं, लोड़ पई ते लाईं''

(कलगीधर चमतकार) पृष्ठ - 746

गुरू महाराज जी ने भाई धनईया के साथ नाराज़ होने की बजाये पूर्ण प्यार भरी दृष्टि से देखा और मुख से फ़रमान किया भाई घनईया! निहाल-निहाल-निहाल। ये अक्षर क्या थे, सुनते ही बज्र कपाट पूरी तरह से नष्ट भ्रष्ट हो गये और एक ही परमेश्वर की ज्योति निश्चय पूर्वक संसार में दृष्टिमान हो गई। भाई घनईया जी ने गुरू महाराज जी को नमस्कार की और कहा सच्चे पातशाह! तूं ही तूं हीं। तेरे बिना संसार में और कोई है ही नहीं। गुरू महाराज जी ने उस समय एक मरहम का बड़ा डिब्बा मंगाया और साथ ही पट्टियाँ दीं और कहा कि घनईया! आगे से जब भी तू मुझे पानी पिलाया करेगा उस समय मेरे जख्म भी देख लिया कर और मरहम लगाकर पट्टी भी बान्ध दिया कर और साथ ही यह फ़रमान किया कि भाई घनईया! तूने परम पद की प्राप्ति कर ली है। तुझे गुरू ने अटल पदवी प्रदान कर दी है। हमारी तरफ से तुझे छुट्टी है, संसार जल रहा है इन्हें ईर्ष्या वैर, द्वैष, नफरत से स्वस्थ करके प्रभु नाम के साथ मिला।

उसके कुछ समय बाद भाई घनईया जी पंजाब के पश्चिमी भाग में आ गये। वहाँ से एक रास्ता जाया करता था वहाँ 200 मटके रोज़ पानी के भर कर रखते और प्यासे राहगीरों को जल पिलाते। वही मुगल खान जब स्वस्थ हो गया तो वह भाई घनईया की तालाश में घर से निकल पड़ा

भाई घनईया के हाथों से स्पर्श हुआ जल उसने आब-ए-हियात (अमृत) बनकर पीया था। उसके मन में गुरू दशमेश पिता के लिए बहुत ही प्यार की भावना उमड़ पड़ी थी उसके मन में से द्वैत खत्म होकर एक ही बात हृदय में चल रही थी -

अवलि अलह नूरु उपाइआ कुदरति के सभ बंदे।
एक नूर ते सभु जगु उपजिआ कउन भले को मंदे॥
लोगा भरमि न भूलहु भाई।
खालिकु खलक खलक महि खालिकु पूरि रहिओ स्रब ठांई।
माटी एक अनेक भांति करि साजी साजनहारै।
ना कछु पोच माटी के भांडे ना कछु पोच कुंभारै॥
सभ महि सचा एको सोई तिस का कीआ सभु कछु होई।
हुकमु पछानै सु एको जानै बंदा कहीऐ सोई।
अलहु अलखु न जाई लखिआ गुरि गुड़ु दीना मीठा।
कहि कबीर मेरी संका नासी सरब निरंजनु डीठा॥ पृष्ठ - 1349

उसे पता चला कि भाई घनईया जी दूर पंजाब की सीमा के पास निवास रखे हुए हैं। वह वहाँ पर पूछता हुआ पहुँच गया। भाई घनईया जी उस समय एक नदी के किनारे समाधिस्थ थे, स्व आपे में लीन थे। उन्होंने जब नेत्र खोले, समाधि से उठे तो मुगल खान ने सिर झुकाकर प्रार्थना की कि पीर जी! मैं वही मुगलखान हूँ जो स्वार्थ और झूठ में अन्धा बना हुआ गुरू दशमेश पिता जी पर फौजें लेकर हमला करने आया था। गुरू दशमेश पिता, वह तो वही हैं, उनके बारे में मैं कुछ नहीं कह सकता। वह तो साक्षात अल्लाह का रूप हैं। आप पर, उस अल्लाह की अपार कृपा है। मैं अपने खानदानी विरासत में से मिली वस्तु आपके चरणों में भेंट करना चाहता हूँ। कहने लगा पीर जी! यह अति कीमती पारस है, जिसे लोहे से स्पर्श करके सोना बना लिया जाता है। पानी पिलाने की सेवा जो आप स्वंय करते हो, इसके स्थान पर आप नौकर रख लो। यह सेवा चाहे अब आप स्वंय मत किया करो। तब भाई घनईया जी ने कहा कि खान साहिब! हमारे पास तो इतना बड़ा पारस है कि उसके सामने तो यह पत्थर का टुकड़ा सा ही लग रहा है। वह इस बात को न समझा और बार बार यही कहता रहा कि आप इस पारस को जरूर ले लो। भाई घनईया जी ने वह पारस ले लिया और नदी में फैंक दिया। यह देखकर वह खान ज़ोर ज़ोर से चिल्लाने लग पड़ा और कहने लगा कि यह वस्तु तो बहुत ही कठिनाई से प्राप्त होती है। कई पुश्तों से हमारे खानदान में चली आ रही है। यह तुमने क्या किया? यदि तुमने नहीं रखना था तो मुझे वापिस कर देते। जब उसने बार बार प्रार्थना की तो भाई घनईया जी

ने कहा कि तुम्हारा पारस हम वापिस दे देते हैं, आप चिन्ता न करो। तो आपने पानी की तरफ हाथ किया और कहा कि इसका पारस वापिस करदो। नदी दो पाटों में बहने लगी, बीच वाला भाग ऊपर उठ गया। भाई घनईया जी ने कहा कि खान साहिब! नदी की यह छोटी सी धारा पार करके, आगे चले जाओ, जितने पारस तुम्हें चाहिए, ले लो। वहाँ पर अनेक प्रकार के पारस पड़े हैं। खान चला गया। जिस पत्थर को भी हाथ लगाता वही पारस। इसका पारस तो छोटी सी पत्थरी ही थी पर वहाँ तो बड़े बड़े पारस पड़े थे। मुगल खान वापिस आ गया और भाई घनईया जी के चरणों में आ शीश नवाया और प्रार्थना की कि हे पीर जी! तेरे पास वह कौन सी वस्तु है जिससे तेरे नेत्रों में इतनी शक्ति कार्य कर रही है कि तेरे एक इशारे से ही नदी दो भागों में बंट गई तथा सभी पत्थर पारस बन गये? मेरा पारस तो एक छोटा सा पत्थर है। आप इतना कुछ होते हुए भी सभी कुछ छिपाए बैठे हो। कृपा करो, मुझे भी वह वस्तु दे दो जिसमें इतनी शक्ति है? उस समय भाई घनईया जी ने नाम दृढ़ करवा दिया। उसने घर बार छोड़ दिया और बाद में अपनी कौम में पीर हुआ, जिसकी गद्दी काफी समय तक हरिद्वार के निकट गंगा नदी के पास चलती रही। पर एक बार बहुत भयंकर बाढ़ आई बाढ़ उसके आदमियों को उस तकिए (समाधि स्थान) सहित बहा कर ले गई। सो दोनों अवस्थाओं की यदि तुलना की जाए तो तुम स्वंय ही निर्णय कर सकते हो कि नाम में कितनी शक्ति है।

सो यह जो लालच है, माया की भूख है उसे दूर करने का केवल मात्र एक ही इलाज प्रभु का नाम है। यदि वासना करनी ही है तो प्रभु के नाम की वासना सुखी कर देती है और जीवन मनोरथ प्राप्त हो जाता है। सो धन वासना सबसे बुरी वासना है जो मनुष्य से अनेक कर्म करवाती है। शरीर त्याग करके जब जीव जाता है तो धन की प्राप्ति के लिए किये गये कर्म सामने आ जाते हैं। उस समय जीव रोता है, फिर उसको कोई भी सहारा नहीं देता जैसे कि –

आपीन्है भोग भोगि कै होइ भसमड़ि भउरु सिधाइआ।
वडा होआ दुनीदारु गलि संगलु घति चलाइआ।
अगै करणी कीरति वाचीऐ बहि लेखा करि समझाइआ।
थाउ न होवी पउदीई हुणि सुणीऐ किआ रूआइआ।
मनि अंधै जनमु गवाइआ॥ ***पृष्ठ – 464***

सो यह आशाएं उन अनेक आशाओं में से एक है जिसे आशा–अन्देशा दोनों दरवाज़े जुड़े हुए करके वर्णन किया है कि भाई! ये वासनाएं

वाहिगुरू के मिलाप में अति विघ्नकारी हैं। दूसरी मलीन वासना पुत्र वासना हुआ करती है।

पुत्र वासना अति भयंकर वासना है। मनुष्य को हर समय यह धुन लगी रहती है कि मेरे घर भी एक पुत्र होना चाहिए। पुत्र प्राप्ति के लिए मनुष्य अपना धर्म भी बेच देता है। जब सन्तान नहीं होती तो माता पिता बहुत दुखी होते हैं। मड़ियों, मसानों, कब्रों को पूजते फिरते हैं। पाखण्डी तान्त्रिकों के पास जाते हैं। अपना धर्म छोड़कर दूसरों के धर्मों के अनुसार मनौतियाँ मानते हैं। विचार सागर में ऐसा लिखा है –

जांको हिंदू कबहुं नहि मांने। पुत्र हेत तहि इश पछाने।
सयद खवाजा पीर फकीरा। मानत जोरत हाथ अधीरा।
भैरउ भूत मनावत नाना। धरत शिवाबल भूमी मशाना।
और यंत्र तावीद घनेरे। लिख मड़वावे पूर गल गेरे॥

विचार सागर

धाूमक इतिहास में एक बहुत प्रसिद्ध कथा आती है कि एक राजा था जिसका नाम चित्र केतू था। उसने अनेक विवाह करवाये और यह आशा करता था कि मेरे घर पुत्र हो परन्तु किसी भी रानी से पुत्र उत्पन्न न हुआ। राजा दुखी रहने लगा। हर समय उसके मन में यही विचार रहता कि मेरा कितना विशाल राज्य है, इसे कौन सम्भालेगा? मैंने इस राज्य को प्राप्त करने के लिए कितने युद्ध किये। पर हे प्रभु! मुझे तूने पुत्र की दात न बख्शी उसने अनेक जगराते करवाये और हर जगराते में महात्मा को कहा करता कि आप प्रार्थना करो कि मेरे घर पुत्र हो जाये। पर अनुभवी महात्मा मना कर देते थे कि तेरे घर पुत्र नहीं होगा, तेरे लेख बिल्कुल सूने हैं।

जैसे जैसे समय बीतता गया, वैसे वैसे पुत्र वासना बढ़ती चली गई। अनेक ऋषियों-मुनियों ने समझाया कि जो संसार में व्यवहार चल रहा है उसके अनुसार पहले तूने ऐसे कर्म किए हैं जिसके परिणाम स्वरूप तेरे घर सन्तान पैदा नहीं हो सकती। पर वह बार बार एक ही बात दोहराता था कि ऋषियों, मुनियों सन्तों में तो ताकत होती है वे रेखा में कील ठोक कर लेख बदल दिया करते हैं। मेरे घर पुत्र हर हालत में होना ही चाहिए। उसे उस समय के प्रसिद्ध ऋषियों ने भी समझाया पर राजा की पुत्र वासना न मिटी।

एक दिन नारद मुनि जी, अंगिरा ऋषि तथा अन्य ऋषियों के साथ घूमते फिरते इस चित्र केतू राजा के शहर में पहुँचे। राजा ने अपना दुख उनको खूब रो रोकर सुनाया। उन्होंने भी अनेक विधियों से राजा को

समझाया पर जब उन्होंने देखा कि इसकी रग रग में पुत्र वासना घर कर चुकी है, इसे जितना मर्जी समझा लो यह नहीं समझेगा। उस समय इन ऋषियों ने कहा कि राजन! हम मंत्र बल द्वारा तेरे घर पुत्र तो पैदा करवा देंगे पर वह जल्दी ही मर जायेगा। फिर तुझे इससे भी अधिक दुख होगा। उस समय राजा ने कहा कि हे महा ऋषियो! मुनियो मैं पुत्र का मुख देखना चाहता हूँ। एक क्षण भर के लिए मैं उस खुशी का आनन्द प्राप्त करना चाहता हूँ जो एक पिता को पुत्र का मुख देखकर हुआ करता है उस समय उन्होंने कहा कि राजन! सुख के बाद दुख आता है वह बहुत भयानक होता है। यदि पहले दुख आ जाये और फिर सुख आ जाये तो दुख की याद मन में से भूल जाया करती है और मनुष्य सुखी रहता है। पर यदि पहले सुख आ जाये और फिर दुख आ जाये तो सुख की स्मृति मन में से न निकलने के कारण मनुष्य बहुत दुखी होता है। उसने कहा कि आप इस बात की परवाह मत करो मैं तो पुत्र का मुख देखकर इतना सुखी हो जाऊँगा कि सुख, दुख के गिराने से भी नहीं मिटेगा। उसकी दृढ़ वासना देखकर उन्होंने एक फल मन्त्र उच्चारण करके दे दिया। उन्होंने यह कहा कि यह फल रानी को खिला देना। समय आने पर तेरे घर पुत्र उत्पन्न होगा।

राजा बहुत प्रसन्न हुआ। फल लेकर रानी को खिला दिया और समय आने पर रानी ने एक पुत्र को जन्म दिया। राजा ने उस पुत्र को रानी से लेकर अपनी गोदी में बिठाया, उसकी प्रसन्नता का कोई ठिकाना ही न रहा। दान पुण्य करने के लिए खज़ानों के भण्डार खोल दिये। दिन आनन्द से भर गया। उस राजा की अनेक रानियाँ थीं उनमें से प्रमुख रानियों ने मिलकर योजना बनाई कि इस एक रानी के पुत्र हो गया, हम हज़ारों रानियाँ अब अपमानित जीवन जीयेंगी क्योंकि इसी ने ही पटरानी कहलाना है। वे रानियाँ ईर्ष्या के कारण अन्धी हो गईं, उन्हें भले बुरे का ज्ञान भूल गया। उन्होंने दासियों को अपने वश में करके राजा के पुत्र को ज़हर खिला दिया। राजा तो दहाड़े मार मार कर रोने लगा। बहुत विलाप करता है। किसी के समझाने पर भी नहीं समझता, हर समय रोता रहता है। महॄष अंगिरा तथा नारद मुनि को समाचार मिला। वे फिर विशेष तौर पर उस राजा को मिलने आए। उन्होंने राजा को बहुत समझाया। राजा ने राज्य त्याग दिया और जंगलों में चला गया, पर उसका चित्त शान्त न हुआ। बहुत साधना की फिर भी मन को शान्ति न मिली और पुत्र के चेहरे को बार बार मन में चितवता रहता है। इस प्रकार हर समय पुत्र की याद में नेत्रों में से आँसू झरते रहते थे। उसने अपना जन्म

पुत्र की याद में ही समाप्त कर दिया।

शास्त्रों में ऐसा लिखा पाया गया है कि जब सन्तान नहीं होती तो माता पिता सन्तान न होने के पक्ष में सब कुछ होते हुए भी ठण्डी आहें भरते रहते हैं और उनका जीवन उजड़े हुए बाग की तरह हुआ करता है। यदि पुत्र की आशा हो जाये और वह गर्भ में ही नष्ट हो जाये जैसा कि गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं –

कई जनम सैल गिरि करिआ।
कई जनम गरभ हिरि खरिआ।
कई जनम साख करि उपाइआ।
लख चउरासीह जोनि भ्रमाइआ॥ पृष्ठ – 176

तो कितना भारी दुख होता है उस दुख को वही जान सकता है। पुत्र को जन्म देते समय माता को कितना कष्ट होता है कई बार तो पेट का आप्रेशन करके पुत्र को पेट में से निकालना पड़ता है और कई बार माताएं अपनी जान भी गवाँ बैठती हैं। यदि पुत्र को जन्म के उपरान्त पोलियो हो जाए तो भी कितना दुख होता है। यदि पुत्र थोड़ा सा जवान हो जाये और मर जाये तो माता पिता को कितना दुख होता है। यदि पुत्र रोगी हो जाये और इसका इलाज करवाने पर भी ठीक न हो, फिर भी मन बहुत दुखी होता है। यदि पुत्र को कोई असाध्य रोग लग जाए तो माता पिता को सदा का दुख रोग लग जाता है। यदि शीतला माता निकल आए तो गधे पर लाल कपड़ा डालकर उनके चरणों में प्रार्थना की जाती है कि मेरे पुत्र को खुश कर दे। अनेक पीरों की पूजा की जाती है। यदि पुत्र नशई बन जाए तो भी माता पिता को काफी दुख होता है चाहे करोड़ों रुपये बैकों में जमा करके रखे हुए हों।

यदि पुत्र को पढ़ने के लिये भेज दिया, इन्जिनियर डाक्टर बना दिया। उसके लिए उसी प्रकार की लड़की तालाश करके विवाह कर दिया तो माता पिता ने उससे बहुत आशाएं लगा रखी थीं पर विवाह के पश्चात पुत्र माता पिता को ऐसे छोड़ देता है कि जैसे कुछ लगता ही न हो। अपनी ऐशो–इश्रत में पड़कर माता पिता को पूरी तरह से भूल जाता है। अब आप स्वंय ही अनुमान लगाओ कि माता पिता को इसका कितना दुख होगा।

आज कलयुग का ज़माना है, आजकल पहले ही माता पिता से बच्चे अलग हो जाते हैं। माता पिता तो बच्चों को प्यार करते हैं, पुत्र, पुत्रियाँ अपने माता पिता को प्यार नहीं करते हैं, वे अपने आप में मस्त रहते हैं। माता पिता ठण्डीं आहें भर भर कर अपना जीवन बिता देते हैं। उस समय

उन्हें सत्य का ज्ञान होता है कि नाम के बिना कोई वस्तु साथ नहीं देती। मरने के बाद साथ देने वाला प्रभु का नाम ही है –

जिह मारग के गने जाहि न कोसा।
हरि का नामु ऊहा संगि तोसा।
जिह पैडै महा अंध गुबारा।
हरि का नामु संगि उजीआरा।
जहा पंथि तेरा को न सिञानू।
हरि का नामु तह नालि पछानू।
जह महा भइआन तपति बहु घाम।
तह हरि के नाम की तुम ऊपरि छाम।
जहा त्रिखा मन तुझु आकरखै।
तह नानक हरि हरि अंम्रितु बरखै॥ पृष्ठ - 264

सो एक ही साथी है वह है प्रभु का नाम। इस मलीन वासना में पड़कर कोई भी अच्छा काम न किया न सन्तों की सेवा की, न सन्तों के सत्संग सुने और अपना जीवन वासनाओं में व्यतीत करके संसार से रोता बिलखता चला जाता है। जिस प्रकार धन वासना की पूत के लिये इकट्ठा किया गया धन यहीं पर ही रह जाता है इसी प्रकार ये पुत्र पुत्रियां संसार में रह जाते हैं। सन्तान माता पिता को अपने किये कर्मों के कारण दुख पहुँचाती है जैसा कि रहतनामें में फ़रमान है –

तनक तमाकू सेवीऐ देव पितर तजि जाइ।
पाणी ता के हाथ कउ मधरा सम अघदाइ।
मदरा दहती सपत कुल भांग दहै तन एक।
जगत जूठ शत कुल दहै निंदा दहै अनेक।

नालायक पुत्र हज़ारों कुलों का नाश कर देता है। नरकों में भेजने का कारण बनता है इसलिए –

जननी जने तां भगत जन कै दाता कै सूरु।
नही तां जननी बांझ रहि काहे गवावै नूर। *(तुलसी दास जी)*

गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं –

जिह कुलि पूतु न गिआन बीचारी।
बिधवा कस न भई महतारी।
जिह नर राम भगति नहि साधी।
जनमत कस न मुओ अपराधी॥ पृष्ठ - 328

आजकल श्रवण कुमार जैसा पुत्र कोई नहीं होता। पुत्र माता पिता को एक बहुत बड़ा बोझ समझते हैं। वह तो एक श्रवण पुत्र ही था जिसकी कथा आज संसार का मार्ग दर्शन करती है। इस प्रकार यह पुत्र

वासना भी जीव को नरकों में धकेल देती है।

यहाँ हम वासना की बात करते हैं मनुष्य पैसा भी कमाता है सन्तान भी होती है पर वासना करना बहुत बुरी बात है क्योंकि धन की प्राप्ति प्रालब्ध कर्मों के कारण हुआ करती है जैसा कि फ़रमान है –

जेहा बीजै सो लुणै करमा संदड़ा खेतु। ***पृष्ठ - 134***

मनुष्य धन प्राप्ति के लिए अनेक यत्न करता है पर धन वही मिलता है जो इसके प्रालब्ध में धुर दरगाह से लिखा होता है –

संपै कउ ईसरु धिआईऐ। संपै पुरबि लिखे की पाईऐ।
संपै कारणि चाकर चोर। संपै साथि न चालै होर। ***पृष्ठ - 937***

धन कमाने के लिए बेअन्त प्रकार के पाप करना, छल कपट करना, धोखा देना, मिलावटें करना, रिश्वत लेना, दुनियाँ को दुखी करना, ये इतने बुरे कर्म हैं कि ऐसे मनुष्य को कभी भी शान्ति प्राप्त नहीं हुआ करती क्योंकि पापों से इकट्ठी की गई माया अनेक उलझनें जिन्दगी में पैदा किए रखती है। जब मनुष्य इस दुनियाँ से जाता है सच्ची दरगाह में कटघरे में खड़ा करके उससे जवाब मांगा जाता है, वहाँ पर उसे कुछ भी नहीं सूझता माया प्राप्ति के लिए किये गये अनेक छल कपट इस जीव को सज़ा के भागीदार बनाते हैं और अनेक यौनियों में भ्रमण करवा कर लेखों का हिसाब करना पड़ता है, ऐसा ही फ़रमान है –

लै फाहे राती तुरहि प्रभु जाणै प्राणी।
तकहि नारि पराईआ लुकि अंदरि ठाणी।
संन्ही देन्हि विखंम थाइ मिठा मदु माणी।
करमी आपो आपणी आपे पछुताणी।
अजराईलु फरेसता तिल पीड़े घाणी॥ ***पृष्ठ - 315***

दसों नाखूनों की मेहनत से कमाई करके, फिर पूरे ज़बत के साथ रहते हुए व्यापार करना, मेहनत करना, इससे जो धन घर में आता है उसे यदि हम पूरी शास्त्र मर्यादा के अनुसार प्रयोग करते हैं तब हमें माया का कोई दोष नहीं लगता और न ही कोई वासना तंग करती है। जब मनुष्य शुभ कर्मों के लिए अपनी कमाई में से माया देता है उस समय उसका मोह माया से भंग हो रहा होता है। जो माया उसे शुभ व्यापार करके नौकरी चाकरी करके प्राप्त होती है, वह शान्ति प्रदान करती है और दरगाह में जाकर भी वह माया सहायता करती है जैसा कि फ़रमान है –

नानक अगै सो मिलै जि खटे घाले देइ॥ ***पृष्ठ - 472***

घालि खाइ किछु हथहु देइ। नानक राहु पछाणहि सेइ॥

पृष्ठ - 1245

इस प्रकार यह माया दरगाह में भी सहायता किया करती है तथा स्वर्ग के अनेक सुख इसके बदले में प्राप्त हुआ करते हैं। यदि हम विचार करें तो हमें यह मानना पड़ेगा कि संसार में कुछ ऐसे देश हैं जो माया की अनेक रूपों में पूजा करते हैं और इसे देवी देवताओं का स्थान देते हैं। माया की पूजा करने वाले हमेशा यह चाहते हैं कि हमारा घर माया से सदा भरपूर रहे हम रातों-रात अमीर बन जाएं। ऐसे पुरूषों को माया कमाने के लिए अच्छे बुरे ढंग प्रयोग करने में कोई संकोच नहीं हुआ करता क्योंकि माया को उन्होंने अपना इष्ट बनाया होता है।

इसी प्रकार पुत्र प्राप्ति का मोह हमारे अन्दर बहुत होता है क्योंकि हमारे शास्त्रों का मत है कि शरीर त्याग कर जो रूह स्वर्ग में जाकर स्थित हो गई है उसके निमित्त लायक पुत्रों को पुण्य दान करना पड़ता है। इसे पितृ दण्ड कहा जाता है। उनकी यादगारें (बरसी) मनानी, उनके जीवन चरित्र पर झलकमार कर अपना पथ प्रदर्शन करना एक सुलझा हुआ कदम है पर गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं कि प्यारे! यदि तू सच्चे दिल से पितरों का आदर नहीं करता और रीति रस्मों में पड़कर श्राद्ध आदि करता है यह एक लोक लाज रखने का ही तरीका है, पितरों के साथ तेरा कोई स्नेह नहीं है। बाणी में व्यंग्य भाव से इस प्रकार बताया है -

जीवत पितर न मानै कोऊ मुएं सिराध कराही।
पितर भी बपुरे कहु किउ पावहि कऊआ कूकर खाही॥

पृष्ठ - 332

पर यदि पूरी श्रद्धा के साथ लायक पुत्र अपनी नेक कमाई में से अपने पितरों के लिए कुछ दान करता है तो जन्म साखी में ऐसी अनेक साखी आती है जिनसे पता चलता है कि पितरों को पुण्य पहुँच जाया करता है।

एक पुरातन कथा है - दशरथ राजा का पिता एक दिन स्वप्न में आया, प्रत्यक्ष रूप में कहा कि पुत्र दुनियाँ में एक राजा त्रिशंकु, मेरे अधीन राज्य करता था पर उसके द्वारा किये गये पुण्यों के आधार पर आज उसने मेरे से भी ऊँचा स्वर्ग प्राप्त कर लिया है। तू मेरे निमित्त यज्ञ कर और उनका फल मुझे दे ताकि मुझे ऊँचा स्वर्ग मिले। दशरथ जी ने यज्ञ किया और उसने फिर सपने में आकर कहा कि अब मैंने उससे ऊँचा स्वर्ग प्राप्त कर लिया है।

गुरू नानक पातशाह लाहौर में सेठ दुनीचन्द जी के गृह में श्राद्ध पर आमन्त्रित किये गये। उस समय सारे साधुओं, ब्राह्मणों ने यज्ञ का अन्न खाया, बहुत बढ़िया बढ़िया भोजन खाये और प्रार्थना की कि इस यज्ञ का फल दुनीचन्द के पिता को मिले।

जब गुरू नानक पातशाह को प्रार्थना की गई कि महाराज! और तो सभी ने भोजन कर लिया है, आप भी भोजन कीजिए। उस समय गुरू नानक पातशाह ने फ़रमान किया कि दुनीचन्द! तुझे कितने वर्ष श्राद्ध मनाते हुए हो गये? उसने बताया कि महाराज! यह दूसरा, तीसरा श्राद्ध है। गुरू महाराज ने कहा कि दुनीचन्द! तेरे पिता को तो इस श्राद्ध का कोई फल नहीं पहुँचा। तू जानता है, तेरा पिता कहाँ है? उसने कहा कि सच्चे पातशाह! मेरा पिता बहुत नेक था, धर्म कार्यों के लिये माया का एक चौथाई भाग खर्च किया करता था। धाॢमक पुस्तकें बहुत पढ़ा करता था कि वह पितृ लोक या स्वर्ग लोक में होगा। गुरू महाराज जी ने कहा कि आ! आज तुझे तेरे पिता के दर्शन करवायें। तू ऐसे कर भोजन का एक थाल भर ले और रावी के बाएं किनारे धीरे-धीरे झल में चलते जाना, चार मील चलने के बाद एक गहरी झाड़ियों का झुण्ड आयेगा। वहाँ पर खड़े होकर तू अपने पिता को आवाज़ लगाना, तू डरना मत। वह बघिआड़ के रूप में तेरे सामने आयेगा और मनुष्य की बोली में तुझे सब कुछ समझा देगा। तू हमारे हाथों द्वारा स्पर्श किया गया प्रसाद उसके सामने रख देना, उसका शरीर शान्त हो जायेगा और देव लोकों में जो व्यवहार चल रहा है वह तुझे सारा बता देगा।

उसने वैसा ही किया। उस बघिआड़ ने पवित्र प्रसाद के एक-दो ग्रास ही खाये और वह धरती पर गिर पड़ा। उसी के साथ ही एक काले रंग की रूह निकली जो देखते ही देखते प्रकाशमयी हो गई। दुनीचन्द ने इस खाकी नज़रों (नष्ट हो जाने वाली) से, गुरू द्वारा बख्शीश की हुई दृष्टि से अपने पिता को पहचान लिया और कहने लगा कि पिता जी! आपकी यह दशा कैसे हो गई? मैंने तो तुम्हारे निमित्त श्राद्ध किया है? क्या तुम्हें श्राद्ध का कोई फल प्राप्त नहीं हुआ? तब वह बोला ''पुत्र! मुझे फल केवल अब प्राप्त हुआ है, आज से पहले तूने जितने श्राद्ध किए हैं वे तो कौओं और कुत्तों ने ही खा लिये। मुझ तक उस पुण्य का कोई अंश मात्र भी नहीं पहुँचा।'' दुनीचन्द ने पूछा, ''पिता जी! क्या आप मुझे बता सकते हो कि विधिपूर्वक श्राद्ध करवाये हुए पितरों तक फल क्यों नहीं पहुँचते?'' उस समय उसने उत्तर दिया कि हे पुत्र! तेरे घर आज साक्षात प्रभु आए हुए हैं, वह मुझे ज्ञान बख्श रहे हैं, उनकी सत्ता से ही मैं तेरे

साथ बातें कर रहा हूँ, तेरे प्रश्नों का उत्तर भी मैं उनकी सत्ता से ही दे रहा हूँ। वह इस प्रकार है कि दान आगे वही पहुँचता है जो प्रभु के प्यारों द्वारा किया जाये जिन्हें अभ्यागत कहते हैं। आज सारे निकम्मे-निठले अभ्यागत बने फिरते हैं, वे प्रभु से बिछुड़े हुए हैं। उन्हें देना या कौओं कुत्तों को खिला देने में कोई अन्तर नहीं है। अभी कई हालातों में कौओं और कुत्तों को खिलाया हुआ भी अधिक फलदायी होता है, वह इसलिये कि ये मनुष्य द्वैत भावना से ग्रसित प्राणी हैं जिनके मनों में क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, राग, द्वैष जैसे अवगुण भरे पड़े हैं। वे प्रभु से बिछुड़े हुए हैं उनका खाया हुआ उनके शरीर को ही पीड़ित करता है। किसी को और फल नहीं दे सकता। एक प्रकार से यह एक बहम है जिसमें फंसा हुआ यह संसार बर्बाद हो रहा है। एक रसम है जो लोक लाज को सामने रखकर पूरी की जा रही है। उसने कहा बेटा! वह अभ्यागत जिसके चित्त में कोई भ्रम नहीं है, जो हर घट में से प्रभु ज्योति को देखते हैं। अन्दर बाहर उस एक को ही देखते है, पवन, पानी, बैसन्तर, सभी जीव जन्तुओं में उस प्रभु को देखते है, उन्हें यदि भोजन खिला दिया जाये तो उसका फल बहुत हुआ करता है -

अभिआगत एहि न आखीअनि जि पर घरि भोजनु करेनि।
उदरै कारणि आपणे बहले भेखि करेनि।
अभिआगत सेई नानका जि आतम गउणु करेनि।
भालि लहनि सहु आपणा निज घरि रहणु करेनि॥ पृष्ठ - 949

अभिआगत एह न आखीअहि जिन कै मन महि भरमु।
तिन के दिते नानका तेहो जेहा धरमु॥
अभै निरंजन परम पदु ताका भीखकु होइ।
तिस का भोजनु नानका विरला पाए कोइ॥ पृष्ठ - 1413

दशमेश पिता जी भी ऐसा फरमाते हैं -

सेव करी, इनही की भावत,
अउर की सेव सुहात न जी को।
दान दयो इनही को भलो,
अरु आन को दान न लागत नीको।
आगै फलै इन ही को दयो,
जग मै जसु, अउर दयो सभ फीको।
मो ग्रहि मै तन ते मन ते,
सिर लउ धन है सभ ही इनही को॥ पातसाही 10

सो बेटा! भोजन के अलग-अलग स्वादों को चखने वाले, साधु नहीं हुआ करते बल्कि ये तो स्वाद परस्त हुआ करते हैं। इनको खिलाया गया

भोजन इनकी देह से आगे निकलकर कोई पुण्य पैदा नहीं करता पर मैं तुझे बताता हूँ कि ऐसे पुरूष अपनी देह को रोग लगा लेते हैं जैसा कि फ़रमान है–

खसमु विसारि कीए रस भोग।
तां तनि उठि खलोए रोग॥ *पृष्ठ - 1256*

पितरों तक केवल वही अन्न पहुँचा करता है जो सचमुच अभ्यागतों को भेंट किया जाये। इस प्रकार पितरों के निमित्त किये जाने वाले कर्मों को पितर दण्ड की पूत कहा जाता है। यह कोई सियाने बेटे ही भोगा करते हैं। आजकल कलयुग का समय है। बच्चे माँ बाप को छोड़कर अपने ही परिवार में मस्त हो जाते हैं। उनके द्वारा किया गया कर्म धर्म कोई भी फल नहीं दिया करता जैसा कि भाई गुरदास जी ने अंकित किया है–

माँ पिउ परहरि सुणै वेदु भेदु न जाणै कथा कहाणी।
माँ पिउ परहरि करै तपु वणखंडि भुला फिरै बिबाणी।
माँ पिउ परहरि करै पूजु देवी देव न सेव कमाणी।
माँ पिउ परहरि न्हावणा अठसठि तीरथ घुंमण वाणी।
माँ पिउ परहरि करै दान बेईमान अगिआन पराणी।
माँ पिउ परहरि वरत करि मरि मरि जंमै भरम भुलाणी।
गुर परमेसरु सारु न जाणी॥ *भाई गुरदास जी, वार 37/13*

जो पुत्र माता पिता को त्याग कर धर्म ग्रन्थों को सुनता है उसे धर्म के गुप्त सिद्धन्तों का कोई ज्ञान नहीं हुआ करता। यह वाहिगुरू जी की नेत है, जो पुत्र माता पिता को छोड़ जाया करता है उनकी अनुमति लिए बिना किसी जंगल में जाकर तप करता है, वह जगलों में भटकता ही रहता है क्योंकि माँ-बाप का आर्शीवाद उसने प्राप्त नहीं किया। यदि कोई माता पिता को छोड़कर देवी देवताओं की पूजा करता है उसकी सेवा को देवी देवता प्रवान नहीं करते क्योंकि माता पिता ही देवी देवता हैं जिन्होनें अनेक कष्ट सहन करके पुत्र को पढ़ाया लिखाया और विवाह किया, उसकी कामनाएं पूर्ण करने के लिये जगह जगह मस्तक रगड़ते फिरे। ऐसे पुत्र जब माँ-बाप का आदर नहीं करते, उनकी पूजा का कोई फल उन्हें नहीं मिला करता। माता पिता को भूलकर जो पुत्र अड़सठ तीर्थों पर स्नान करने के लिये जाते हैं। माता पिता का आदर नहीं करते, न ही उनकी भावनाओं को समझने का यत्न करते हैं, ऐसे पुत्रों को उन तीर्थों का कोई फल प्राप्त नहीं हुआ करता बल्कि ऐसे ही बेकार भंवरों में गोते लगाते फिरते हैं। गरीब माँ बाप वस्त्रों के लिए तरसते हैं, रोटी के लिये तरसते हैं ऐसा पुत्र यदि दान करता है तो वह पुत्र आज्ञानी तथा बेईमान है। क्योंकि माता पिता का पहला अधिकार हुआ करता है, दान लेने वालों का बाद में हक

होता है। माता पिता का त्याग करके जो पुत्र व्रत आदि अनेक ढोंग रचता है वह पुत्र चौरासी लाख यौनियों के चक्कर के भ्रम में पड़ा भटकता रहता है ऐसे पुत्रों ने गुरू तथा परमेश्वर का अन्त नहीं जाना।

माता पिता ने पुत्र पर अनेक उपकार किए हैं। जब पुत्र माता के गर्भ में निवास करता है, माता हर प्रकार के रस खाने बन्द कर देती है। वह बहुत अधिक पीड़ा सहन करके पुत्र को जन्म देती है। माँ बड़ी सावधानी से पुत्र का पालन पोषण करती है। वह ऐसी कोई वस्तु नहीं खाती जिसकी वज़ह से उसके दूध में उस वस्तु का असर पड़ जाये और उसके पुत्र को तकलीफ हो जैसे कि जो माताएं दूध पीने वाले बच्चे के होते हुये यदि बहुत अधिक मीठा खाती हैं, उनके बच्चों को बहुत कष्ट होता है उनके पेट में छोटे छोटे ज़र्म (कीटाणु) उन्हें कष्ट पहुँचाते हैं। सियाने लोग उन्हें मना किया करते हैं कि वे गुड़ आदि मीठी चीज़ें न खाया करे। यदि वे खुश्क रोटी खाती हैं, चने आदि का अधिक प्रयोग करती हैं उनके बच्चे को कब्ज़ हो जाती है। इसलिए उसे अपनी जिभ्या के सभी स्वादों को छोड़ना पड़ता है। स्वयं वस्त्र पहनना कम कर देती है पर अपने पुत्र के लिये अच्छे से अच्छे वस्त्र लेकर आती है और बढ़िया से बढ़िया खुराक खिलाती है। माता पिता अपना खाना पीना कम कर देते हैं, पूरी तरह से दूध आदि नहीं पीते, पूरी तरह से मक्खन आदि का प्रयोग नहीं करते क्योंकि वही धन बचाकर पुत्र के लिए अच्छे से अच्छे पदार्थ लाकर उसका पालन करते हैं। माता पिता बढ़िया से बढ़िया स्कूल में अपनी अवस्था के अनुसार उसे पढ़ाते हैं। अपना कमाया हुआ धन पुत्र की पढ़ाई के लिये खर्च कर देते हैं। माँ बाप इस प्रकार अपने सिर पर पुत्र द्वारा चढ़ाया हुआ जो कर्ज़ होता है उसे उतार कर निश्चिंत हो जाते हैं -

मात पिता मिलि निंमिआ आसावंती उदरु मझारे।
रस कस खाइ निलज्ज होइ छुह छुह धरणि धरै पग धारे।
पेट विचि दस माह रखि पीड़ा खाइ जणै पुतु पिआरे।
जण कै पालै कसट करि खान पान विचि संजम सारे।
गुढ़ती देइ पिआलि दुधु घुटी वटी देइ निहारे।
छादनु भोजनु पोखिआ भदणि मंगणि पढ़नि चितारे।
पाँधे पासि पढ़ाइआ खटि लुटाइ होइ सचिआरे।
उरिणत होइ भारु उतारे॥ *भाई गुरदास जी, वार 37/10*

जब पुत्र पढ़ लिख जाता है तो माता पिता के मन में यह बात पूरी तरह समायी होती है कि हमारा पुत्र बहुत लायक हो गया है। इसका विवाह बढ़िया से बढ़िया वधु ढूँढ कर करेंगे। जब ब्याह हो जाता है तो सबसे अधिक खुशी माता पिता को होती है। उनके मन में अनेक आशाएं

होती हैं कि हमारा पुत्र हमारे साथ मिलकर कमाई करेगा। पुत्र, पौत्र पौत्रियां होगीं। हमारा पुत्र वैज्ञानिक प्रौफैसर बन गया है सो ऐसी बहुत सी आशाएं उन्हें खुशियाँ प्रादान करती हैं। जब माँ अपने पुत्र और पुत्र वधु में बढ़ते हुए प्यार को देखती है तो वह प्रभु से प्रार्थना करती है कि हे प्रभु! इस छोटे से परिवार को तू कभी दुख न देना। पर होता क्या है? पुत्र वधु पहले से ही पढ़ी पढ़ाई घर आती है। माँ बाप से पुत्र को अलग कर देती है। सासु के साथ झगड़ती है, पति को उलटी पट्टी पढ़ाती है। चुगलियों का प्रभाव पति पर पड़ता है, वह माता पिता से बोलना चालना बन्द कर देता है। माता पिता तरसते रहते हैं कि यह क्या हो गया, हमारी आशाओं पर पानी फिर गया। हे वाहिगुरू! इस पुत्र को सुमति दे। माँ अपने मुख से पुत्र के लिए कभी भी बुरा शब्द नहीं बोलती। बहु और बेटा, माता पिता से तंग आकर, दुखी होकर उन्हें बुरा भला कहते हैं जो उन्हें सहन करना कठिन हो जाता है। माता पिता के साथ झगड़ा करते हैं। यहाँ तक देखने में आया है कि माता पिता अपने पुत्रों की सहुलियत के लिए कोठियाँ बनाते हैं, जायदादें खरीदते हैं अपने नाम पर कुछ भी नहीं रखते, अपने पुत्र के नाम कर देते हैं पर उस पुत्र को उसकी पत्नी अपने सासु तथा ससुर के खिलाफ कर देती है। यहाँ तक भी मैंने देखा है कि ऐसे प्यार भरे बुजुर्गों को आदेश मिलने लग जाते हैं कि यह घर हमारे नाम है, जायदाद हमारे नाम है। पुत्र कहता है या तो घर खाली करो या किराया दो। मैं मुफ्त में तुम्हें इस घर में नहीं रख सकता। माता पिता के उपकार को भूल जाता है। उस समय श्रवण कुमार पुत्र याद आता है, पर श्रवण पुत्र तो कोई होता ही नहीं –

माता पिता आनंद विचि पुतै दी कुड़माई होई।
रहसी अंग न मावई गावै सोहिलड़े सुख सोई।
विगसी पुत विआहिऐ घोड़ी लावाँ गाव भलोई।
सुखाँ सुखै मावड़ी पुतु नूँह दा मेल अलोई।
नुहु नित कंत कुमंतु देइ विहरे होवन ससु विगोई।
लख उपकारु विसारि कै पुत कुपुति चली उठ झोई।
होवै सरवण विरला कोई॥ भाई गुरदास जी, वार 37/10

आज कल आम परिवारों में यह देखा गया है कि जब पुत्र का विवाह होता है उस समय उनकी बहु पहले से Plan (योजना) बनाकर लाई होती है कि माता पर जादू कर दूंगी, कुछ ऐसी वैसी चीज़ खिला दूँगी जिससे उन्हें कोई न कोई बीमारी लग जाये।

इस पुत्र ने विवाह करके सबसे पहले तो प्रभु को भुला दिया तथा फिर माता पिता को भुला दिया। माता पिता ने मनौतियाँ मानकर विवाह

किया था। माँ, पुत्र और बहु के मिलाप के लिए सदा प्रार्थना करती थी पर बहु अपने पति को हमेशा उलटी पट्टी पढ़ाती है, जिसके परिणाम स्वरूप पुत्र माता पिता को छोड़कर बड़े हत्यारों (पापियों) जैसा काम करता है। इस दुर्मति का प्रभाव यह होता है कि पुत्र अपनी पत्नी को लेकर अलग हो जाता है, पुत्र का यह कर्म अति मन्द मति का हो जाता है –

कामणि कामणिआरीऐ कीतो कामणु कंत पिआरे।
जंमे साईं विसारिआ वीवाहिआँ माँ पिओ विसारे।
सुखाँ सुखि विवाहिआ सउणु संजोगु विचारि विचारे।
पुत नूहैं दा मेलु वेखि अंग ना माथनि माँ पिउ वारे।
नूँह नित मंत कुमंत देइ माँ पिउ छडि वडे हतिआरे।
वख होवै पुतु रंनि लै माँ पिउ दे उपकारु विसारे।
लोकाचारि होइ वडे कुचारे॥ भाई गुरदास जी, वार 37/12

इस प्रकार जो पुत्र वासना है, पुत्र प्राप्ति के लिए बड़े निखिद्ध कर्म करवाती है। जब पुत्र माँ बाप की कोई परवाह ही नहीं करता तो उस समय उन्हें कितना दुख होता होगा, इसका अनुमान वही लगा सकते हैं।

एक बार मेरे दीवान एक गाँव में सजे हुये थे। अचानक शोर मच गया कि दस महीने का एक बच्चा खेलता खेलता गायब हो गया। जब मुझे पता चला तो मैंने कहा कि मील दो मील तक घेरा डाल दो और उस घेरे को कम करते चले आओ। फसलें, जंगल, खरल झाड़ियाँ आदि सभी जगह देखो। ऐसा करते करते जब घेरा बहुत छोटा हो गया तो क्या देखते हैं कि साथ लगते हुए फार्म में जो डेरा था, उसकी जब तालाशी ली गई तो बच्चे का मुँह बान्ध कर चारपाई के नीचे रख कर किसी भारी चीज़ के साथ बान्धा हुआ था। चारपाई पर Double bed की चादर डाली हुई थी। जब हमारे सिक्खों ने चादर उठाई तो बच्चा पूरे ज़ोर के साथ रो रहा था। पर उसकी आवाज़ बाहर नहीं निकल रही थी। उस घर के सामने एक माई जो जन्त्र मन्त्र जानती थी, वहाँ बैठी हाथ में माला लेकर भजन करती हुई ऐसे लगती थी कि जैसे कोई परमेश्वर की प्यारी बैठी हो। उसे भी साथ ही पकड़ लिया। जब उसे ज़ोर से एक चपत मारी गई तो उसने बताया कि इनके घर सन्तान कोई नहीं थी तो मैंने इन्हें कहा कि किसी का ज्येष्ठ पुत्र लेकर आओ। मैं मन्त्र पढ़ कर उसके हाथ, पैर, बाजू, टागें काटूँगी और सांस की नस काट कर खून से बर्तन भरूँगी। उस खून को पानी की भरी बालटी में डालकर मन्त्र किये गये जल से तू स्नान कर लेगी तब तेरे घर उस पुत्र की रूह आकर जन्म लेगी।

ऐसे केस एक नहीं सैकड़ों होते हैं तथा ऐसे अपराध होते ही रहते हैं। सो ऐसा नीच कर्म करके भी पुत्र प्राप्त करने से संकोच नहीं किया जाता पर पुत्र एक सैकिंड में अपनी पत्नी के कहने पर माता पिता को छोड़ देता है। कैसा अकृतघ्न पुत्र है।

दुनीचन्द का पिता कहने लगा कि बेटा! तू नेक पुत्र है। मेरे निमित्त श्राद्ध करता था। चाहे तुझे नहीं मालूम था कि मेरे निमित्त किया गया श्राद्ध मुझ तक पहुँचता था या नहीं पर तू पितृ दण्ड भरता ही रहा है। गुरू नानक पातशाह तुझे सुमति देंगे। तेरे घर पर प्रभु स्वंय आये हुए हैं तू उनकी आज्ञा मानना।

दुनीचन्द गुरू नानक पातशाह के पास आया। आपने कहा कि पितरों के निमित्त वही अन्न पहुँचता है जो भजन करने वाले निष्काम पुरुष के मुख में पहुँचता है। आजकल तो ऐसे पुत्र हैं जो अपने माता पिता के निमित्त कुछ भी नहीं करते।

सो ये वचन इसलिए लिखे हैं कि पुत्र वासना मनुष्य को कितना नीचा ले जाती है और पुत्र प्राप्ति के बाद जो दुख पहुँचता है उसका कोई अनुभव ही नहीं लगा सकता। क्योंकि न तो माता पिता पुत्र पर कोई कानूनी कार्यवाही ही कर सकते हैं, न ही अपने पुत्र को कोई नुकसान पहुँचा सकते हैं। वे स्वंय दुखी रहकर भी अपने पुत्रों का भला ही माँगते रहते हैं।

पुत्र वासना में कोई सुख नहीं है। इसका यह अर्थ नहीं कि हमारे पुत्र परिवार की वृद्धि ही न हो। यदि वाहिगुरू जी सुमति दें और पुत्र अपने कर्तव्य पहचान लें तो माता पिता भी सुखी रहते हैं और परिवार भी सुखी रहता है। गुरू महाराज जी का फ़रमान है कि रिश्तेदार, पुत्र, पुत्रियों से सभी पिछले जन्मों के संयोग हुआ करते हैं पर अपना अपना जीवन व्यतीत करने के बाद इस प्रकार अलग अलग हो जाते हैं जिस प्रकार बाढ़ आने पर भंवरों में पड़ा हुआ रेता एक स्थान से उठकर मीलों दूर जाकर गिर जाता है।

मात पिता बनिता सुत बंधप इसट मीत अरु भाई।
पूरब जनम के मिले संजोगी अंतहि को न सहाई॥ पृष्ठ - 700

अभी तक दो प्रकार की वासनाओं का उल्लेख किया है- पुत्र तथा धन वासना का। इन्हें मलीन वासना कहा जाता है। इन्हीं वासनाओं के कारण जीव जन्म मरण के चक्कर में पड़ा रहता है। वह अपने आपको पहचानता ही नहीं है क्योंकि यह जीव वाहिगुरू जी का अंश है, यह

शरीर नहीं है यह ही जीव वासना के कारण अपने स्वरूप को भूल गया है।

बहुत से लोगों को शास्त्र वासना हो जाया करती है और वे दुनियाँ भर की पुस्तकें पढ़ते रहते हैं। उनके मनों में यह विचार रहता है कि मैं सबसे बड़ा विद्धान बन जाऊँ और मेरा नाम दुनियाँ में प्रसिद्ध हो जाये। लोक वासना के अनुसार हर समय मन में समाया रहता है कि लोग मेरी स्तुति करें और मेरी निन्दा न करे और मुझे सभी बहुत अच्छा कहें पर प्रकृति का ऐसा नियम है कि न तो सभी लोग किसी को बहुत अच्छा कहते हैं, न ही सभी किसी को बुरा कहते हैं। अपने अपने विचार हुआ करते हैं। वाहिगुरू जी ने संसार में कोई ऐसा नियम नहीं बनाया कि सभी लोग प्रशंसा करें, ऐसा भी नहीं है कि सभी लोग निन्दा करें। गुरू महाराज जी ने निन्दा और स्तुति दोनों को त्याग कर निर्वाण पद की खोज करने पर अधिक ज़ोर दिया है –

उसतति निंदा दोऊ तिआगै खोजै पदु निरबाना॥ *पृष्ठ - 219*

जो सतपुरुष हुआ करते हैं जिनके अन्दर प्रभु की ज्योति एक रस जलती रहती है और जिनके अन्दर अनहद शब्दों की झन्कार गुन्जार पैदा करती है, उनकी प्रभु के साथ बन जाती है, वे स्तुति निन्दा के चक्कर में नहीं पड़ते। चाहे सारे लोग उनकी निन्दा करें, उनका कुछ कम नहीं होता, चाहे सारे लोग उनकी प्रशंसा करें तो उनका कुछ बढ़ता नहीं। यदि लोग उनकी प्रशंसा करते हैं तो कोई बड़प्पन नहीं है और यदि लोग निन्दा करते हैं तो कुछ कम नहीं हो जाता। कम तभी होता है जब प्रभु की प्रकाशमयी ज्योति मद्धम पड़ जाये। सो जितना दुख उसका होता है, उसका वर्णन ही नहीं किया जा सकता।

जिउ मछुली बिनु पाणीऐ किउ जीवणु पावै।
बूंद विहूणा चात्रिको किउकरि त्रिपतावै।
नाद कुरंकहि बेधिआ सनमुख उठि धावै।
भवरु लोभी कुसम बासु का मिलि आपु बंधावै।
तिउ संत जना हरि प्रीति है देखि दरसु अघावै॥ *पृष्ठ - 708*

इस प्रकार सन्त स्तुति निन्दा से परे होते हैं। उनका तो एक ही लक्ष्य हुआ करता है कि स्तुति और निन्दा दोनों बहुत भारी रूकावटें हैं। स्तुति मनुष्य के अन्दर अभिमान पैदा करती है और निन्दा हीनता पैदा करती है। ये दोनों ही घटिया प्रकार के जीवन हैं। सन्तों को ज्ञान हुआ करता है। वे केवल हृदय के अन्दर झाँकते हैं कि प्रभु के साथ बनी हुई है या लिव टूट गई है। उन्हें केवल प्रभु से लिव टूटने का दुख हुआ

करता है क्योंकि जीवन तभी तक है जब तक प्रभु के साथ बन (याद बनी रहे) पाये यदि भूल जाये तो उन्हें सारा खाना पीना हराम दिखाई देता है। संसार में वही जीवित है जिसके अन्दर प्रकाश हो गया। मृत वही है जिसके अर्न्तात्मा में विगास (आत्मिक आनन्द) नहीं है।

सो जीविआ जिसु मनि वसिआ सोइ।
नानक अवरु न जीवै कोइ।
जे जीवै पति लथी जाइ। सभु हरामु जेता किछु खाइ। पृष्ठ-142

लोक वासना का साधुओं पर कोई प्रभाव नहीं हुआ करता वे तो यही कहा करते हैं –

लोकन की चतुराई उपमा ते बैसंतरि जारि।
कोई भला कहउ भावै बुरा कहउ हम तनु दीओ है ढारि॥
पृष्ठ - 528

पहले ही इस पंक्ति पर आकर खड़े हो जाया करते हैं जिसके आगे कुछ कहा ही नहीं जा सकता। जो इस प्रकार करते हैं उन्हें अपने मित्रों की श्रेणी में गिनते हैं –

कबीर सभ ते हम बुरे हम तजि भलो सभु कोइ।
जिनि ऐसा करि बूझिआ मीतु हमारा सोइ॥ पृष्ठ - 1364

एक बार ऐसा ज़िक्र आता है नामदेव जी भजन बन्दगी से निपट कर मानवता की भलाई हेतु, जहाँ अपने प्रवचनों द्वारा रूहानियत के राहियों का मार्ग दर्शन करते थे, नाम जपाते थे, प्रभु मिलाप की युक्ति बताया करते थे वहाँ आप गुरबाणी के अनुसार –

सचहु ओरै सभु को उपरि सचु आचारु॥ पृष्ठ - 62

अपने इर्द गिर्द रहने वाले बच्चों को विद्या भी पढ़ाया करते थे। प्राचीन समय में गुरूद्वारों, मन्दिरों, मस्जिदों में रूहानी विद्या पढ़ाई जाया करती थी और रूहानी उपदेशों को अच्छी तरह से समझा और समझाया जाता था, उस पढ़ाई का प्रभाव बच्चों पर सारी जिन्दगी रहा करता था। उन्हें रूहानी ज्ञान प्राप्त होने के कारण सुख एंव शान्ति प्राप्त हुआ करती थी। आजकल के गुस्ताख बच्चे जो माँ बाप की इज्ज़त नहीं करते ऐसे चाल चलन उस समय के बच्चों के नहीं हुआ करते थे। जब हम रूहानी सिद्धान्तों को समझ जाते हैं तो किसी मज़हब का आपस में विरोध नही रहता। बोली का अन्तर हो तो हो पर प्रभु को मिलने का जो रास्ता है वह एक ही है। प्रत्येक के अन्दर एक जैसा ही प्रभाव पड़ता है। जिज्ञासु जब सन्तों के दर्शन करके, प्रभु से मिलने की लालसा रखते हैं तो सन्त उसे मन्त्र देते हैं तथा उसे अभ्यास के सरल तरीकों की जानकारी देते हैं।

वे मन्त्र चाहे अलग अलग हों, पर उनका प्रभाव एक जैसा ही होता है। मन्त्र प्रभु का ही है, बोली अपनी अपनी है। जब लिव लगती है और ज्योति प्रकाशित होती है तो हिन्दू, ईसाई, मुसलमान, सिक्ख सभी के अन्दर एक जैसी अनहद झन्कार, एक जैसी ज्योति, एक जैसा विस्माद उत्पन्न होता है। एक जैसे ही सत्य वचन हुआ करते हैं। कट्टरवादियों, निन्दकों को एक जैसे बुरे लगते हैं, इतनी कट्टरता का दुख महसूस करते हैं। सत्पुरुषों पर पत्थर फैंक फैंक कर उन्हें मार देते हैं। चमड़ियां उतरवा देते हैं। खोपड़ियाँ अलग कर देते हैं, चरखड़ियों पर चढ़वा देते हैं। महापुरुष अति के सन्तोष, अनुशासन में रहते हुए कोई शाप नहीं देते। सदा ही उनकी प्रार्थना होती है कि हे प्रभु! तेरा नाम इन अन्धों को प्राप्त हो जिससे सर्वस्व का भला हो। परमात्मा भी एक ही है उसके प्यारे भी एक ही अनुभव रखते हैं।

जैसे एक बार एक सेठ अपने कर्मचारियों को कहने लगा कि मैं मरूस्थलों की तरफ जा रहा हूँ वहाँ तरबूजों की खेती होती है। आप बताओ मैं आपके लिए कौन कौन से फल लेकर आऊँ? उस समय सभी ने अपनी बोली में कहा, पहला बोला मेरे लिए तरबूज ले आना, दूसरे ने कहा कि मैंने तो मतीरा मंगवाना है तीसरे ने कहा मुझे तो Watermelon चाहिये। चौथे ने कहा कि मुझे हिंदवाणा चाहिए। इस प्रकार अलग अलग बोलियों वालों ने नाम लिखवा दिये और इसी ख्याल में रहे कि सेठ जी सब के लिए अलग अलग फल लेकर आयेंगे। पर जब मतीरा आ गया तो सभी हैरान रह गये कि पहले तो हम समझते थे कि सारे फल अलग अलग होंगे। पर ये तो एक ही फल के अलग अलग नाम हैं।

इस प्रकार चाहे कोई इस्लाम धर्म का आदमी है, चाहे हिन्दू धर्म का है, चाहे कोई सन्त मत को धारण करने वाला है चाहे वह वेदान्त मत को मानने वाला है, पर जो समरथ गुरू मन्त्र दिया करता है उसके जाप का जो प्रभाव है वह एक जैसा ही होता है। गुरू नानक पातशाह जी फ़रमान करते हैं –

बलिहारी जाउ जेते तेरे नाव है॥ ***पृष्ठ – 1168***

जब हम मन्त्र की आराधना करते हैं तो हमारे अन्दर धुन पैदा होती है तो उस धुन के पीछे वाहिगुरू जी की हस्ती का पूर्ण विश्वास हुआ करता है। चाहे उसे कोई अल्लाह कहता है, चाहे राम कहता है, चाहे रहीम कहता है, चाहे वाहिगुरू कहता है, चाहे कुछ भी कहे वह हस्ती एक ही है, जिसका कोई रूप, रंग, रेख, भेख नहीं है। पर वह सदा है

जिसका परापूर्वला नाम 'सतनाम' है। सभी के अन्दर एक ज्योति जलती है, एक जैसी ध्वनि सुनाई देती है, जब अज्ञान का नाश होता है उस समय एक ही अनुभव सभी को प्राप्त होता है चाहे वह सूफी पीर हो, सन्त हो, सन्यासी हो, आचार्य हो, उदासी मत का हो, निर्मला हो, चाहे कुछ भी हो, आन्तरिक प्राप्ति एक जैसी ही हुआ करती है। सो सन्त बाहरी शाबाशी को पसन्द नहीं किया करते क्योंकि यह धोखा देती है। अन्धे मनुष्य सन्तों का सत्कार करते हैं। उन्हें यह पता ही नहीं कि इसे सन्त का पद प्राप्त हो गया है या ऐसे ही ढोंग रचाता फिरता है। उनके नेत्र अन्धे हैं, वे नहीं जान सकते कि इनके अन्दर से अज्ञान का लेश मात्र भी समाप्त हो गया है, क्या इसके अन्धे नेत्र एक ही प्रभु को देख रहे हैं? सन्त को जो प्रभु द्वारा दात मिलती है वह है कि वह अपना स्वरूप हृदय में बसा देता है। उसके अन्दर आत्मिक आनन्द की लहरें वज़द पैदा करती है। उसके अन्दर आत्म आनन्द का संगीत महिवीयत (लिव) के मण्डल में ले जाता है। सो असली साधुओं को निन्दा, स्तुति की कोई परवाह नहीं हुआ करती।

नामदेव बच्चों को रूहानी विद्या पढ़ा रहे थे। उस समय रिवाज़ था कि बच्चों को स्त्रियों की तरह गहनों से सजा दिया करते थे। मैंने भी देखा है कि हमारे माता पिता हाथों पैरों में घुघँरूओं वाले छल्ले तथा पाँजेबें आदि गहने डाल दिया करते थे।

सो इस प्रकार गहनों से सुसज्जित बच्चा एक सेठ, नामदेव जी के पास लेकर आया। नामदेव जी से प्रार्थना की कि आप इसे रूहानी ज्ञान बख्शो। उस समय नामदेव जी प्रभु ध्यान में पूरी तरह लीन थे। उन्होनें स्वाभाविक ही कह दिया सेठ जी! छोड़ जाओ! जब सेठ अपने बच्चे को वहाँ छोड़ कर चला गया और थोड़ी देर के बाद नामदेव जी ने बच्चे की ओर ध्यान से देखा कि उसने तो गहने पहने हुए हैं। जब यह वापिस घर जाते समय अकेला होगा तो इसे कोई उठाकर ही न ले जाए और गहने उतार कर इसे कुँए में ही न फैंक दे। इसी आशय से आपने बच्चे को अपने पास बुलाया और बड़ा प्यार किया और धीरे धीरे गहने उतार कर उनकी एक पोटली बान्ध दी।

जब छुट्टी हुई तो वह बच्चा भी अन्य बच्चों के साथ घर चला गया। जब उसकी माँ ने देखा कि इसके गहने नहीं हैं तो उसने दूसरे बच्चों को पूछा कि इसके गहने कहाँ गये? तो बच्चों ने बताया कि भक्त जी ने उतार लिये हैं। सो बिना विचारे उसने पड़ोसिन को जाकर कह दिया कि बहन! नामदेव को सारे भक्त कहते हैं, पर वह भक्त नहीं, वह तो ठग है, जब

किसी के साथ बर्ताव किया जाता है तब पता चलता है कि कौन कैसा है? उसने मेरे बच्चे के सारे कीमती गहने उतार लिए हैं मुझे तो पूरा सन्देह है कि अब उसने गहने वापिस नहीं करने। पड़ोसिन ने बात सुनी तो उसे पचा न सकी, उसने दूसरी पड़ोसिन को जाकर बता दिया। उसने और आगे बता दी। इस प्रकार करते करते शाम तक सारे शहर में यह बात फैल गई कि नामदेव जी भक्त नहीं हैं वह तो ठग हैं, सेठ के लड़के के सारे गहने उन्होंने उतार लिए हैं।

जब सेठ घर आया तो उसकी पत्नी ने रोटी पानी कुछ भी न बनाया था और बैठी हुई अफसोस मना रही थी। सेठ ने कारण पूछा तो उसने सेठ को कहा कि आप ने अच्छा मेरे बच्चे को उस ठग के पास पढ़ने को भेजा है, उसने मेरे लाल के सारे गहने उतार लिए हैं। अब उसने कौन सा वापिस देने हैं? सेठ ने कहा कि तू अपने मन पर काबू रख मैं सुबह नामदेव के पास जाऊँगा और गहने लेकर वापिस आऊँगा। यदि उसने फिर भी न दिए तो मैं पाँच सात आदमी पंचायत के रूप में ले जाकर नामदेव को मिलूँगा। यदि फिर भी न दिए तो तुझे पता ही है कि कितने गुण्डे मेरे साथ हैं। जब तक वह गहने नहीं लौटायेगा, मैं भी उसका पीछा छोड़ने वाला नहीं हूँ।

दूसरे दिन सेठ नामदेव जी के पास गया। तो नामदेव जी दूर से देखते ही उसके मन की बात को जान गये। आप दूर से ही कहने लगे सेठ जी! यदि बच्चे को मेरे पास पढ़ने के लिए भेजना है तो गहने पहना कर मत भेजा करो। आपको पता है कि कितने चोर, साधुओं के भेष में घूमते फिरते हैं। यदि वे तुम्हारे पुत्र को उठाकर ले गए और गहने उतार कर कहीं मार कर फैंक दें तो फिर इसका जिम्मेवार कौन होगा। आपने तो मुझे ही दोष देना है। सेठ बहुत शर्मंदा हुआ। नामदेव जी ने कहा, यह लो अपने गहने। अब सेठ नर्म हो गया, आया तो बहुत रौब दाब के साथ था पर अब शर्मंदा होकर जाता है। घरवाली को जाकर कहा कि तूने तो ऐसे ही शोर मचा दिया। नामदेव जी ने तो हमारे बच्चे की जान बचाई है। उसने जब सेठ की सारी बात सुनी तो वह उसी समय पड़ोसिन के पास गई। उसको जाकर कहने लगी बहन! नामदेव जी तो बहुत अच्छे हैं। उन्होंने तो हमारे बच्चे की जान बचाई है। उस पड़ोसिन ने दूसरी को जाकर बताया। दूसरी ने तीसरी को इस प्रकार करते करते शाम तक सारी बात सारे शहर में फैल गई कि नामदेव जी तो बहुत अच्छे सन्त हैं। ऐसे ही उन पर झूठा दोष लगाया गया।

यह बात किसी प्रेमी ने नामदेव जी को आकर बताई कि परसों आपकी बहुत निन्दा होती सुनी गई थी पर आज आप को सभी भक्त कह रहे हैं। तो उस समय नामदेव जी राख की ढेरी के पास बैठे थे। दोनों मुट्ठियाँ राख से भर लीं। एक मुट्ठी दाईं ओर फैंकते हुए फरमाया कि यह निन्दको के सिर में दूसरी बांई और फैंकते हुये फरमाया कि यह स्तुति करने वालों के सिर पर। न तो निन्दा हमें डराती है, न ही बुरी लगती है। निंदक तो हमारे कपड़े धोता है। सफाई करने वाला तो झाड़ू के साथ सफाई करता है पर निन्दा करने वाला यह उपकार करता है कि वह मुँह से मैल उठाता है। ऐसे उपकारी को कैसे बुरा कहें। वह तो हमारा मित्र है, वह तो हमारे जीवन का पहरेदार है –

निंदउ निंदउ मो कउ लोगु निंदउ।
निंदा जन कउ खरी पिआरी।
निंदा बापु निंदा महतारी॥ रहाउ॥
निंदा होइ त बैकुंठि जाईऐ।
नामु पदारथु मनहि बसाईऐ।
रिदै सुध जउ निंदा होइ।
हमरे कपरे निंदकु धोइ॥
निंदा करै सु हमरा मीतु।
निंदक माहि हमारा चीतु।
निंदकु सो जे निंदा होरै।
हमरा जीवनु निंदकु लोरै।
निंदा हमरी प्रेम पिआरु।
निंदा हमरा करै उधारु।
जन कबीर कउ निंदा सारु।
निंदकु डूबा हम उतरे पारि॥ *पृष्ठ – 339*

साथ ही फरमाया कि स्तुति करने वाला साधुओं को रास्ते से भटकाने वाला हुआ करता है। जिज्ञासु अभी अपने मार्ग पर पहुँचा ही नहीं होता वे प्रशंसा के ढेर लगा देते हैं। जिससे जिज्ञासु अपने मार्ग से भटक जाता है। कोरी प्रशंसा उसे किसी किनारे पर पहुँचने ही नहीं देती। इसलिए गुरू महाराज जी ने फ़रमान किया है, निन्दा, स्तुति का त्याग करके निर्वाण पद की प्राप्ति करो। जब तक सारे भ्रमों का नाश नहीं होता, अन्दर ज्योति का प्रकाश नहीं होता, तब तक लगन के साथ आगे बढ़ते चले जाओ सो इस लोक लाज में प्रभु प्यारे नहीं फंसा करते।

लोक लाज की आध्यात्मिक इतिहास में कथा आती है कि श्री राम चन्द्र जी सीता जी को वापिस लाने के लिए रावण के साथ एक भयानक युद्ध में उलझ गये। रावण का वध किया। सीता जी को रावण के बाग में

से अति प्यार तथा आदर पूर्वक लाया गया पर वह जानते थे कि अनेक लोगों के मन में सन्देह है कि 9 महीने सीता रावण के बाग में रही पता नहीं इसके चरित्र पर कौन सा कलंक लगा होगा?

लोगों के इस संशय को निवृत्त करने के लिए आपने सीता जी की अग्नि परीक्षा ली। वह अग्नि में से ऐसे पार हो गई जैसे शीतल मैदान में से निकल रही हो और सीता का चेहरा तम तमा रहा था। सो लोग प्रसन्न हो गये कि सीता जी पवित्र हैं।

सीता जी ने सारा समय राम के वियोग में बिताया और राम जी के प्यार के बिना एक श्वांस भी नहीं ले रही थी। जिसके बारे में हनुमान नाटक में इस प्रकार लिखा हुआ मिलता है –

औह हनूमान कहिओ रघुबीर
कछु सुध है सीअ की छित माही।
है प्रभ, लंक कलंक बिना सु बसहि,
तर रावण बाग की छाही।
जीवत है?
कहिबे ही को नाथ!
सो किउं न मरी हमरे बिछराही?
प्रान वसे पद पंकज में,
जम आवत है पर पावत नाही।

श्री राम चन्द्र जी महाराज खुशियाँ मनाते हुए अपनी सारी सहायता करने वाली फौजों को सुग्रीव, हनुमान सहित दिल खोलकर इनाम बाँट रहे हैं। आप पुष्पक विमान में बैठकर अयोध्या पहुँचते हैं। अयोध्या वासियों ने खूब खुशियाँ मनाईं। दीप मालाएं जलाईं। उसी दिन से दीवाली का त्योहार शुरू हुआ जो बहुत ही धूम धाम से सारे भारत वर्ष में मनाया जाता है। इस दिन आसुरी शक्तियों पर सत्य ने विजय प्राप्त की। इसी प्रकार सिक्खों में वैशाखी का त्यौहार धूम धाम से मनाया जाता है क्योंकि जबर और जुल्म पर विजय पाकर गुरू छठे पातशाह महाराज जी श्री अमृतसर काफी समय के बाद पहुँचे थे। उस समय उन्होंने बहुत ही दुख झेलते हुये, तथा तड़प-तड़प कर मर रहे 52 राजाओं को 52 कलियों वाला कुर्ता पहनकर बचाया था। इस कौतुक को अनुभव करके सारे संसार ने उन्हें बन्दी छोड़ का नया नाम दिया। वे यहाँ भी बन्दियों को छुड़ाते हैं और दरगाह में भी जब हम अपने कर्मों के कारण बन्धे होंगे वहाँ भी सतगुरू ने हमारी सहायता करनी है जैसा कि फ़रमान है –

ओथै हथु न अपड़ै कूक न सुणीऐ पुकार।

ओथै सतिगुरु बेली होवै कढि लए अंती वार॥ *पृष्ठ - 1281*

श्री राम चन्द्र जी के अयोध्या पहुँचने पर सारे देश में खुशियाँ मनाई गईं। वह सुख पूर्वक रहने लगे पर ज्यों ज्यों समय बीतता गया त्यों त्यों प्रजा के मन में एक शक सामने उभर कर आया कि 9 महीने सीता जी रावण के बाग में रहने के बाद कैसे अपना सत कायम रखने में सफल रही? रावण महान ताकतवर राजा था जिसके जीवन में मर्यादा के होने और न होने में कोई फर्क नहीं था। यह हो नहीं सकता कि सीता जी का सत कायम रह गया हो। जो श्रद्धालु पुरूष थे वे कहते थे कि सीता जी की अग्नि परीक्षा हुई है। वह अग्नि परीक्षा में पूरी तरह सफल हो गई है। उस पर दोष नहीं लगाना चाहिए।

एक समय ऐसा आ गया कि राम चन्द्र जी ने लोक मत जानने का यत्न किया। आप बीर यात्रा करके जगह जगह पर जाकर लोगों से पूछते रहे कि तुम्हारे क्या विचार हैं? तो वे कह देते कि ख्याल की क्या बता है? रावण से तो कोई भी बच ही नहीं सकता। हमने कौन सी अग्नि परीक्षा देखी है, सुना ही है। सुनी सुनाई और देखी हुई बात में बहुत अन्तर होता है। क्या पता यह बात अपने आप ही बना ली हो। श्री राम चन्द्र जी ने ठीक नहीं किया। वे आज अयोध्या की राजगद्दी पर विराजमान हैं। वह राम अवतार नहीं हैं, राजा हैं। राज के नियम हुआ करते हैं जिनका पालन करना राजा के लिये अति आवश्यक होता है। उसका सबसे पहला कर्तव्य लोकमत का पालन करना होता है जिसका मान करना राजा के लिए अन्य सभी कर्म छोड़कर पहले उसे मानना चाहिए। श्री राम चन्द्र जी तो सीता जी को प्यार करते ही हैं क्योंकि वह उनकी पत्नी है। उन्हें लोक मत की कोई परवाह नहीं है। उनका कर्तव्य बनता है कि वह लोक मत को समझें और सीता जी का त्याग कर दें।

अन्त में ऐसा ही हुआ। श्री राम चन्द्र जी ने श्री वशिष्ठ जी की सलाह लेकर एक दरबार बुलाया जिसका मुख्य विषय लोकमत को जानना था कि क्या प्रजा सीता जी को पवित्र समझती है? श्री राम चन्द्र जी तथा सीता जी पारिवारिक सुख मनायें? प्रजा इस बात से सहमत नहीं है और सीता जी को कलंकित समझकर उसका त्याग कर दें। चाहे श्री राम चन्द्र जी, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न सभी सीता जी की पतिव्रता के सामने शीश झुकाते थे। ऋषि मुनि भी उसे पवित्र समझते हुए उसे देवी मानते थे और उसकी गुप्त शक्तियों से पूरी तरह परिचित थे पर फिर भी लोक मत जाना गया। बहुत से लोगों ने सीता जी पर शक किया और उसे कलंकित समझा।

श्री राम चन्द्र जी महाराज को राजा राम होने की हैसियत से सीता जी का त्याग करना पड़ा। लक्ष्मण जी ने सीता जी को रथ में बिठाया और नदी नाले पार करता हुआ 25-30 दिनों के बाद अमृतसर के निकट पहुँचा। जहाँ उस समय बहुत गहरे वन थे पर वहाँ आदिवासियों का निवास बहुत कम हो चुका था क्योंकि आर्यों ने उनसे बड़े बड़े राज्य छीनकर उन्हें दक्षिण दिशा में धकेल दिया था और पंजाब पूरी तरह से उनसे खाली करवा लिया था। वहाँ एक महान ऋषि बाल्मीकि का आश्रम था, वहाँ पर सीता जी को छोड़ गये।

सीता जी भी जानती थी कि मेरे पति इस समय लोकमत की कद्र करते हुए कितना दुख महसूस कर रहे होंगे और मेरे दुख को कैसे महसूस करते होंगे क्योंकि मैं तो उनके बिना एक श्वांस भी नहीं ले सकती।

यह भारतीय इतिहास में ऐसी दुखान्त कहानी है जो आज भी प्यार करने वालों को, कद्र करने वालों को हिलाकर रख देती है। श्री राम चन्द्र जी सीता जी को बनवास भेजकर आप राज्य करने लग पड़े। संसार में वाहिगुरू जी ने ऐसा कोई नियम नहीं बनाया जिसकी वज़ह से सभी लोग किसी की प्रशंसा करें या सभी लोग किसी की निन्दा करें। यहाँ तक कि बुरे से बुरे व्यक्ति में भी कोई न कोई गुण अवश्य होता है। जिसके फलस्वरूप उसके गुणों का आदर उसे भी प्यारा बना देता है।

इसी सम्बन्ध में एक कथा है कि एक बार फिरोजपुर में एक बहुत खूँखार डाकू हुआ है जिसको लोग सम्मी डाकू के नाम से जानते थे। एक बार एक वृद्ध माता पिता को सन्देशा मिला कि उसकी लड़की ने एक पुत्र को जन्म दिया है, उन्होंने बधाई भेजी है। माता ने उस समय के रिवाज के अनुसार घी लिया, चार मगज़ आदि डाल कर जच्चा के खाने के लिए पंजीरी बनाई जिसमें खूबकलां, कमर कश आदि पदार्थ जो स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए डाल दिये और साथ ही नये जन्में बच्चे के लिए शुकले बनाए। सोने का कड़ा बनवाया और लड़की की सासु को देने के लिए गरीबो-गरीब एक गहना बनवाया। पाँच चार तिऔर बनाकर वह लड़की के घर देने के लिए चल पड़ी। उसने पंजीरी वाला बल्टोहा (पीतल का बना हुआ मटका) सिर पर रख लिया, गहने भी उसने पंजीरी में ही छिपा कर रख लिए और पैसे भी उसने किसी तरीके से कपड़ों में सिल कर छिपाए हुये थे। अभी अन्धेरा थोड़ा था। सुबह की चली हुई माता उस स्थान पर पहुँच गई जहाँ वृक्षों की एक लम्बी कतार थी। आमतौर

पर उस स्थान में सरकार के भगौड़े, कातिल, डाकू आदि रहा करते थे। उस समय वह उस झरी में से गुज़रने के लिये बहुत झिझक रही थी, वह क्या देखती है कि उसके सामने एक बहुत ताकतवर आदमी आ गया। जिसने कन्धे पर गंडासा रखा हुआ था। जिसका कद एक ताकतवर पहलवान जैसा था। उसकी मूँछे ऊपर को उठी हुई थीं। देखने पर डर लगता था, माता एकदम घबरा गई।

तब उसने पहल करते हुए कहा कि माता! तू इतने अन्धेरे में ही आ गई, तुझे डर नहीं लगा इस झरी में से निकलने से? तो माता बोली कि मुझे पता है कि यहाँ सम्मी डाकू रहता है वह तो किसी को छोड़ता ही नहीं है पर मैं भी क्या करती, मेरी लड़की के घर पुत्र हुआ है। उसके लिए मैं पंजीरी लेकर जा रही हूँ। तब उसने कहा कि कोई टूंम, छल्ला भी ले जाना था। माता बोली कि गरीब आदमी हैं, यह पंजीरी ही बड़ी कठिनाई से बन पाई है। उस आदमी ने कहा कि, ''माता! बल्टोही (गागर) मुझे दे दे, मैं तुझे जंगल पार करवा देता हूँ। ऐसे ही कोई चोर डाकू, लूटकर खा न ले।'' माता ने कहा, ''पुत्र! तू तो मुझे परमात्मा के रूप में आकर मिला है, मैं किस प्रकार तेरा धन्यवाद करूँ।'' उसने कहा कि, ''माता! मनुष्य बुरा भी होता है पर उसमें कुछ अच्छी आदतें भी होती हैं। बुरे आदमी में केवल बुराई ही नहीं होती, कई गुण भी होते हैं। बुरे मनुष्य में जो गुण हैं, उनके साथ मेल कर लेना चाहिए, जो बुराई हो उसे नज़र अन्दाज़ कर देना चाहिए।'' इतना कहकर उसने बल्टोही सिर पर रख ली। माता का डर दूर भगाता हुआ, उसे जंगल पार करवा आया। जब वह बल्टोही माता को देने लगा तो बोला कि, ''ले माता! अब तुझे कोई खतरा नहीं है, इस झरी में ही खतरा था। यह भी कई मील का एक जंगल ही है। उस डाकू ने अपनी जेब से 30 रुपये भी दिए और कहा कि लड़की को टूंम टिल्ला बनाकर दे देना। वधाईयों की खुशी है।'' माता ने आशीषें दीं, ''पुत्र! सदा जवानी का आनन्द लूटता रहे तू, जुग जुग जीओ! तुझे महाराज जी बरकतें दें।'' जब वह लौटने लगा तो माता ने उसे कहा कि पुत्र तूने मुझे अपना नाम तो बताया ही नहीं? तो उसने कहा कि, ''माता! तूने मेरा नाम पूछकर क्या लेना है, मुझे तो लोग बहुत बुरा कहते हैं। मेरे डर से काँपते हैं, मेरा नाम सुनकर रोटी खाना भी छोड़ देते हैं।'' कहने लगी, ''तू इतना अच्छा है। क्या बात है?'' उसने कहा कि बात तो कोई नहीं बद से बदनाम अधिक माना जाता है। उसने कहा कि, ''बेटा, संयोग वश फिर मिलाप हो जाते हैं, मैं अपनी लड़की के पास जाकर तेरा यश गाऊँगी।'' तब उसने कहा कि, ''मैं ही सम्मी डाकू हूँ।''

तब माता बड़ी हैरान हो गई कि यही सम्मी डाकू था जिसने मुझे इतने सघन जंगल में से पार करवा दिया और 30 रुपये भी दिए। सो इस प्रकार मनुष्य में बहुत बार अवगुण ही हुआ करते हैं पर उसके मुकाबले में गुण भी बहुत हुआ करते हैं। गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं कि प्यारे! आप गुणों का आदर करो, अवगुणों को नज़र अन्दाज़ कर दो। जैसा कि फ़रमान है –

गुणा का होवै वासुला कढि वासु लईजै॥
जे गुण होवन्हि साजना मिलि साझ करीजै।
साझ करीजै गुणह केरी छोडि अवगण चलीऐ।
पहिरे पटंबर करि अडंबर आपणा पिड़ु मलीऐ। *पृष्ठ – 765*

संसार की आदत है कि किसी में 99 गुण हों पर एक अवगुण हो तो उसे सभी अवगुणहार ही कहेंगे। अपने किरदार (कार्य) पर नज़र दौड़ाकर नहीं देखते और दूसरों के दोष निकालने के लिए तैयार-बर-तैयार रहते हैं। चाहे कोई लेखक हो, चाहे कोई वक्ता हो, वह अपनी ओर नहीं देखते।

एक बार ऐसा आता है कि एक स्त्री से कोई गलती हो गई, उसका किसी पर पुरूष के साथ संग हो गया। उस समय के अनुसार मनुष्य को तो सजा न मिली पर स्त्री को संगसार (पत्थर मार मार कर मारना) करने की सजा मिली। वहीं पास ही ईसा जी निवास किया करते थे। वह वहाँ से भाग कर उनके पास आ गई और कहने लगी, "हे प्रभु! मुझ से भूल हो गई क्योंकि मेरा मन इतना बेसमझी में आया कि मुझे सत्य और असत्य का ज्ञान ही न रहा। मुझे किसी भी तरीके से बचा लो। हे प्रभु! मैं आपकी शरण में आई हूँ। मुझे बचा लो।"

तब ईसा जी ने कहा, "बेटी! इस संसार में प्रभु के बिना और किसी का भी जीवन पवित्र नहीं है। किसी जीव पर कृपा हो जाए तो 'सत' कायम रह जाता है। पर जो गलती करके पश्चाताप कर लेता है वह भी प्रभु के दर पर माफ हो जाता है। प्रभु बख्शनहार है, वह किसी के अवगुण नहीं देखता। जब सच्चे दिल से उसके पास प्रार्थना करो वह अवगुण माफ कर देता है।" बेटा! इन्हें आगे आने दो जब पत्थर मारने वालों ने घेरा डाल दिया तो उस समय ईसा जी के हाथ में भी एक पत्थर था क्योंकि राजा का हुक्म था कि सभी को पत्थर मारने पड़ेंगे। ईसा जी ने अपनी बाजू ऊपर की। गर्जना भरी आवाज़ में कहा, "ठहरो! इस अबला को वही पत्थर मारेगा जिसने स्वंय कभी कोई गलती न की हो। अपने अन्दर झांक कर देखो, अल्लाह की दरगाह में गुनाहगार मत बनो।

एक तो पहले ही गुनाह किये हुए हैं फिर दूसरा इस अबला को पत्थर मारकर और गुनाह कर रहे हैं।'' ईसा जी की बात सुनकर सभी के बाजू नीचे हो गये और चुप चाप खड़े हो गए। इस प्रकार अवगुण सभी में हैं, कोई बिरला पुरूष ही है, जिसके अन्दर कोई अवगुण न हो। सबसे बड़ा अवगुण है कि प्रभु को भूले रहना, उससे दातें (वरदान) लेकर उसे भूले रहना इसे अकृतघ्न कहा जाता है। अकृतघ्न के लिए महापुरुषों ने बहुत सारे वचन किये हैं। भाई गुरदास जी ने अपनी वारों में फ़रमान किया है –

मद विचि रिधा पाइ कै कुते दा मासु।
धरिआ माणस खोपरी तिसु मंदी वासु।
रतू भरिआ कपड़ा करि कजणु तासु।
ढकि लै चली चूहड़ी करि भोग बिलासु।
आखि सुणाए पुछिआ लाहे विसवासु।
नदरी पवै अकिरतघणु मतु होइ विणासु॥

भाई गुरदास जी, वार 35/9

सो हम बातें राम चन्द्र जी की कर रहे थे, सारे लोगो की निन्दा, नुकताचीनी सुनकर सीता जी को, राम चन्द्र जी को मज़बूरन दूर जंगलों में छोड़ना पड़ा। आप वह राज्य करने लगे।

एक बार लक्ष्मण जी को साथ लेकर आप अपने राज्य में भ्रमण करते हुए जा रहे थे। अचानक बातचीत छेड़ दी और कहने लगे, ''लक्ष्मण! मेरे से सीता जी का त्याग तो प्रजा ने करवा दिया अब तो मेरी निन्दा नहीं करते होंगे।'' लक्ष्मण जी ने कहा कि हे प्रभु! संसार का स्वभाव है कि यह कभी भी एक बात पर सहमत नहीं रहता, जैसे भावर स्मृति में लिखा है –

गुण मारग सूधै चलो खल निंदा डर डार।
विधि खल कुछ ऐसे रचे गुण में दोश उचार।

चाहे आप कितने ही साफ रास्ते पर चलो फिर भी मूर्ख लोग निन्दा करते ही रहते हैं। निन्दकों का यह स्वभाव ही होता है कि वे गुणों में भी दोष ढूँढते हैं। जैसे शीश महल में कोई कीड़ा घुसा दिया जाये तो वह कीड़ा दीवारों पर दौड़ता हुआ तालाश करता है कि कहीं कोई दरार मिल जाए, इसी प्रकार निन्दक पुरूष, महापुरुषों के पर्वतों के समान गुणों का आदर तो नहीं करता पर उनकी क्रिया को न समझकर उन पर दोषारोपण करता है। भावर स्मृति में आता है कि दुनियाँ दो मुँही है सभी लोग न तो किसी भी सूरत में किसी को अच्छा कहते हैं न ही किसी को बुरा

कहते हैं। वह अपनी सोच के चश्मों से दुनियाँ के गुणों और अवगुणों का निर्णय करते हैं –

सेव करो तु कहें कुछ चाहित नाहि करो तु कहें ढिठताई।
जो पद बंदन जाइ करों तु कहें हम ते उर माहिं डराई।
नाहि करो तु कहें यहि मूरख ब्रिध अब्रिध की सार न काई।
जानत है जन कातमजापति और करों अब काहि सुनाई।
जग लाज जहां जहाजकहें जड़ता ब्रत धारण ते खल दंभ उचारे।
रण सूर को क्रर कहें जग में रिजु भावहि बुधि बिहीन पुकारे।
मधु बैनन दीन कहें नर को जु बखान करै सु बचाल बिचारे।
गुण कौन अहे गुणवानन को खल दोखन ते जोइ नाहि लतारे।

जन्मसाखी में आता है कि गुरू नानक पातशाह ऐमनाबाद गये हुए थे। आप भाई लालो का प्यार देखकर वहीं ठहर गये। आप जी ने हमें सुमति देने के लिए कठोर तितिक्षा शुरू कर दी। रेत और आक का आहार किया, रोड़ों (पत्थरों) का गुरू ने बिछौना बनाकर बख्शीश का दर प्राप्त करते हुए बाद में कठिन परिश्रम करके हमें शिक्षा दी –

पहिला बाबे पाया बखसु दरि पिछो दे फिरि घालि कमाई।
रेतु अक्कु आहारु करि रोड़ा दी गुर करी विछाई।
भारी करी तपसिआ वडे भागि हरि सिउ बणि आई।
बाबा पैधा सचि खंडि नउ निधि नामु गरीबी पाई।
बाबा देखै धिआनु धरि जलती सभि प्रिथवी दिसि आई।
बाझु गुरू गुबारु है, है है करदी सुणी लुकाई।
बाबे भेख बणाइआ उदासी की रीति चलाई।
चढ़िआ सोधणि धरति लुकाई॥ भाई गुरदास जी, वार 1/24

वहाँ रहते हुए मरदाना जब शहर में जाता है तो गुरू महाराज जी की बड़ी निन्दा सुनता है। उसे भी कुराहे का डूम (चारण) कहकर बुलाते हैं। प्यार से भरे हुए दिलों से अपने गुरू की निन्दा नहीं सुनी जाती। भाई मरदाना ने अल्लाह के पास दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि गुरू नानक तो तेरा ही रूप है ये मूर्ख क्यों निन्दा करते हैं? वह जब गुरू महाराज जी के पास आता है तो गुरू महाराज जी को अपने हृदय की वेदना सुनाता है। गुरू नानक पातशाह कहते हैं, "मरदाना! दुनियाँ में अपनी इज़्ज़त रखना बहुत कठिन है –

ऐस कलीओ पंज भीतिओ किउ करि रखा पति।
जे बोलां तां आखीऐ बड़ बड़ करै बहुत।
चुप करां तां आखीऐ इत घटि नाही मति।
जे बहि रहा ता आखीऐ बैठा सथर घत।
उठ जाईं ता आखीऐ छारु गइआ सिर घति।

जे करि निवां तां आखीऐ डरदा करे भगत।
काई गली न मेवनी किथे कढा झति।
एथे ओथै नानका करता रखै पति।

इसी प्रकार जो महापुरुष हुआ करते हैं वे स्तुति निन्दा की परवाह ही नहीं किया करते। वे अपने सत्य के मार्ग पर दृढ़ता से चलते हुए संसार को सीधा मार्ग बताते हैं। सो लक्ष्मण जी ने कहा कि, ''हे प्रभु! लोगो का स्वभाव कभी भी एक समान नहीं रहता, आप स्वंय सभी कुछ जानते हो। माता सीता जी महान पवित्र सती होने के बावजूद मूर्ख लोगों के कहने पर बिछौड़े का दुख सहन कर रही है। आप मर्यादा पुरूषोत्तम हो, मर्यादा के नियमों का पालन करते हुए सीता जी को दूर बनवासी बना दिया। आप तो सब कुछ जानते हो, मर्यादा का पालन करते हुए भी अनभिज्ञ हो।'' ऐसे वचन करते हुए उनके सामने से एक मृग निकला। उन्होंने मृग के पीछे घोड़े दौड़ाए, मृग जंगल में छिप गया। आगे जंगल साफ किये हुये थे उसके बाद खेत आ गये जहाँ किसानों ने बड़ी मेहनत करके फसलें बोई हुई थीं, इन दोनों को प्यास लगी। एक किसान जो हल चला रहा था उसके पास पहुँचे और कहा कि हमें जल पिला दो। श्री राम चन्द्र जी क्या देखते हैं कि किसान तथा बैलों ने घुटनों तक लोहे के बूट पहने हुए हैं। शरीर पर लोहे की जाली का कोट, सिर पर लोहे का टोप पहना हुआ है, बैलों पर जाली के झूल डाले हुए हैं। बड़े हैरान हुए कि यह कैसी वर्दी है। आपने पानी पीकर प्यास बुझाई। स्वाभाविक ही श्री राम चन्द्र जी ने किसान को पूछा कि इतना लोहा तूने अपने ऊपर तथा बैलों पर क्यों बान्धा हुआ है तो उसने कहा कि महाराज! इस देश में जहाँ हम रहते हैं, भूमि में बड़े बड़े बिच्छू रहते हैं जिनमें इतना ज़हर है कि यदि पत्थर में भी डंक मार दें, संखिया बना देते हैं। उनके डंक के डर की वज़ह से मैंने तथा बैलों ने लोहे के बूट पहने हुए हैं। यह जो बैलों पर झूल और टोप डाला हुआ है इसके बारे में मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि यहाँ एक बहुत तीखी चोंच वाला पन्छी रहता है, यह पन्छी चोंच मार कर मांस निकाल कर ले जाता है। उनके डर की वज़ह से लोहे का कोट और टोप पहना हुआ है। स्वाभाविक ही श्री राम चन्द्र जी ने कहा कि ऐ किसान! जिस भूमि में इतना दोष हो, आप उस जगह को छोड़ क्यों नहीं देते? इतनी धरती बाहर पड़ी है जहाँ तुम खेती कर सकते हो, इतनी नदियाँ नाले बह रहे हैं वहाँ से तुम खेतों को पानी से सिचांई कर सकते हो। इतनी कठोर भूमि तुम्हें छोड़ देनी चाहिए। उस समय किसान ने कहा कि महाराज! अपनी स्त्री तथा भूमि में कितने भी दोष क्यों न हों, कोई भी इज़्ज़तदार मनुष्य अपनी भूमि या स्त्री का त्याग नहीं कर सकता। यह

तो श्री राम चन्द्र जी ही थे जिन्होंने एक धोबी के कहने पर अपनी स्त्री पर सन्देह करके उसे छोड़ दिया। वह सती सीता इस सन्देह के कारण महा दुख भोग रही है। उसने बहुत निन्दा की कि राम चन्द्र जी ने सीता जी का त्याग करके बहुत बुरा किया है। किसान ने हल फिर जोत दिया। श्री राम चन्द्र जी और लक्ष्मण जी घोड़ों पर चढ़ने लगे तो श्री राम चन्द्र जी ने कहा कि, ''देखो लक्ष्मण! हम सीता जी के बारे में पूरी तरह से जानते हैं कि वह महा पवित्र देवी है पर लोगों से निन्दा सुनकर उसका त्याग कर दिया। अब इस बात की दूसरे लोग निन्दा करते हैं।'' सो यह लोक लाज की वासना प्रभु दर्शनों में बहुत भारी रूकावट है।

चौथी वासना शास्त्र वासना हुआ करती है। पुस्तकों के ढेरों के ढेर लगा लेने और हर समय पढ़ते रहना। पढ़ पढ़ कर लोगों को सुनाना और यह वासना रखना कि लोग मेरे प्रवचन सुनकर, गाना सुनकर मोहित हो जाएं। मेरे जैसा और कोई रागी, कथाकार, लैक्चरार न हो और यह वासना सदा लगे रहना कि मैं अधिक से अधिक ग्रन्थ पढ़ लूँ। उन में से Quotations टिप्पणियाँ याद करके मैं भरी सभाओं में सुनाकर यश प्राप्त करूँ। लोग यह कहें कि ऐसा विद्वान हमनें कोई नहीं देखा। यह शास्त्र वासना कहलाती है।

ऐसा ग्रन्थों में लिखा मिलता है कि एक भारद्वाज मुनि हुए हैं जो अनेक प्रकार की औषधियाँ खाकर अपने गले के स्वर को इतना मीठा रखते थे कि लोग सुनकर मोहित हो जाते थे। वे इसी ख्याल में रहते थे और ब्रह्म चिन्तन का उन्हें समय ही नहीं मिलता था। इस वासना के अधीन वह प्रभु को भूले रहते थे। वृद्ध हो जाने पर भी उन्होंने इस विचार को न छोड़ा।

ऐसा लिखा हुआ मिलता है कि एक बार इन्द्र इसके पास आया, उसने इसके वचन सुने। इन्द्र ने पूछा कि मुनि जी! आप ब्रह्म चिन्तन कितना समय करते हो? उसने कहा कि ब्रह्म चिन्तन का समय तो कम ही मिलता है पर मेरे मन में एक लालसा रहती है कि मैं पाठ इत्यादि करता रहूँ और लोग सुन सुन कर वाह, वाह करते रहें। इन्द्र ने कहा कि यदि तुम्हें और आयु मिल जाए तो फिर तुम क्या करोगे? अब उसने कहा कि उस मिली हुई आयु में भी लोगों को प्रवचन सुनाकर मोहित करूँगा। तो इन्द्र ने कहा कि मुनि जी। कन्ठ तो तुम्हारे वश में नहीं है, यह तो प्रभु के वश में है जिसे जो इन्द्रिय देता है वह नेत के मुताबिक उसका प्रयोग करता है। आप वासना में फंसे हुए हो, इस वासना का त्याग करो और

ब्रह्म चिन्तन करो। आपका अन्त बहुत दूर नहीं है। मानस जनम बहुत सौभाग्य से प्राप्त होता है, आप वह कार्य करो जिसके बारे में गुरू नानक पातशाह ने भी फ़रमान किया है –

नानक लेखै इक गल होरु हउमै झखणा झाख॥ पृष्ठ - 467

गुरू महाराज जी ने शास्त्र वासना के बारे में बाणी में अनेक स्थानों पर ज़िक्र किया है –

केते कहहि वखाण कहि कहि जावणा।
वेद कहहि वखिआण अंतु न पावणा।
पड़िऐ नाही भेदु बुझिऐ पावणा।
खटु दरसन कै भेखि किसै सचि समावणा।
सचा पुरखु अलखु सबदि सुहावणा।
मंने नाउ बिसंख दरगह पावणा।
खालक कउ आदेसु ढाढी गावणा।
नानक जुगु जुगु एकु मंनि वसावणा॥ पृष्ठ - 148

इसी को और विस्तार देते हुए गुरू महाराज जी ने फ़रमान किया है –

पड़ि पड़ि गडी लदीअहि पड़ि पड़ि भरीअहि साथ।
पड़ि पड़ि बेड़ी पाईऐ पड़ि पड़ि गडीअहि खात।
पड़ीअहि जेते बरस बरस पड़ीअहि जेते मास।
पड़ीऐ जेती आरजा पढ़ीअहि जेते सास।
नानक लेखै इक गल होरु हउमै झखणा झाख॥ पृष्ठ - 467

सो यह शास्त्र वासना प्रभु मिलाप में बन्धन रूप है। यह वासना बड़े बड़े ऋषियों मुनियों को हुई थी। नारद मुनि को हुई थी, जो 64 प्रकार की विद्याओं में प्रवीन था। पर उसके मन में शान्ति न आई। उसने सन्त कुमार ऋषियों को जाकर अपना दु:ख सुनाया कि कृपा करो और मुझे दुख में से बाहर निकालो। तब उन्होंने कहा कि तूने पुस्तकें ही पढ़ी हैं तूने तत्व को नहीं समझा तत्व को न जानने वाला जो भजन पाठ करता है, विद्वान बनकर जो अपनी कलम चलाता है, दुनियाँ को सुमति देता है, उसने यदि जाना नहीं, गुरू महाराज जी के फ़रमान के अनुसार –

नानक लेखै इक गल होरु हउमै झखणा झाख॥ पृष्ठ - 467

तो वह विद्वान पुरूष नहीं है वह केवल चुन्च ज्ञानी (खोखला) है। गुरू महाराज जी ने फ़रमान किया है –

जगु कऊआ मुखि चुंच गिआनु। पृष्ठ - 832

उसने तत्व को नहीं जाना और उस विद्वान का दर्जा गुरू महाराज जी के अनुसार बहुत ही नीचा होता चला जाता है। आप फ़रमान करते हैं

–

आवन आए त्रिसटि महि बिनु बुझै पसु ढोर।
नानक गुरमुखि सो बुझै जा कै भाग मथोर॥ पृष्ठ - 251

वह कुछ भी नहीं हैं, कड़छी की तरह उसकी वृत्ति, कितने ही स्वादिष्ट भोजन बना ले, कड़छी को कोई आनन्द नहीं आता। वह सूनी ही घूमती है –

पड़ना गुणना संसार की कार है अंदरि त्रिसना विकारु।
हउमै विचि सभि पड़ि थके दूजै भाइ खुआरु।
सो पड़िआ सो पंडितु बीना गुर सबदि करे वीचारु।
अंदरु खोजै ततु लहै पाए मोख दुआरु॥ पृष्ठ - 650

पढ़ना कोई बुरी बात नहीं हैं पर उसके पीछे एक जीवन काम किया करता है कि यदि आध्यात्मिक ग्रन्थ पढ़ने हैं तो वह इस लिए पढ़े जाते हैं कि हमें आत्म तत्व की कुछ पहचान हो जाये। यदि यह भावना मन में नहीं है, आत्म तत्व को नहीं जाना, फिर तो वह सुख से हीन रह गया जैसे नमकीन सब्जियों में बेअन्त प्रकार के मसाले डालकर उसे स्वादिष्ट बनाया जाता है, उसकी सुगन्धि दूर दूर तक फैल जाया करती है पर कड़छी को कोई स्वाद नहीं आया करता। वह सब्जी में घूमती तो रहती है पर वह रस से खाली रहती है। ब्रह्म चिन्तन मुख्य कर्म है, पढ़ने की वासना त्याग कर ब्रह्म चिन्तन करना चाहिए। अपने स्वरूप का जब तक ज्ञान नहीं होता और परिपूर्ण वाहिगुरू जब तक अन्दर से प्रकट नहीं होता, तब तक पढ़ना एक बोझ ही हुआ करता है। एक थकावट हुआ करती है, किसी भी लेखे में नहीं गिना जाता। रोज़ी तो वाहिगुरू जी ने प्रालब्ध कर्म अनुसार सभी को देनी ही है पर मुख्य कर्म तो वाहिगुरू जी की प्राप्ति ही है। पल-पल करके अवधि बीतती जा रही है।

कई प्रेमियों का विचार होता है कि पढ़ाई के बगैर मनुष्य अनजान रहता है, उसे कुछ भी पता नहीं होता, इस पढ़ने के बारे में यहाँ बात नहीं की जा रही। दुनियाँवी कार्यों के लिए उन पुस्तकों का पढ़ना जैसे सांईस की पुस्तकें हैं, मैडिकल की पुस्तकें हैं, इन्जिनियरिंग, इतिहास, geography (भूगोल) या राजनीतिक पुस्तकें हैं, ये केवल जानकारी बढ़ाते हैं। समाज में अपनी रोज़ी कमाने के लिए, कर्म को आसान बना देती है पर यह सब कुछ करके मनुष्य सुखी नहीं कहला सकता क्योंकि उसने यह विद्या नहीं पढ़ी जिससे वह काम के घातक प्रहार से स्वतन्त्र हो सके। धुरन्धर क्रोध की भयदायी जकड़ से निकल सके, मोह की अनेक धाराओं में से स्वतन्त्र बह सके। लोभ और अभिमान को समझ सके। इसी तरह से

ये पुस्तकें पढ़ने से नहीं पता चलता कि राज, माल, रूप, जात, यौवन से छुटकारा कैसे पाया जा सकता है। न ही इसे यह पता चलता है कि शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध के विषयों में से कैसे निकला जा सकता है। पाँच क्लेश उसके मन को हर समय पीड़ित करते रहते हैं। इन पाँचों क्लेशों अविद्या, अभिनिवेश अस्मिता, राग, द्वेष में से कैसे छुटकारा पाया जा सकता है। पुस्तकें पढ़ने से उसकी बुद्धि कुशाग्र हो जाएगी, वह यह जान जायेगा कि धोखे कैसे दिए जा सकते हैं, दूसरे को कैसे छला जा सकता है, दूसरे को कैसे परेशान किया जा सकता है। वह कानूनी पुस्तकें पढ़कर इस योग्य हो जाता है कि सच्चे सुच्चे सुखी बसते हुए मनुष्यों को कैसे परेशान किया जा सकता है। इस विद्या को महाराज जी मूर्खों की विद्या कहते हैं यदि पढ़ कर मनुष्य अपने आपको जान ले, वह पढ़ा लिखा मनुष्य प्रवान हुआ करता है –

पड़िआ बुझै सो परवाणु।
जिसु सिरि दरगह का नीसाणु॥ ***पृष्ठ - 662***

पड़िआ मुरखु आखीऐ जिसु लबु लोभु अहंकारा। ***पृष्ठ - 140***

गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं कि नाम पढ़ना नाम को जानना, यह गुर मत है –

नाउ पड़िऐ नाउ बुझीऐ गुरमती वीचारा। ***पृष्ठ - 140***

गुरू मत धारण करके, नाम धन कमाकर हम भण्डारे भर लेते हैं जो यहाँ भी खरे उतरते (निभाते) हैं और दरगाह में भी स्थान दिलाते हैं, कोई भी उनकी टोका टाकी नहीं करता, सभी उनका आदर करते हैं –

रे रे दरगह कहै न कोऊ। आउ बैठु आदरु सुभ देऊ॥ ***पृष्ठ - 252***

सभी उसका सम्मान करते हैं, अरे, अरे कोई नहीं कहता।

गुरू नानक पातशाह अभी बचपन में ही थे। आपके पिता जी ने सोचा कि इन्हें पढ़ने के लिए भेज दिया जाये। दूसरे दिन नानक जी को समय पर माता त्रिपता जी से कह कर नये कपड़े पहनवा कर तैयार कर दिया। आप जी ने नौकर के सिर पर एक शक्कर की परात और एक वस्त्र (थान) रख कर पाठशाला की ओर चल पड़े। गुरू नानक के साथ वचन करते जा रहे हैं कि बेटा! अब तू मन लगाकर पढ़ना, पढ़ने वाले बच्चे दुनियाँ में बहुत बड़े हो जाते हैं, उनका दुनियाँ में बहुत मान होता है, वे हर तरफ से इज़्ज़त प्राप्त करते हैं। उनके मुकाबले में जो अनपढ़ पुरूष हैं उनका कहीं भी मान नहीं होता न ही उन्हें कोई कहीं रोज़गार

मिलता है, वे मज़दूरी करके अपना पेट भरते हैं। परिवार बहुत दुखी हो जाता है, पर यदि इसके विपरीत पढ़ा लिखा हो, वह अच्छी पदवियाँ प्राप्त कर लेता है जो काफी समय तक चलती रहती है कोई व्यापार धन्धा कर लेता है। धन इकट्ठा हो जाता है, शान्ति पूर्वक जीवन व्यतीत करता है।

गुरू नानक पातशाह पिता की बातें सुनते सुनते पाठशाला पहुँच जाते हैं। वहाँ मेहता कालू जी ने पान्धे को कहा कि नानक जी को पाठशाला में पढ़ने के लिए लाया हूँ। इतना कहकर नौकर की तरफ इशारा किया, उसने शक्कर तथा वस्त्र (थान) पान्धा जी के आगे रख दिया। मेहता कालू जी ने सवा रुपया पान्धा जी को दक्षिणा दी। साथ ही कहा कि पान्धा जी! आप ज्यों ज्यों नानक को पढ़ाओगे, मैं आपकी सेवा में, अनाज की बोरियां, कपास, गन्ने, गुड़, शक्कर तथा सब्जियाँ, ईंधन आदि भेजता रहूँगा। प्रभु की कृपा से हमारे पास बहुत गाएं भैंसे हैं, दूध भी बहुत फालतू है, मैं अपने नौकर के हाथों दूध भेजता रहूँगा पर आप मेहनत करके इसे पढ़ाना। पान्धा जी जानते थे कि मेहता कालू राये बुलार के खास मैनेजर हैं जिनका काम फसलों की काश्त लेखा-जोखा करना अन्य राजसी कार्यों में सेवा करना था। गाँव में वह सबसे प्रमुख व्यक्ति माने जाते थे। राये बुलार जी का भी नानक जी की तरफ खास ध्यान रहता था क्योंकि उनके बारे में बहुत सारे माननीय लोगों से बड़ी संजीदगी के साथ नित्य हो रहे कौतुक सुन रहा था। गुरू नानक के बारे में उसके मन में बहुत श्रद्धा थी। यह भी उसके मन में पक्का विचार था कि यह बालक अल्लाह ताला द्वारा संसार का कल्याण करने के लिए भेजा गया है। इसलिये भी वह मेहता कालू से विशेष निकटता रखते थे। पान्धा जी भी इस बात को जानते थे, उन्होंने गुरू नानक के कौतुक सुन रखे थे। उसने गुरू नानक को आम बच्चों जैसा नहीं समझा था।

उसने गुरू नानक जी को प्यार किया और कहा कि तू कल से तख्ती लेकर आना, कलम यहाँ से मिल जायेगी, स्याही, दवात यहाँ से मिल जाएगी। गाचणी (मुलतानी मिट्टी) यहाँ होती ही है, तू तख्ती धो लेना और गाचणी लगा देना जब फट्टी (तख्ती) सूख जाये तब तू मेरे पास ले आना। मैं उस पर अक्षर लिख दूँगा। उन अक्षरों को देखकर तूने अक्षर लिखने होंगे। गुरू नानक ने कहा पान्धा जी! आपने जैसा कहा है मैं वैसा ही करूँगा।

पान्धा जी चले गये पर गुरू नानक जी वहीं पर ही रहे। आप जी के व्यक्तित्व में इतना आर्कषण था कि जो कोई भी देखता था, वह आकृषत

हुए बिना रह नहीं सकता था। गुरू नानक पातशाह के लिए प्यार उसके अन्दर स्वंयमेव ही हिलारे लेने लग जाता था। इसी तरह हुआ आज बच्चे पान्धा जी के जाने के बाद शोर शराबा नहीं कर रहे थे। वे नानक जी के चारों ओर झुरमुट बना कर बड़ी शान्ति के साथ बैठे थे। गुरू नानक जी उनके साथ अति मधुर वचन विलास कर रहे थे।

दूसरे दिन गुरू नानक पातशाह तख्ती लेकर आए और सुखा कर पान्धा जी के पास ले गये, वह बहुत खुश हुआ। गुरू नानक के चेहरे की ओर देखने लगा, अन्दर कोई अत्याधिक आकर्षण हुआ, अनायास ही आदर उसके हृदय में नानक के प्रति उत्पन्न हो गया। उसे पण्डित हरिदास जी द्वारा किए गये पूर्व वचन याद आ गये। पण्डित हरिदास जी ने कहा था कि पान्धा जी! नानक के जो ग्रह हैं, उन्हें देखकर पता चलता है कि ज्योतिष विद्या के अनुसार वे इतने महान हैं, इतने सर्वश्रेष्ठ हैं जिनके मुकाबले का संसार में कोई नहीं हुआ। मुझे तो कई बार भ्रम पैदा हो जाता है कि यह ईश्वर का विशेष अवतार है। मैंने जब से उनकी जन्म पत्री बनाई है मैं तो उसी समय से ही उनके प्रति आदर भाव में रहता हूँ। परमात्मा करे कि हमारे जिन्दा रहते रहते इनका प्रताप बढ़े और इनका वास्तविक रूप हम देख सकें।

विदेशियों के लगातार राज्य करने के कारण हमारे धार्मक विश्वास बहुत कमज़ोर पड़ चुके हैं, हम डाँवाडोल हुए पड़े हैं। मैंने इनके ग्रहों को देखकर हिसाब लगाया है कि यह पहले हो चुके अवतारों से कहीं अधिक महान अवतार हैं। वे अवतार तो एक-एक काम करने ही आए थे। श्री राम चन्द्र जी मर्यादा कायम करने के लिए तथा रावण जैसे अनीति पर चलने वालों को दण्ड देने के लिये आए थे। कृष्ण महाराज जी ने सत्य की जीत करते हुए असत्य को पूर्णतया समाप्त कर दिया। उनका दिया गया गीता ज्ञान आज भी दुनियाँ को मार्ग दर्शा रहा है। इस नानक की मुझे जानकारी हुई कि यह गुरू अवतार होंगे। गुरू अवतार नाम का दान दिया करता है और जीवों को प्रभु के साथ मिला दिया करता है। यह कोई ऐसा सरल मार्ग जीवों को बताएगें कि वह विपरीत परिस्थितियों होने के बावजूद भी अपने अन्दर ही प्रभु को ढूँढ लिया करेंगे। ऐसी बातें जब तलवण्डी के विद्वान इकट्ठे हुआ करते थे, उस समय आम ही किया करते थे। जब उन्होंने सुना कि नानक जी अपनी अंगूठियाँ उतार कर जरूरत मन्दों को दे देते हैं, माता जी से बढ़िया बढ़िया चीज़ें लेकर गरीबों को दे देते हैं, ऐसी बातें पारखी लोगों को बहुत हैरान कर देती थी कि यह बालक आम बालक नहीं है। यह तो स्वंय ही परमेश्वर मानव कल्याण के

लिए देह धारण करके आया है।

पान्धा जी के मन में ऐसे संस्कार थे। आज गुरू नानक पातशाह उसके सामने साकार रूप में बैठे थे, तख्ती पान्धा जी के हाथ में थी, वह किसी अगंमी रस को अनुभव कर रहा था। उसे इस प्रकार लग रहा था कि गुरू नानक का अस्तित्व शान्ति ही शान्ति फैला रहा है सारी पाठशाला के बच्चे शान्त बैठे थे और कोई भी शोर नहीं मचा रहा था। उसे यह कहना नहीं पड़ रहा था कि बच्चो चुप करके बैठ जाओ। आज बच्चे अपने आप ही चुप बैठे थे। यही प्रभाव उसके मन पर पड़ रहा था और आदर पूर्वक टकटकी लगाकर नानक की ओर देख रहा था। कोई रस महसूस कर रहा था, चित्त में कोई एकाग्रता प्रतीत हो रही थी, फुरने समाप्त हो चुके थे, कल्पना आस पास बिल्कुल ही नहीं थी, अन्दर ही अन्दर हैरान हो रहा था कि इस बालक का कितना प्रभाव है। इसके अन्दर कितनी शान्ति होगी, जो चौगिर्दे को भी शान्त कर रही है। इन गहरी सोचों में से एकदम निकला और महसूस करता है कि नानक बालक ने मुझ पर कोई त्राटक तो नहीं कर दिया? सावधान हुए, कलम उठाई, दवात में डुबोई, तख्ती पकड़ कर मुट्ठे को अपने हाथ से पकड़ा और अपनी जांघ पर तख्ती रखी। उस पर लिख दिया 'ओउम नमों सिंद्ध'। गुरू नानक इन लिखे हुए अक्षरों को बहुत ही गौर के साथ देख रहे थे। जब पान्धा दूसरी बार कलम स्याही की दवात में डुबोने लगा तो गुरू नानक जी ने कहा पान्धा जी! यह आपने क्या लिखा है? यह भी आपने मुझे पढ़ाना है? तब उसने कहा कि नानक! यह शास्त्रों की मर्यादा है कि जब भी कोई चिट्ठी लिखनी हो, कोई और लिखित प्रारम्भ करनी हो, तो ऊपर मंगल के शुभ अक्षर लिखे जाया करते हैं। अब क्योंकि यह लिखकर मैंने वर्णमाला के अक्षर लिखा देने हैं। इसलिए औंकार को नमस्कार करके कार्य की सिद्धि के लिए प्रार्थना की है। नानक जी कहने लगे, "पान्धा जी! आपने औंकार लिखा है जिसे आपने 'ओउम' कहा है मेरा विचार है कि आप उस औंकार को तो जानते ही होंगे? उस समय पान्धा जी यह सुनकर हैरान हो गए और सोचने लगे कि अब मैं अपनी कमज़ोरी को कैसे छिपाऊँ? सत्य का सूर्य सामने चम-चमाता हुआ प्रकाश दे रहा है, झूठ का अन्धकार अब टिक नहीं रहा, अन्त में कहना ही पड़ा नानक! मैंने तो रीति रिवाज़ के तौर पर यह मंगलाक्षर लिखा है, मैंने अभी औंकार को नहीं जाना, न ही औंकार का मुझे पता है।

नानक कहने लगे, "हे पान्धा! आपने औंकार को जाने बगैर नमस्कार कैसे कर दी? आपका तो उसके साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं जुड़ा, कार्य

तो तुम्हारा तभी सिद्ध होगा। यदि तुम उसे पहचान कर कार्य सिद्धि के लिए प्रार्थना करो।" आज पान्धा जी ने ये वचन पहली बार सुने थे। उसे लगा कि कोई महान ऋषि मुनि, महान अवतार, मेरे सामने बैठा है जो मुझे सुमति देने के लिए, मेरे भाग्य जागे और मेरे साथ सम्पर्क करने के लिए बैठा है। वह मुझे विद्या गुरू समझकर आया है पर मुझे तो उसके पहले वचन ने ही बिल्कुल अनजान बना दिया क्योंकि मैंने कभी भी औंकार के बारे में नहीं सोचा कि वह क्या है? कहाँ रहता है? अभी पान्धा जी यह बात सोच ही रहे थे, उसी समय गुरू नानक ने यह प्रश्न कर दिया कि, "आप मुझे क्या पढ़ाना चाहते हो और क्यों पढ़ाना चाहते हो?" उस समय पान्धा जी होश में आए, अपने आप को देखा, अपनी मानसिक शक्ति को इकट्ठा किया और कहने लगे कि हे नानक! मैं तुझे दुनियांवी हिसाब किताब करने की पढ़ाई पढ़ाऊँगा। जिसमें गणित विद्या, पहाड़े, सवैया, डयोढ़ा औंटा, ढौंचा, ढईया और अनेक विधियाँ बताऊँगा जिनका प्रयोग करके तू हिसाब किताब में पूरी तरह माहिर हो जायेगा। यह सारी विद्या तुझे पढ़ा देनी है। मैंने देखा है कि तू ज़हीन हैं तू थोड़े से दिनों में ही सारी विद्या सीख जायेगा। गुरू नानक ने कहा पान्धा जी! यह पढ़कर मुझे क्या लाभ होगा? वह तुरन्त बोल पड़ा, "नानक! तुझे अच्छी नौकरी मिल जाएगी जैसे कि तेरे पिता जी राय बुलाकर के यहाँ मुख्य प्रबन्धक हैं, ऐसे ही तुझे भी बहुत ऊँची पदवी मिल जायेगी। अपने नगर के हाकिम का, दौलत खान लोधी के साथ निकटवर्ती सम्बन्ध है वह नवाब को कहकर तुझे उसके दरबार में अच्छे पद पर नौकरी दिलवा देगा। जिसके लिए पढ़ाई बहुत जरूरी चीज़ है। यदि तू अच्छा हिसाब किताब लिखना पढ़ना सीख गया तो तू उसके आ्थक महकमे (वित्त विभाग) में अच्छी पदवी पर लग जायेगा। कुल मिलाकर सार की बात यह है नानक जी! यह विद्या पढ़कर तुझे बहुत अच्छी रोज़ी प्राप्त हो जायेगी। यदि तूने यह विद्या न सीखी तो जैसे अनपढ़ आदमियों का हाल होता है वैसा ही हाल होगा।

गुरू नानक तुरन्त बोल पड़े कि, "पान्धा जी! रोज़ी रोटी देने वाला तो प्रभु स्वंय ही है, वह प्रभु जिसे ओंकार कहकर नमस्कार की है, वह सब जीवों को रोज़ी देता है। उसे विशम्भर कहा जाता है। यहाँ जीव के वश में कुछ भी नहीं है, यहाँ सारी क्रिया उसके हुक्म में हो रही है। हुक्म के अधीन ही अमीर होता है, हुक्म आधीन गरीब होता है, हुक्म के अन्दर उत्तम पदवी मिल जाती है और हुक्माधीन ही उत्तम पदवी से वंचित हो जाता है। वह परमेश्वर इतना सर्व कला समरथ है कि वह घट

घट की बात जानता है और अपने जीवों की पूरी तरह से देखभाल करता है पर यह मूर्ख जीव हर समय अपने आपको प्रभु से हमेशा तोड़े रखता है और हउमै के कारण अपने आप को जीव कहलाने लग जाता है। जीव भाव से और नीचे स्तर पर आकर अपने आपको पाँच तत्वों की बनी देह ही नहीं समझने लगता बल्कि पूरी तरह विश्वास करता है कि मैं देह ही तो हूँ। देह बचपन, जवानी, बुढ़ापे के रूप धारण करती हुई नाशवान है। इसे पता नहीं कि मैं क्या हूँ? कितना ही क्यों न पढ़ ले, यह अपने आपको जीव ही नहीं मानता अविनाशी मानने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। पान्धा जी! यह पढ़ा लिखा फिर मूर्ख ही हुआ न? इस जीव को रोज़ी तो प्रभु ने देनी ही है, इसे वह पढ़ाई पढ़नी चाहिए जिससे इसकी जन्म मरण के बन्धन से मुक्ति हो जाए क्योंकि जन्म मरण से बहुत दुख होता है। यदि पढ़कर आपने अपने आप को पहचाना नहीं, हउमै वश होकर कार्य कर रहे हो तो कर्म उसे बान्ध लेते हैं और वह कुएं के मेढक की तरह गोते लगाता है, चौरासी के चक्कर में घूमता रहता है जैसे कि –

हउमै एहा जाति है हउमै करम कमाहि।
हउमै एई बंधना फिरि फिरि जोनी पाहि। ***पृष्ठ - 466***

उस समय पान्धा जी सावधान हुए, अपनी विद्धता को एक ओर रख दिया, मन में सोचा कि अरे मन! आज स्वभावतया नानक जैसे व्यक्तित्व के साथ मेल हुआ है, तू इससे असली पढ़ाई सीख ले और कह कि हे नानक! मुझे वह पढ़ाई बता जिससे जन्म मरण से मुक्ति मिलती है। उस समय गुरू नानक के नेत्र आधे खुले और आधे बन्द हुए सुरत अन्दर प्रवेश कर गई ऐसे लगता था जैसे किसी महान शक्ति के साथ लीन हो गए हों। उस समय आपके पवित्र कंठ से कुछ वचन उच्चरित हुए जिन्हें पान्धा जी ने ध्यान से सुना, जिनका परमार्थ कुछ इस प्रकार था।

बालक रूप नानक पातशाह ने कहा कि पान्धा जी! यह जीव इस संसार को सत्य समझकर इसमें मस्त हो गया है इसे अपने स्वरूप का ज्ञान भूल चुका है। इसे पाँच चोर काम, क्रोध, लोभ, मोह अहंकार, नियन्त्रण में रखते हैं। इन पाँच चोरों का सरदार मोह है। मोह हउमै तत्व के कारण पैदा हुआ है। सृष्टि के आदि में केवल निरंकार थे, अब भी वही हैं। जब कुछ भी नहीं होगा, फिर भी वह रहेंगे। वाहिगुरू जी ने अपने आप से आप प्रकट होकर संसार की रचना की जैसा कि फ़रमान आता है –

आपीन्है आपु साजिओ आपीन्है रचिओ नाउ।
दुयी कुदरति साजीऐ करि आसणु डिठो चाउ॥ ***पृष्ठ - 463***

वाहिगुरू जी ने माया का प्रसार किया जिसमें हउमै तत्व सबसे प्रधान

है, उस हउमै तत्व ने इस जीव को प्रभु से अलग करके अलग हस्ती बना दिया। इस जीव को पाँचों तत्वों ने अलग कर दिया। हंगता और ममता जिसे 'मैं' तथा 'मेरी' कहा जाता है उसे तुम प्रभु के नाम के साथ जलाकर स्याही बना दो और लिखने वाला कागज़ सारमत का बनाओ। संसार में सत्य और असत्य दो तत्व प्रतीत हो रहे हैं। सत्य तत्व सदा सदीवी है, यह न कभी कम होता है, न बढ़ता है, न कहीं आता है, न जाता है, यह सर्व कला समरथ पूरी तरह सब कुछ जानता है। दूसरा तत्व इसमें भ्रम जैसा है कि अन्धेरे में एक रस्सी पड़ी हो, वह पूरा निश्चय न होने के कारण साँप दिखाई देती है। जब प्रकाश हो जाता है उस समय ज्ञान हो जाता है कि यह साँप तो तीन काल में भी रस्सी में नहीं हुआ केवल भ्रान्ति पैदा होने से यह रस्सी साँप दिखाई देने लग गई। सो यह साँप वाली दृष्टि मिथ्या है।

इसी तरह से यह संसार है तो परमेश्वर रूप, पर माया का प्रभाव होने के कारण संसार से अलग दिखाई देने लग गया पर जब गुरू से शब्द लेकर कमाई करके ज्ञान का प्रकाश होता है तो यह माया का पहना हुआ मोतियाबिन्द आखों में से दूर होकर, प्रकाश दिखाई देने लग गया। उसमें वस्तु का असली स्वरूप भी दिखाई देने लग गया। जब ज्ञान हो जाता है उस समय मिथ्या दृष्टि का नाश हो जाता है। यह जीव तत्व को जान लेता है और इसे पता चल जाता है कि केवल अधिआस परिपक्व होने के कारण मुझे अपना आपा जीव प्रतीत दे रहा था वैसे सत्य वस्तु यह थी कि यह प्रभु स्वंय ही जीव रूप में खेल कर रहा है। मिथ्या दृष्टि होने के कारण यह संसार दिखाई देता है। जब सार मत उत्पन्न होती है तो पता चलता है कि यहाँ तो प्रभु अनेक रूप धारण करके अपनी खेल कर रहा है। मैं कुछ भी नहीं हूँ। तू ही तू हैं।

सो महाराज जी कहने लगे कि पान्धा जी! आप कागज़ इस सार मत का बनाओ। हउमै को समाप्त करके उसकी स्याही बनाओ। वाहिगुरू के प्यार की कलम बनाओ, भक्ति भाव में आकर आप चित्त को लेखक बना लो, फिर जिस प्रकार मुझे तुम्हारे पास पढ़ने के लिए भेजा गया है, आप जानते हो कि बिना गुरू के विद्या नहीं आती, इसी तरह से यह जो रूहानी पढ़ाई है, यह भी समरथ गुरू के बिना नहीं आया करती। सो इसलिये ब्रह्म नेष्टी, ब्रह्मस्त्रोती, ब्रह्म वक्ता गुरू से पूछकर आप लिखना शुरू करो।

पान्धा जी ने फिर कहा, "हे नानक! आपसे बड़ा कौन है, आप

समरथ पुरूष हैं, आप ही मुझे बताओ कि मैं चित्त लिखारी द्वारा प्यार से भरा हुआ सत्य के कागज़ पर क्या लिखूं?'' उस समय गुरू नानक पातशाह ने फ़रमान किया कि पान्धा जी! आप यह अनुभव करो कि वाहिगुरू के बिना यहाँ और कोई नहीं है, हउमै की दीवार का अस्तित्व जिसे हम बड़ी होश कहते हैं, बड़ा निजित्व कहते हैं, वह तुम्हारी छोटी होश के बीच में खड़ी है। इस निश्चय में आओ कि यहाँ वाहिगुरू का चेतन स्वरूप, परम ज्योति स्वंयमेव ही है, यह तो मिथ्या भ्रम डाला हुआ है कि यहाँ मैं हूँ, इसे जब तुम दूर कर लोगे उस समय तुझे तत्व की समझ आ जायेगी, उस समय तुम्हारा निवास नाम मण्डल में हो जायेगा पर वहाँ तक पहुँचने के लिए तुम्हें कठिन परिश्रम करना पड़ेगा। गुरू से शबद लेकर उसे रसना से जपो, श्वांस श्वांस जपो, सुरत के साथ जपो, वह जपते जपते अन्दर एकाग्रता उत्पन्न हो जायेगी और वास्तविकता निकट आती जायेगी। जब पूरी तरह से सत्य का ज्ञान हो गया उस समय तुम्हारा नाम मण्डल में निवास हो जायेगा। सो इसलिये प्यार की कलम बनाकर, चित्त को लिखारी (लेखक) बनाकर, गुरू से पूछ कर यह विचार हृदय में दृढ़ करो प्रभु नाम हृदय में लिखो, उसकी प्रशंसा स्तुति लिखो कि वह बेअन्त है, वह सभी जीवों का पालन करता है, उसने अनेक प्रकार की सृष्टि रची हुई है, फिर उसमें समाया हुआ है। सृष्टि रचने के बाद सृष्टि के कण कण में स्वंय छिपा हुआ बैठा है। पान्धा जी! वह निरा प्यार है, सत्य है, चेतन है, आनन्द है, उसके गुणों का कोई अन्त नहीं है। आप सुरत के साथ गुरू द्वारा दिये गये मन्त्र का जाप करो और उसकी स्तुति गायन करो। यह भी अपने चित्त में लिख लो कि उसके प्रसार का कोई अन्त नहीं है, उसके वरदानों का कोई अन्त नहीं है, उसकी स्तुति का कोई अन्त नहीं है। उसका पारावार कितना बड़ा है, उसका कोई अन्त ही नहीं है। उसके आकारों का भी कोई पारावार नहीं पाया जा सकता। इस अन्त को पाने के लिए जब से संसार की रचना हुई है तभी से देवी, देवता, पीर, पैगम्बर, औलिए सभी कोशिश करते रहे हैं, पर इसका अन्त कोई भी न पा सका। ब्रह्मा भी 36 युगों तक ढूँढता रहा, पर जितना कोई जान जाता है उससे और भी आगे उसका प्रसार फैला हुआ नज़र आता है। वह वाहिगुरू जी अपने आप को स्वंय ही जानता है उसने अनगिनत पाताल बना दिए, उसके बने हुये आकाशों का कोई अन्त नहीं पा सकता उसके बारे में कोई लेखा (हिसाब किताब) नहीं लिखा जा सकता क्योंकि लेखा लिखना पूरा ही नहीं होगा। इसका विनाश हो जाता है। सो उसकी अनन्तता में अपने आपको लीन करके

लिखना है कि उस प्रभु का कोई अन्त पारावार नहीं है।

पान्धा जी! यदि आप यह लेखा लिखना जान जाओ तो जहाँ जाकर सच्ची दरगाह में इस जीव से इसके किये हुए कर्मों का लेखा माँगा जाता है, वहाँ यह नाम सहाई होता है और यमराज का भी कोई वश नहीं चलता। जिस दरगाह में बेअन्त बड़प्पन मिलते हों, बेअन्त खुशियाँ और चाव का माहौल रहता है, जिन्होंने इस संसार में सच्चे नाम को हृदय में बसाया है, उनका वहाँ पर मान होता है। इस प्रकार जिसने अपने हृदय में लेखा लिखा है वह जहाँ भी जायेगा, वहीं पर उसे गौरव प्राप्त होगा और नाम से उत्पन्न हुआ परमानन्द उसके संग साथ रहेगा। जिन्होंने इस संसार में श्वांस श्वांस जाप जपा है वे दरगाह में इज़्ज़त पाते हैं उनके मस्तक पर तिलक लगाकर उन्हें सिरोमनी स्थान दिया जाता है।

हे पान्धा जी! यह नाम अपने आप नहीं जपा जा सकता। ब्रह्मनेष्टी, ब्रह्मवक्ता, पूर्ण सतगुरू की कृपा हो, आशीष मिले, तब यह नाम हृदय में बसता है। नाम के बिना जितने भी कर्म यह जीव करता है वह सभी के सभी दरगाह के रास्ते में लुट जाते हैं। यमराज जागाती (कर अधिकारी) बनकर बुरे कर्मों के बदले पुण्य लेकर पार करता है। ये कर्म धर्म बहुत अधिक साथ नहीं दिया करते। इसलिए और सभी बातें व्यर्थ हैं। संसार की चाल ऐसी चल रही है। हम सभी यह देख रहे हैं कि संसार में कर्मों से बन्धे हुए जीव प्रभु आज्ञा में पैदा होते हैं और जिन्होंने इस कर्म के फल भोग लिए हैं, वे यहाँ से चले जाते हैं। यहाँ संसार में आकर बड़ी बड़ी उपाधियाँ अपने नाम के साथ लगाते हैं। कोई सरदार बहादुर कहलाता है, कोई खान बहादुर कहलाता है, कोई बड़ा सेठ कहलाता है। कोई राये बहादुर है, बहुत से यहाँ अपने किए गये कर्मों के अनुसार मंगते पैदा हुये हैं। जिन्होंने श्रेष्ठ कर्म किये हैं वे पुण्यों के बल पर बड़े दरबारों में ऊँचे पदों पर आसीन हैं। उन्हें हकूमत मिल जाती है, उनके वचन कानून बन जाते हैं, जीव उस कानून के अनुसार चलते हैं। यहाँ तो ऐसी बातें हो जाती हैं पर पान्धा जी! छोटे बड़े का पता उस समय चलता है जब यह जीव संसार त्याग कर लेखे देने के लिए संसार से चला जाता है फिर पता चलता है कि नाम के बिना ऐसे ही बेकार कार्यों में अपना जीवन बिता दिया प्रभु का नाम न जपा। हे पान्धा जी! तुम आप ही देख लो, तुम्हारे मन में उस प्रभु का अदब है या नहीं क्योंकि उसने तो एक एक श्वांस का लेखा मांगना है, पता नहीं हमारे साथ कैसा व्यवहार होगा? पर मुझे लगता है कि संसार के सारे लोग उन कार्यों में फंसे हुए अपना समय

व्यतीत कर देते हैं जो दरगाह में जाकर कुछ भी सहायता नहीं करते। देखो, यहाँ जीव धन कमाता है, बड़े बड़े महल (भवन) बनाता है, बड़ी बड़ी जायदादें खरीदता है, बहुत बड़े बड़े आडम्बर रचता है पर ये सभी चीज़ें संसार में ही रह जाती हैं। इस करके इन्हें निकम्में काम कहा गया है। असली काम प्रभु का नाम जपना है और दरगाह में जाकर बहुत मान दिलाता है तथा धन्य हैं, धन्य हैं की आवाज़ें दरगाह में से आती हैं। उसकी माँ को धन्य है, धन्य है कहा जाता है। वह स्वंय तो भव सागर से तरता ही है और अपने वंशों का भी उद्धार कर देता है। देखो पान्धा जी! आप भी प्रतिदिन देख रहे हो कि तख्तों ताज़ पर बैठने वाले नए नए राजा बन जाते हैं पर थोड़ा सा समय राज्य करने के बाद संसार से चले जाते हैं। वे बड़े बड़े सुलतान, बड़े खान, बड़े महाराजे सभी मिट्टी में मिलकर मिट्टी बन जाते हैं पर वास्तविक बात यह है कि संसार रहने की जगह नहीं है। यह जीव कर्म भोगता हुआ, हउमै का बन्धा हुआ जन्मता है मरता है। हउमै के कारण पुण्य और पापों का कर्ता बनकर अच्छे बुरे फल भोगता है, अनेक यौनियों में भटकता है। बड़ी मुश्किल से मानस जन्म प्राप्त होता है पर यह अपना मानस जन्म भी व्यर्थ गवाँ देता है। इसका जन्म वैर विरोध के लेखे लगता है, इसके शरीर को काम और क्रोध पीड़ित रखते हैं। मोह में फंसा हुआ यह जीव वासना के वश में हुआ वासना के अनुसार कभी कोई शरीर धारण करता है कभी कोई, कभी साँप बनता है, कभी प्रेत बनता है, कभी कुत्ता, कभी कुत्तों के सिर में रहने वाला कीड़ा बनता है। लोभी बना हुआ आप हलकाया रहता है और दूसरों से वस्तुएं छीन छीन कर ढेर लगा देता है। जब सच्चे साहिब का हुक्म आ जाता है फिर उस समय संसार से रोता कुरलाता हुआ चला जाता है और आगे जाकर लेखे देने पड़ते हैं जैसे तिलों में से तेल निकाल लिया जाता है, इसी तरह से कोई भी पाप छिपा नहीं रहता, वे सभी सामने आ जाते हैं तब पश्चाताप करता है। रोता है फिर क्या हो सकता है, सोचो।

इसलिए पान्धा जी! यह विद्या जो तुम मुझे पढ़ाने लगे हो, यह दरगाह में सहायता नहीं करती। रोज़ी तो वाहिगुरू जी सभी को देते हैं। जीव कर्मों के अनुसार सुख दुख भोगता है। रोज़ी पहले बनती है जीव बाद में बनता है। वाहिगुरू जी के हुक्म में ही उसे पदार्थों की प्राप्ति होती है और वाहिगुरू जी के हुक्म में ही वह भूखा मरता है। कर्मों का बन्धा हुआ जीव नर्कों स्वर्गों में चक्कर खाता फिरता है। इसलिये असली पढ़ाई मानस शरीर धारण करके प्रभु का नाम जपना, सत्संग करना ही है, इस

जीव के हाथ में कुछ भी नहीं है, करने कराने वाला स्वंय आप नाथ है। यह जीव कर्म तो करता है, फिर इसे हुक्म के अधीन होकर चलना ही पड़ता है, यह अपनी प्रालब्ध को स्वंय नहीं बदल सकता। इसलिए जिस कार्य को करने के लिए जीव संसार में आता है वह कार्य वाहिगुरू जी की बन्दगी करना है। बाकी जो और पढ़ाई हैं वे रोज़गार तो सिखा देती हैं पर वे यमों से छुटकारा नहीं दिला सकती। महाराज जी फ़रमान करते हैं कि -

पड़िआ लेखेदारु लेखा मंगीऐ।
विणु नावै कूड़िआरु अउखा तंगीऐ। *पृष्ठ - 1288*

सो गुरू महाराज जी ने पान्धा जी को उस समय फ़रमान किया -

जालि मोहु घसि मसु करि मति कागदु करि सारु।
भाउ कलम करि चितु लेखारी गुर पुछि लिखु बीचारु।
लिखु नामु सालाह लिखु लिखु अंतु न पारावारु।
बाबा एहु लेखा लिखि जाणु।
जिथै लेखा मंगीऐ तिथै होइ सचा नीसाणु॥ रहाउ॥
जिथै मिलहि वडिआईआ सद खुसीआ सद चाउ।
तिन मुखि टिके निकलहि जिन मनि सचा नाउ।
करमि मिलै ता पाईऐ नाही गली वाउ दुआउ।
इकि आवहि इकि जाहि उठि रखीअहि नाव सलार।
इकि उपाए मंगते इकना वडे दरवार।
अगै गइआ जाणीऐ विणु नावै वेकार॥
भै तेरै डरु अगला खपि खपि छिजै देह।
नाव जिना सुलतान खान होदे डिठे खेह।
नानक उठी चलिआ सभि कूड़े तुटे नेह॥ *पृष्ठ - 16*

इस प्रकार पढ़ाई की वासना के बारे में बहुत लम्बी चौड़ी विचार की गई है। कई प्रेमियों के मन में शंका पैदा हो सकती है कि कौन सी पढ़ाई हुई जिसे श्रेष्ठ विद्या कहते हैं?

गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं कि यदि पढ़ लिख कर मनुष्य के अन्दर से झूठ की मैल न उतरी, उसके विपरीत उसके हृदय में मैल और गहरी हो गई तो फिर पढ़ाई ने तो कोई सहायता न की। यदि उसके मन से लभ, लोभ, मोह, अहंकार, शबद, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध बाहर न निकले तो पढ़ाई ने वह काम तो न किया जो करना चाहिये था। गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं कि वास्तव में पढ़ा लिखा वही है जिसने मानस जन्म के महत्व को जान लिया और 84 लाख यौनियों के चक्कर में से मुक्त होने के लिये असली रास्ता पहचान लिया है और इस मार्ग पर

चलने के लिए हर समय प्रभु का नाम जपता है –

नानक सो पड़िआ सो पंडितु बीना
जिसु राम नामु गलि हारु॥ पृष्ठ – 938

शास्त्र अनेक हैं, जानने योग्य विषयों की कोई गिनती नहीं है, मनुष्य के पास समय बहुत कम है। पुस्तकें पढ़ कर सार तत्व की प्राप्ति नहीं हुआ करती, गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं –

नानक लेखै इक गल होरु हउमै झखणा झाख॥ पृष्ठ – 467

जिस प्रकार हंस के सामने दूध रख दिया जाए तो वह अपनी खटास से भरी चोंच मार कर दूध से थोड़ा पीछे हटकर प्रतीक्षा करता है, दूध फट जाता है और वह हंस पानी छोड़कर, दूध की तलछटें खा लेता है। विद्या का कोई अन्त नहीं है पर वास्तविक वस्तु यदि प्रभु से प्यार न हुआ तो हर हालत में नरक में जाता है।

सासत सिंम्रिति बेद चारि मुखागर बिचरे।
तपे तपीसर जोगीआ तीरथि गवनु करे।
खटु करमा ते दुगुणे पूजा करता नाइ।
रंगु न लगी पारब्रहम ता सरपर नरके जाइ॥ पृष्ठ – 70

पान्धा जी असली विद्या के बारे में जान गए। गुरू नानक पातशाह ने गुरू रूप होकर नाम की दात बख्श दी। पान्धा जी कृत-कृत होकर विस्मादित अवस्था में पहुँच कर आत्म आनन्द में लीन हो गये। सारी वासनाओं का अन्त हो गया, मन का नाश हो गया। तत्व ज्ञान प्रकट होकर दिव्य नेत्र खुल गये। देखता है कि एक ही ज्योति सभी जगह परिपूर्ण है, एक ही ज्योति का प्रसार है, स्वंयमेव ही अनपे रंग में खेल रहा है।

इससे अगली वासना अनुष्ठान वासना हुआ करती है। वह कर्म करने में सदा जुटा रहता है। पर वह ईश्वर चिन्तन के लिये कोई समय नहीं निकाल पाता। इस प्रकार जब तक वह प्रभु का ध्यान नहीं करता, सत्संग नहीं करता, तब तक आत्म तत्व की प्राप्ति नहीं कर सकता। ऐसा बाणी में फ़रमान आता है कि आत्म तत्व की विचार करने वाले परम सुखी हो जाते हैं –

आसा मनसा बंधनी भाई करम धरम बंधकारी।
पापि पुंनि जगु जाइआ भाई बिनसै नामु विसारी।
इह माइआ जगि मोहणी भाई करम सभे वेकारी॥
सुणि पंडित करमाकारी।
जितु करमि सुखु ऊपजै भाई सु आतम ततु बीचारी॥

पृष्ठ - 635

वासनाएं बन्धन का मूल हैं। ये वाहिगुरू जी के मार्ग में बहुत बड़ी रूकावटें हैं। जब तक इस जीव की वासना का अन्त नहीं हो जाता तब तक यह वासना का बन्धा हुआ पैदा होता रहेगा और मरता रहेगा। सब से प्रबल वासना देह वासना है। यह अपने आत्म स्वरूप को भूलकर सदा ही पाँच तत्वों की देह अपने आप को मानता रहता है। इस देह का श्रृंगार करने के लिए अनेक प्रकार के साबुनों का प्रयोग करता है, अनेक प्रकार के सैन्ट लगाता है, पाऊडरों की सहायता से अपने असली रंग को ढक कर नकली रंग प्रदृशत करता है, इस देह ने तो मिट्टी बन जाना है। सो इसे अपने आत्म स्वरूप की पहचान करनी चाहिए। मैं देह हूँ, इस प्रकार की भावना बुद्धि में दृढ़ हो जाती है, यह दृढ़ बुद्धि नरकों में ले जाने वाली है, बहुत बड़ी लहरों वाली बै-तरनी नदी है। बुद्धि की ऐसी दृढ़ता तलवार की तीखी धार की तरह काटने वाली है। यह बुद्धि सारा यत्न करके, महापुरुषों की संगत करके, गुरू शबद की साधना करके और तत्व वेता महापुरुष से ज्ञान की प्राप्ति करके दूर करनी चाहिए। महापुरुषों का ऐसा अनुभव है कि देह वासना में लिप्त हुई दृढ़ बुद्धि के साथ जो पाप लगता है वह करोड़ों गायों के मारने से भी बढ़ कर होता है। यह देह अशुद्ध है, इसमें विष्ठा, अष्ट रक्त, चर्म में लपेटे हुये हैं। इसका गुमान करता है -

बिसटा असट रकतु परेटे चामु। इसु ऊपरि ले राखिओ गुमान॥

पृष्ठ - 374

माता की कोख रूपी स्थान होने के कारण भी यह देह अशुद्ध है, माता के रक्त और पिता के वीर्य से पैदा होने के कारण भी यह अपवित्र है। अशुद्ध वस्तु है, मलमूत्र के सहारे जो देह खड़ी है वह भी अशुद्ध है, नौ दरवाज़ों में से मैल निकलती रहती है इसलिये भी अशुद्ध है और अत्यन्त मैली है; आत्मा अत्यन्त निर्मल है।

यदि आत्म तत्व को इसने जान लिया तो यह पाक (पवित्र) है। इसलिये इस 9 दरवाज़ों वाली देह से मैल, फूटे हुए मटके की तरह है, जो हर समय गिरती रहती है। इसलिये हम देह को न तो अन्दर से शुद्ध कर सकते हैं, न ही बाहर से शुद्ध कर सकते हैं। इसे शुद्ध रखने के लिए एक ही साधन है कि मलीन वासनाएं त्याग देनी चाहिए। इसकी पवित्रता के लिए इसमें क्षमा, दया, सन्तोष धारण करने चाहिए। हाथों से सन्तों की सेवा करना, नेत्रों से महापुरुषों के दर्शन करना, कानों से हरि यश श्रवण करना, इनसे देह पवित्र हुआ करती है -

एक वसतु बूझहि ता होवहि पाक। बिनु बूझे तूं सदा नापाक॥

पृष्ठ - 374

इस जीव को ज्ञान हो जाना चाहिए कि मैं आत्म स्वरूप हूँ, परिपूर्ण ब्रह्म हूँ, मैं असंग हूँ, मैं अविनाशी हूँ, अजर हूँ, अमर हूँ, यह वासना जब दृढ़ होती है तब इस जीव का छुटकारा होता है। भोगों की वासना ज्ञान नहीं होने देती। वासना के प्रभाव के कारण योग भ्रष्ट को भी यहाँ जन्म लेना पड़ता है, विदेह मुक्ति नहीं होने देती। व्यास जी को शुभ वासना हुई कि मैं संसार में धर्म ग्रन्थों के अनुभव प्रकट करता रहूँ। इस वासना के कारण उनकी विदेह मुक्ति न हुई। उन्हें 4 अरब 32 करोड़ साल विदेह मुक्ति के लिये इन्तज़ार करना पड़ेगा। इसलिए उन्हें कारक पदवी प्राप्त हुई है। वासना का बन्धन बड़ा प्रबल है।

वशिष्ट जी कहते हैं हे राम जी! जिन पुरूषों ने वासना से मन हटा लिया है, मनोनाश की अवस्था प्राप्त कर ली है, वासना का अन्त हो गया है, उनके हृदय में तत्व ज्ञान प्रकट हो जाता है और चित्त परम शान्त हो जाता है। जो प्रेमी जाग्रत में भी सखोपत की तरह अफूर अवस्था में रहता है, जिसे जाग्रत में भी माया के पदार्थों का मान नहीं होता वह वासना रहित पुरूष जीवन मुक्त कहा जाता है। ऐसे पुरूष पूजनीय होते हैं। इसलिए हे बुद्धिमान राम! जो पुरूष हृदय में से प्रत्येक वासना को त्याग देता है, विक्षेप रहित हो जाता है वह जीवन मुक्त पुरूष साक्षात परमेश्वर हुआ करता है।

हे राम जी! मैंने भी सारे शास्त्रों का विचार कर लिया है और सन्तों को मिलकर परस्पर विचार विमर्श करके यह तत्व निकाला है कि वासना के त्याग रूप मौन से परे और कोई भी उत्तम पदवी नहीं है। वासना ही बन्धन है इसलिये वासना को त्याग कर मुक्त हो जाओ। वासना के त्याग का साधन सत्य उपदेश धारण करने वाले को ही हुआ करता है। गुरू लोग अपने शिष्य को, अपने भक्त को जन्म मरण से मुक्त करवा देते हैं। उसके दुखों को सूली से कांटा बना देते हैं। सकेत मण्डी के राजा की कथा की तरह सपने में ही उसका जन्म भुगतवा देते हैं। यह वाहिगुरू के द्वार में आशा अन्देशा के पट जुड़े हुए हैं। सर्व वासनाओं का त्याग करके यह द्वार खुलता है पर अन्देशों की जंज़ीरे इसे आगे नहीं चलने देतीं। यह सारी सृष्टि हुक्माधीन चल रही है जो हर जीव के मस्तक में लिखा हुआ है जो कुछ प्राप्त होना है वह इसकी प्रालब्ध के अनुसार हो ही जाना है। पदार्थों का होना, न होना यह भी प्रालब्ध अनुसार ही है। यह मनुष्य इस

सिद्धान्त को छोड़कर हर समय चिन्ता करता रहता है, डरता रहता है। इसे अनेक प्रकार के भय हैं जैसे मेरा इकट्ठा किया हुआ धन कहीं चला न जाए, मेरा चल रहा व्यापार कहीं घाटे में न चला जाए, मेरी ट्रक, बसें हैं, इनका कहीं accident (दुर्घटना) न हो जाए, मेरा पुत्र न मर जाए, मेरे शत्रु कहीं मुझे मार न दें। पुलिस मुझ पर कोई केस न बना दे, मैं बीमार हो गया तो कहीं मर न जाऊँ। ऐसे अनेक अन्देशे जीव के मन को हर समय पीड़ित करते रहते हैं। जब सत्संग में आकर इसे ज्ञान होता है कि वाहिगुरू जी तो सदा सदा दयालु हैं उनका भजन करने से सारे भय समाप्त हो जाते हैं और यह मन से तन से एकाग्र होकर श्रद्धा भावना के साथ जब प्रभु को प्यार करता है, उस समय इसके भय समाप्त हो जाते हैं। जब यह नाम जप कर मौत का दूसरा किनारा देख लेता है उस समय इसे मरने का भी डर नहीं रहता जैसा कि फ़रमान है –

कबीर जिसु मरने ते जगु डरै मेरे मन आनंदु।
मरने ही ते पाईऐ पूरनु परमानंदु॥ *पृष्ठ – 1365*

जो आज्ञानुसार होना ही है, वह होकर ही रहेगा। मेरे रोकने से रूकना नहीं, मेरी बातचीत, सोच विचार सभी हुक्माधीन हैं, मेरे उद्यम भी हुक्माधीन हैं। भय की आवश्यकता नहीं, हुक्म को जानने की जरूरत है।

इस पुस्तक में अनेक प्रमाण देकर विचार किया गया है कि वाहिगुरू के मार्ग पर चलने के लिए जो रूकावटें हैं वह दुख, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, अनेक प्रकार के विषय, अनेक प्रकार के रस और अनेक प्रकार के भोग हैं। कर्म धर्म सभी बन्धन हैं। आशा तथा अन्देशा के बज्र कपाट गुरू से चाबी लिए बिना नहीं खुल सकते। गुरू के पास चाबी हरि नाम की है। नाम जप कर, नाम के साथ प्यार करके यह द्वार भी खुल जाया करता है अब इसके आगे जो रास्ता है वह भी बहुत भयानक है, इसमें हमारा वासता माया से पड़ता है। माया की खाई जल का बर्तन (हांडी) बहुत गहरा है इसे पार करना बहुत कठिन है। जीवित ही मरना पड़ता है फिर सच्चा जीवन प्राप्त होकर पार किया जा सकता है। जब सतपुरुषों के साथ मिलकर माया द्वारा डाली गई भूल पर नाम जप का पुल बना लेता है तो सत्य के आसन पर विराजमान प्रभु के साथ इसका सम्पर्क आसान हो जाता है। ये विचार इसी श्रृखंला की दूसरी पुस्तक में यथाशक्ति वाहिगुरू जी की प्रेरणा के साथ किये जाने की आशा है।

□ □ □ □ □